भगवान महावीर के पच्चीस सौवें निर्वाण महोत्सव समारोह
के उपलक्ष में

प्रकाशक
मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
जोधपुर-ब्यावर

प्रेरक : श्री रजत मुनि
सपादक .
श्री सुकन मुनि

प्रथम आवृत्ति
वि० स० २०२६
कार्तिक पूर्णिमा
नवम्बर १९७२

मुद्रणव्यवस्था ·
सजय साहित्य सगम के लिए—
रामनारायन मेड़तवाल
श्रीविष्णु प्रिंटिग प्रेस,
राजा की मडी, आगरा–२

मूल्य पांच रुपये मात्र

कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री रेखचंदजी रांका बागड़ी नगर

अभिनन्दन

छप्पय

प्रकट रूप से भरे भाव जहं जैनधर्म के,
वचन वाटिका खिली रहे उपदेश मर्म के।
चमके चपला भावभरे नभ-हृद के माही,
नश्वर सा जग जान, चले मग मोखन ताही।
प्रवचन प्रभा मुनि मिश्री की, जै सुनर नित ही पढै,
भाग्यवंत बनि 'सुकन' नर सदाचार मग मे बढै।

—शुकन मुनि

हमारा महत्वपूर्ण साहित्य

१	श्रीमरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ	मूल्य २४)
२	श्री पाण्डव यशोरसायन (महाभारत पद्य)	१०)
३	श्रीमरुधर केसरी ग्रन्थावली, प्रथम भाग	५)४० पैसा
४	,, ,, द्वितीय भाग	७)
५	जीवन ज्योति	५)
६	साधना के पथ पर	५)
७	जैनधर्म मे तप स्वरूप और विश्लेपण	१०)
८	सकल्प विजय	२)
९	सप्त रत्न	२)
१०	मरुधरा के महान सत	२)
११	हिम्मत विलास	२)
१२	सिहनाद	१)
१३	बुध विलास प्र० भाग	१)
१४	,, द्वि० भाग	१)
१५	श्रमण सुरतरु चार्ट	५)
१६	मधुर पचामृत	१)
१७	पतगसिंह चरित्र	५० पैसा
१८	श्री वसत माधुमजूघोषा	५० पैसा
१९	आषाढभूति	२५ पैसा
२०	भविष्यदत्त	२५ पैसा
२१	सच्ची माता के सपूत	१)
२२	तत्वज्ञान तरगिणी	१)
२३	लमलोटका लफदर	२५ पैसा
२४	भायलारो भिरु	२५ पैसा
२५	टणकाइ रो तीर	२५ पैसा
२६	सच्चा सपूत	२५ पैसा
२७	पद्यमय पट्टावली	१)
२८	जिनागम संगीत	५० पैसा

श्रीमरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन समिति

पीपलिया बाजार, जैनस्थानक

ब्यावर, राजस्थान

प्रकाशकीय

ज्ञान मनुष्य की तीसरी आख है। यह आख जन्म से नही, किन्तु अभ्यास और साधना के द्वारा जागृत होती है। कहना नही होगा, इस दिव्य नेत्र को जागृत करने मे सद्गुरु का सहयोग अत्यत अपेक्षित है। सद्गुरु ही हमारे इस दिव्य चक्षु को उद्घाटित कर सकते है। उनके दर्शन, सत्सग, उपदेश और प्रवचन इसमे अत्यत सहायक होते हैं। इसलिए सद्गुरुओ के प्रवचन सुनने और उस पर मनन करने की आज बहुत आवश्यकता है।

बहुत से व्यक्ति सद्गुरुदेव के प्रवचन सुनने को उत्सुक होते हुए भी वे सुन नही पाते। चू कि वे सुदूर क्षेत्रो मे रहते हैं, जहा सद्गुरुजनो का चरण-स्पर्श मिलना भी कठिन होता है।

ऐसी स्थिति मे प्रवचन को साहित्य का रूप देकर उनके हाथो मे पहुंचाना और भगवद्वाणी का रसास्वादन करवाना एक उपयोगी कार्य होता है। ऐसे प्रयत्न हजारो वर्षों से होते भी आये हैं। इसी शुभ परम्परा मे हमारा यह प्रयत्न है श्री मरुधरकेसरी जी म० के प्रवचन साहित्य को व्यवस्थित करके प्रकाशित कर जन-जन के हाथो मे पहुचाना।

यह सर्वविदित है कि श्री मरुधरकेसरी जी म० के प्रवचन बड़े ही सरस, मधुर, साथ ही हृदय को आन्दोलित करने वाले, कर्तव्यबुद्धि को जगाने वाले और मीठी चोट करने वाले होते हैं।

उनके प्रवचनो मे सामयिक समस्याओ पर और जीवन की पेचीदी गुत्थीयो पर बडा ही विचारपूर्ण समाधान छिपा रहता है, साथ ही उनमे बडा चुटीलापन और रोचकता भी रहती है, जो श्रोता और पाठक को चुम्बक की भाति अपनी ओर खीचे रखते हैं। इसलिए हमे विश्वास है कि यह प्रवचन साहित्य पाठको को रुचिकर और मनोहर लगेगा।

श्री मरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन समिति के द्वारा मुनिश्री जी का कुछ महत्वपूर्ण साहित्य प्रकाशित किया गया है, और अभी बहुत-सा साहित्य, कविताएँ, प्रवचन आदि अप्रकाशित ही पडा है। हम इस दिशा मे प्रयत्नशील हैं कि यह जनोपयोगी साहित्य शीघ्र ही सुन्दर और मनभावने रूप मे प्रकाशित होकर पाठको के हाथो मे पहुचे।

इन प्रवचनो का सपादन मुनिश्री के विद्याविनोदी शिष्य श्री सुकन मुनि जी के निर्देशन मे किया गया है। अत मुनिश्री का तथा अन्य सहयोगी विद्वानो का हम हृदय से आभार मानते हैं।

पुस्तक को मुद्रण आदि की दृष्टि से आधुनिक साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत करने मे श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' का हार्दिक सहयोग हमे प्राप्त हुआ है, जिसे भुलाया नही जा सकता।

अब यह पुस्तक पाठको के हाथों मे प्रस्तुत है—इसी आशा के साथ कि वे इसके स्वाध्याय से अधिकाधिक लाभ उठायेंगे।

पुखराज सिशोदिया
अध्यक्ष
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति

दो शब्द

साधारण मनुष्य की वाणी 'वचन' कहलाती है, किन्तु किसी ज्ञानी, साधक एव अन्तर्मुखी चिन्तक की वाणी 'प्रवचन' होती है। उसकी वाणी मे एक विशिष्ट वल, प्रेरणा और दिव्यता-भव्यता का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर विजली की भाति आदोलित करने की क्षमता उस वाणी मे होती है।

'प्रवचन प्रभा' पढते समय पाठक को कुछ ऐसा ही अनुभव होगा—इन प्रवचनो मे जितनी सरलता और सहजता है, उतना ही चुटीलापन और हृदय को उद्‌वोधित करने की तीव्रता भी है। मुनिश्री की वाणी विल्कुल सहज रूप मे नदी प्रवाह की भाँति वहती हुई सी लगती है, उसमे न कृत्रिमता है, न घुमाव है और न व्यर्थ का शब्दो का उफान। ऐसा लगता है, जैसे पाठक स्वय वक्ता के सामने खडा है, और साक्षात् उसकी वाणी सुन रहा है। प्रवचनो की इतनी सहजता, स्वाभाविकता और हृदय-स्पर्शिता वहुत कम प्रवक्ताओ मे मिलती है।

इन प्रवचनो मे जीवन के विविध पक्षो पर, विभिन्न समस्याओ पर मुनिश्री ने वडे ही व्यावहारिक और सहजगम्य ढग से अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। कही-कही विषय को ऐतिहासिक एव तुलनात्मक दृष्टि से व्यापक वनाकर उसकी गहराई तक श्रोताओ को ले जाने का प्रयत्न भी किया गया है। इससे प्रवचनकार की वहुश्रुतता, और सूक्ष्म-प्रतिभा का भी स्पष्ट परिचय मिलता है।

प्रवचनकार मुनिश्री मिश्रीमलजी म० सचमुच 'मिश्री' की भाति ही एक 'कठोर-मधुर' जीवन के प्रतीक है। उनके नाम के पूर्व 'मरुधरकेसरी' और कही-कही 'कडकमिश्री' विशेषणो का भी प्रयोग होता है—यह विशेषण उनके व्यक्तित्व के बाह्य-आभ्यन्तर स्वरूप को दर्शाते हैं।

मिश्री—की दो विशेषताएँ है, मधुर तो वह है ही, उसका नाम लेते ही मुह मे पानी छूट जाता है। किंतु उसका बाह्य आकार बडा कठोर है, यदि ढेले की तरह उसको फेंककर किसी के सिर मे चोट की जाय तो खून भी आ सकता है। अर्थात् मधुरता के साथ कठोरता का एक विचित्र भाव-'मिश्री' शब्द मे छिपा है। सचमुच ऐसा ही भाव क्या मुनिश्री के जीवन मे नही है?

उनका हृदय बहुत कोमल है, दयालु है। किसी को सकटग्रस्त, दुखी व सतप्त देखकर मोम की भाँति उनका मन पिघल जाता है। मिश्री को मुट्ठी मे बन्द कर लेने से जैसे वह पिघलने लगती है, वैसे ही मुनिश्री किसी को दुखी देखकर भीतर-ही-भीतर पिघलने लगते हैं, और करुणा-विगलित होकर अपने वरदहस्त से उसे आशीर्वाद देने तत्पर हो जाते हैं। जीव दया, मानव-सेवा, साधर्मिवात्सल्य आदि के प्रसगो पर उनकी असीम मधुरता, कोमलता देखकर लगता है, मिश्री का माधुर्य भी यहा फीका पड जाता है!

उनका दूसरा रूप है—कठोरता! समाज व राष्ट्र के जीवन मे वे कही भी भ्रष्टाचार देखते हैं, अनुशासनहीनता और सम्प्रादायिक द्वन्द्व, झगडे देखते हैं तो पत्थर से भी गहरी चोट वहा पर करते हैं। केसरी की तरह गर्जना करते हुए वे उन दुर्गुणो व बुराइयो को ध्वस्त करने के लिए कमर कस कर खडे हो जाते हैं। समाज मे जहा-जहा साप्रदायिक तनाव, विरोध और आपस के झगडे होते हैं—वहा प्राय मरुधर केसरी जी के प्रवचनो की कडी चोट पडती है, और वे उनका अन्त करके ही दम लेते है।

लगभग अस्सी वर्ष के महास्थविर मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज के हृदय मे समाज व सघ की उन्नति, अभ्युदय और एकता व सगठन की तीव्र

तडप है। एकता व सगठन के क्षेत्र मे वे एक महत्वपूर्ण कडी की भाँति स्थानकवासी श्रमण सघ मे सदा-सदा से सन्माननीय रहे हैं। समाज सेवा के क्षेत्र मे उनका देय बहुत बडा है। राजस्थान के अचलो मे गाव-गाव मे फैले शिक्षाकेन्द्र, ज्ञानभण्डार, वाचनालय, उद्योगमन्दिर, व धार्मिक साधना केन्द्र उनके तेजस्वी कृतित्व के बोलते चित्र हैं। विभिन्न क्षेत्रो मे काम करने वाली लगभग ३५ सस्थाएँ उनकी सद्प्रेरणाओ से आज भी चल रही हैं, अनेक सस्थाओ, साहित्यिको, मुनिवरो व विद्वानो को उनका वरद आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है। वे अपने आप मे व्यक्ति नही एक, सस्था की तरह विकासोन्मुखी प्रवृत्तियो के केन्द्र हैं।

मुनिश्री आशुकवि हैं। उनकी कविताओ मे वीररस की प्रधानता रहती है, किंतु वीरता के साथ-साथ विरक्ति, तपस्या और सेवा की प्रबल तरगें भी उनके काव्य-सरोवर मे उठ-उठ कर जन-जीवन को प्रेरणा देती रही हैं।

श्री मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो का विशाल साहित्य सकलित किया पडा है, उसमे से अभी बहुत कम प्रवचन ही प्रकाश मे आये हैं। इन प्रवचनो को साहित्यक रूप देने मे तपस्वी कविरत्न **श्री रूपचन्दजी म० 'रजत'**—का बहुत बडा योगदान रहा है। उनकी अन्तर् इच्छा है कि मरुधर केसरी जी म० का सपूर्ण प्रवचन साहित्य एक माला के रूप मे सुन्दर, रुचिकर और नयनाभिराम ढग से पाठको के हाथो मे पहुचे। श्री 'रजत' मुनि जी की यह भावना साकार होगी तो अवश्य ही साहित्य के क्षेत्र मे अनेक महत्वपूर्ण कृतिया हमे प्राप्त हो सकेगी। विद्याप्रेमी श्री सुकन मुनिजी की प्रेरणाओ से इन प्रवचनो का सपादन एव प्रकाशन शीघ्र ही गति पर आया है, और आशा है भविष्य मे भी आता रहेगा। मुनिश्री की एक महत्वपूण रचना 'जैनधर्म मे तप स्वरूप और विश्लेषण" अभी प्रकाश मे आई है, वह पुस्तक जिस किसी भी हाथ मे गई है, मुक्तकठ से उसकी प्रशसा हो रही है।

मुझे विश्वास है, प्रवचन प्रभा के पाठक भी इसी प्रकार एक नई प्रेरणा और कर्तव्य की स्फूर्ति प्राप्त कर कृतार्थता अनुभव करेंगे।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रवचन प्रभा

प्रथम भाग

१ | ज्ञान का अक्षय श्रोत

पर्यु षण का अर्थ

सज्जनो, आज महान् पर्व पर्यु षण का प्रारम्भ हो रहा है। अब हमे यह जानना है कि/पर्यु षण शब्द का अर्थ क्या है, इसकी परिभाषा क्या है ? प्राकृत 'पज्जुसवणा' का सस्कृत रूप पर्यु षणा है। इस शब्द की निरुक्तिपूर्वक परिभाषा इस प्रकार की गई है—

'**पर्याया ऋतुवृद्धिका द्रव्य क्षेत्र काल भाव सम्बन्धिन उत्सृज्यन्ते उज्झ-यन्ते यस्या सा निरुक्तिविधिना पर्योसवना। अथवा परीति सर्वत क्रोधादि-भावेभ्य उपशम्यते यस्या सा पर्यु पशमना। अथवा परितः सर्वतः एकक्षेत्रे नियतकाल यावत् वसन पर्यु षणा।**"

शास्त्रो मे प्राकृत पज्जुसवणा शब्द के संस्कृत भाषा मे तीन प्रकार के रूप पाये जाते है। पर्योसवना, पर्यु पशमना और पर्यु षणा। प्रथम शब्द रूप के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव सम्बन्धी ऋतुवर्धक पर्यायो को, आचरणो को छोडा जाता है, उसे पर्योसवना कहते हैं। दूसरे रूप के अनुसार क्रोधादि भावो को जिसमे उपशान्त किया जावे, उसे पर्यु पशमना कहते है। तीसरे रूप के अनुसार जिसमे नियत काल तक सर्व कार्यो को

छोडकर एक क्षेत्र मे आत्मस्वरूप का विचार करते हुए निवास करने को पर्युषणा कहते है।

पर्वराज के इन तीनो ही रूपो के अनुसार हमे इन आठ दिन मे द्रव्य, क्षेत्र-काल-भाव सम्बन्धी सभी बाहिरी कार्यों को छोडना है, तथा भीतरी क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह आदि भावो को दूर करके उपशम भाव को लाना है और एकान्त स्थान मे निवास करके अपना आत्मस्वरूप क्या है, मैं जो कार्य कर रहा हू, वे मेरी आत्मा के शान्ति-वर्धक हैं, या अशान्ति-कारक हैं और मैं इन कार्यों को करते हुए सुगति को जाऊंगा, या दुर्गति को जाऊ गा ? इस प्रकार विचार करना। यह तो हुआ पज्जुसवणा— या पर्युषणा शब्द का अर्थ। और पर्व शब्द का अर्थ है अपनी कमी को पूरी करना। इस प्रकार इस महान् पर्वके दिनो मे हमे ये सब काम करके आत्मा की कमी को पूरी करना है।

कर्मों के घर में

आत्मा का स्वरूप क्या है ? आत्मा चेतन स्वरूप है—अक्षय अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य आदि गुणो का भडार है। तथा जिस शरीर मे यह रह रहा है, वह अचेतन है, जड है और क्षय को प्राप्त होने वाला है। इस जड शरीर के साथ इस चेतन आत्मा का संयोग आज-कल से नही, किन्तु अनन्त भवो से—अनन्त काल से चला आ रहा है। शरीर का सयोग कर्म-जनित है। कर्मों के सयोग से आत्मा को कभी भी स्वतन्त्रता नही मिली है और आत्मा अपने असली स्वरूप को आज तक भी प्राप्त नही कर सका है। क्योकि हम अपने घर को छोडकर दूसरे के घर मे जाकर रह रहे हैं। दूसरे के घर के जो नियम होते हैं, वे ही हमे पालना पडते हैं। यदि हम उन नियमो का उल्लघन करेंगे, तो घर का मालिक तुरन्त कह देगा कि भाई साहब, यदि इस प्रकार की स्वतन्त्रता रखनी है तो आप अपने घर मे जाकर रहिए। हमारे घर मे तो आप ऐसा नही कर सकते हैं। ठीक इसी प्रकार से हमारा आत्मा कर्मों के घर मे अनादिकाल से रहता हुआ चला आ रहा है। इससे हमारी आत्मा के जो आठ महान् गुण थे, उन पर रुकावट आ गई है। आठ कर्मों ने उन्हे रोक रखा है।

शास्त्र मे आठ-कर्मों के नाम इस प्रकार बताए हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय। आत्मा का सबसे प्रधान गुण ज्ञान है। इस ज्ञान गुण को—जानने की अनन्त शक्ति को ज्ञानावरणीय कर्म ने ढक रखा है—आवरण कर रखा है, वह ज्ञान को प्रकट नही होने दे रहा है। जैसे सूर्य का स्वभाव प्रकाशमान है, किन्तु जब वह बादलो से घिर जाता है—आच्छादित हो जाता है तो उसका प्रकाश फीका पड जाता है और उसकी ज्योति मन्द पड जाती है। यदि जल-भरे काले बादलो की घनघोर घटा उसे आच्छादित कर लेती है, तो दिन मे भी विशेष अन्धकार आ जाता है। इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के आ जाने से हमारा सम्यक् ज्ञान ढक रहा है और उसका वास्तविक पूर्ण प्रकाश हमे नही प्राप्त हो रहा है। हमे अपने चारो ओर अज्ञान ही अज्ञान रूप अन्धकार दिखाई दे रहा है। अथवा जैसे हम अपनी आखें बन्द कर लेवें, या उन पर पट्टी बाध लें, तो हमे कुछ भी दिखाई नही देता है और सब ओर अन्धेरा ही प्रतीत होता है। इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के द्वारा सूर्य के समान प्रकाशमान और इस चराचर जगत का प्रकाशक हमारा ज्ञान गुण आच्छादित हो रहा है, ढक रहा है—इससे इस चराचर जगत को हाथ पर रखे आवले के समान जानने की शक्तिवाला आत्मा उसे नही जान रहा है।

आवरण को हटाइए

पर्वराज का यह पहला दिन हमे इस ज्ञानावरणीय कर्म को दूर करने की प्रेरणा देता है। क्या प्रेरणा देता है? यह प्रेरणा देता है कि हम यह विचार करें कि हमारे यह ज्ञानावरणीय कर्म क्यो बधा? इसलिए बधा कि हमने ज्ञानी पुरुषो की आशातना की, ज्ञान की आशातना की, ज्ञान के उपकरणो की आशातना की, ज्ञान के पढने वालो को अन्तराय दी और सम्यक्ज्ञान को मिथ्यात्व के साचे मे ढाला। इन पांच कारणों से हमारे ज्ञानावरणीय कर्म बधता है। अनादिकाल से ही यह जीव इस प्रकार के कार्यों को करता आ रहा है, अत तभी से यह इस कर्म

से बधा हुआ है। यद्यपि वधने वाले कर्मों की स्थिति निश्चित है, तथापि वे बधे हुए कर्म झडते हुए नये कर्म का बन्ध कर जाते है सो नये-नये कर्म आत्मा से बंध जाते हैं। इस प्रकार कर्मों की यह सनातन परम्परा अनादि-काल से चली आ रही है। जब आत्म-प्रदेशो के ऊपर कर्मों के रजकण लगातार आते ही रहते है तब आत्मा के ज्ञान गुण का ढकना, आवरण होना या रुकावट पैदा होना स्वाभाविक ही है। आप लोग जानते ही है कि यदि ककड या मिट्टी के रजकण पेट मे चले जाते हैं तो भीतर एक छोटी-सी गोली वन जाती है। धीरे-धीरे उसके ऊपर और रजकण चिपकते जाते है और वह बडी वन जाती है। इस प्रकार वह बडी वनके पथरी का रूप धारण कर लेती है, जिससे पेशाब का आना बन्द हो जाता है। और आदमी छटपटाने लगता है। तब वह डॉक्टर के पास जाता है। वह निर्णय करके कहता है कि भाई, तुम्हारे पेट मे तो पथरी है, मूत्राशय के आगे आ गई है, इससे पेशाब करने मे रुकावट आ गई है। अतएव या तो इसका आपरेशन कराओ, अथवा कोई ऐसी तेज दवा लो, जिससे कि यह भीतर-ही भीतर गल कर वाहिर निकल जाय। जिस प्रकार धीरे-धीरे पेट मे सचित होने वाले रज कणो ने पेशाब के आने मे रुकावट डाली, उसी प्रकार आत्मा के ऊपर ज्ञाना वरणीय कर्म के रजकणो ने ज्ञान का प्रकाश बाहिर आने मे रुकावट डाली हुई है। फिर भी हम समझते हुए भी इस रहस्य को नही समझ रहे हैं। और जो कार्य उत्तम है, ज्ञानवर्धक है एव ज्ञान-प्रकाशक है, उससे फिर भी दूर होते जा रहे है। जहा हमारे मन मे उपदेश सुनकर और शास्त्रो को पढकर नम्रता आनी चाहिए थी, वहा कठोरता आ रही है। जहा धैर्य आना चाहिए वहा अधैर्य आ रहा है। जहाँ हमारे भीतर बडप्पन आना चाहिए, वहा छोटा पना आ रहा है। जहा सरलता रहनी चाहिए, वहा कुटिलता आ रही है। जहा सिंह समान दहाड मार कर और निर्भय होकर आगे आना चाहिए था, वहा पर कायरता लाकर पीछे की ओर भाग रहे है।

आपको मालूम है कि सनातनधर्मी नौ ग्रह मानते है जो कि आज सर्वत्र प्रचलित और सर्वविदित है। किन्तु जैन सूत्रो मे ८८ ग्रह बतलाये गये है।

इनकी स्थिति किसी को पाच हजार किसी की दस हजार, और किसी की तीस हजार वर्ष की है। जब हमारा इतना आयुष्य ही नही है, तब वे ग्रह कैसे भुगतेंगे। अभी हमारा आयुष्य सौ वर्ष जाझेरा है, तभी कहा जाता है कि सौ के ऊपर एक तो जाझेरा दस है, बीस है, पच्चीस है, पचास है तो ये सब जाझेरा है। यह कहा तक कि १९९ तक जाझेरा कहलाता है। आज हमारा आयुष्य एक सौ जाझेरा है। कितने ही लोग कहते हैं कि हमने तो गुरुजनो के मुख से यह सुना है कि इस काल मे १२५ वर्ष से अधिक मनुष्यो का आयुष्य नही है। यह कथन परम्परागत है। परन्तु सिद्धान्त से गिनें तो सौ वर्ष से जाझेरा आयुष्य है। इतने समय मे हम हर एक ग्रह को नही भोग सकते हैं। दूसरी बात यह है कि सात ग्रह तो आगे को बढते हैं और राहु-केतु ये दो ग्रह पीछे को जाते हैं। हमारी आत्मा क्या राहु या केतु के समान है, जो पीछे जाती रहे ? हमे तो आगे बढना चाहिए।

ज्ञान-प्राप्ति के पाच उपाय

हां, तो मैंने बताया कि पांच कारणो से ज्ञानावरणीयकर्म का बन्ध होता है। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से कोई व्यक्ति स्पष्ट शब्द नही बोल पाता है, तो कोई तुतलाता है। किसी के वचन कडवे और बेढगे ही निकलते हैं, कोई गुंगा ही रह जाता है। कोई पढने मे बहुत परिश्रम करने पर भी नही पढ पाता है। खूब याद करने पर भी किसी को पाठ ही याद नही हो पाता है। किसी प्रकार याद भी हो जाय तो वह जल्दी ही भूल जाता है। यह सब ज्ञानावरणीयकर्म के उदय-जनित कार्य जानना चाहिए। अब हमे उन को मिटाने का ही काम करना है। जैसे ज्ञानावरणीय कर्म के बाधने के पाच कारण है, वैसे ही उसके तोडने के भी पांच कारण हैं। वे इस प्रकार हैं— पहिले तो देव, गुरु और धर्म की भक्ति करें। भक्ति कैसे करनी ? क्या किसी को केशर-चन्दन लगाने की आवश्यकता है ? क्या दीप-धूप जलाने की आवश्यकता है ? नही। इस प्रकार की भक्ति की आवश्यकता नही है, वह भक्ति कैसी होनी चाहिए, इसके लिए आनन्दघन जी कह रहे हैं कि—

चित्त प्रसन्ने रे पूजन फल कह्यो, पूजा अखंडित येह ।
कपट-रहित हो रे आतम अर्पणा आनन्दघन पद जेह ।।
ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम मायरो ।

महान् आध्यात्मिक पुरुष आनन्दघन जी महाराज आदि-जिनेश्वर ऋषभ देव की स्तुति के अन्त मे कह रहे हैं कि हे प्रभो, मैं तेरी पूजा करूँ ? भाई, पूजा किसे कहते हैं ? अन्तरग मे चित्त की प्रसन्नता होनी चाहिए, उसके साथ, चित्त की एकाग्रता के माथ, चित्त तन्मयता के साथ, हृदय की स्वच्छता के साथ प्रभु के गुणों मे अपने हृदय को सलग्न कर देना यही सच्ची पूजा है । और किसकी पूजा करूँ ? तो बताया कि जो अखण्डित है, खडित होने वाला नही है । शाश्वत नित्य है, बिखरने वाला नही है, मेला होने वाला नही है, व्यवधान रहित है और अपने रूप मे महान् है, ऐसे प्रभु की पूजा करूं ! ऐसी पूजा करूं कि उनके गुणो से हमे अनुपम आनन्द मिल जाय । अच्छा भाई, तू प्रभु की पूजा के लिए तैयार हो गया, परन्तु प्रभु के आगे उनके श्रीचरणो मे भेंट क्या करेगा ? तब भक्त कहता है कि मेरे पास और क्या है, जो तेरे आगे भेंट करूं ? परन्तु भेंट रूप मे कपट, छल-छिद्र और कुटिलता को छोडकर मै अपनी आत्मा ही तुझे अर्पण करता हू । अर्थात् अब मैं निश्छल भाव से शुद्ध हृदय से आपके भीतर समाविष्ट होना चाहता हू । अब आप लोग समझ लीजिए कि प्रभु की पूजा कैसी होती है । इस प्रकार से तो देव की पूजा करनी चाहिए ।

अब मैं गुरु की पूजा करना चाहता हूँ । गुरु की पूजा क्या है ? उसे बताते हुए कहा गया है कि हे कृपासिन्धो, आपने मुझे जो ज्ञान दिया है, उससे मेरी आत्मा तर हो गई है, परम तृप्ति का अनुभव कर रही है । इस-लिए वही ज्ञान आपको अर्पण कर रहा हूं । इसके अतिरिक्त मेरे पास और कुछ नही है । इस प्रकार की शुद्ध भावना के साथ गुरुजनो की सेवा-उपासना को करना ही गुरुभक्ति है ।

धर्म की भक्ति क्या है ? पहिले आप लोग सावचेत होकर यह समझ लें कि धर्म क्या है ? धर्म सारे विश्व का प्रकाशक एक अद्वितीय दीपक है,

अगम अपार सागर के मध्य एक जहाज है, डूबते हुए प्राणियो के लिए एक द्वीप के समान है। धर्म एक भूखे पुरुष को भोजन, प्यासे को पानी, अन्धे को आंख और पगु को पैर के समान है। सारे ससार को परम आनन्द का देने वाला एकमात्र धर्म ही है। इस धर्म के द्वारा ससार के समस्त दुख दूर हो जाते हैं। आचार्य कहते हैं कि—

नश्यन्ति येन धर्मेण जन्म-मृत्यु-जरादिकाः।
किं न नश्यन्ति तेनैव रोग क्लेश भयादिका।

जिस धर्म के द्वारा अनादि काल से लगे जन्म-जरा-मरणादिक नष्ट हो जाते हैं, उस धर्म के द्वारा क्या शारीरिक रोग, क्लेश और भय आदिक नष्ट नही होंगे? अवश्य ही होंगे।

लोग जिस कुटुम्ब के लिए रात-दिन पाप कार्य करते रहते हैं, जिस धन के उपार्जन करने के लिए एडी-चोटी का पसीना बहाते हुए रात-दिन हाय-हाय करते रहते हैं और जिस शरीर के लालन-पालन और साज-शृगार मे अपने जीवन की इन अमूल्य घडियो को विताते है, ये सव यही रह जाने वाला है। साथ मे कुछ भी जाने वाला नही है। आचार्य कहते हैं कि -

वन्धवो हि श्मसानान्ता गृह एवार्जित धनम्।
भस्मने गात्रमेक त्वा धर्म एव न मुञ्चति॥

हे आत्मन्, जिन वन्धुओ के मोह मे तू पडा हुआ है, वे सव मरघट तक के साथी हैं, तेरे साथ जाने वाले नही हैं। जिस धन को तूने भारी पाप और अन्याय से अर्जित किया है वह मरघट तक भी साथ नही जायगा, घर मे ही पडा रहेगा। तथा जिस शरीर के लालन-पालन मे लग रहा है, वह चिता तक ही साथ देगा। मरघट मे ही जल कर राख हो जायगा। केवल एक धर्म ही ऐसा है जो तेरा साथ नही छोडेगा और पर-भव मे साथ जायगा। इसलिए तू धर्म करने का प्रयत्न कर। इसी भाव को हिन्दी के एक कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है—

धर्म करो रे म्हारा चेलिया, साथे नहिं चाले धनरी थैलियां।

हे मेरे वेलिये,[1] हे मेरे मित्र, तूने लडाई-झगडे तो बहुत कर लिये, उनके करने मे कोई कसर नही रखी। यदि एक भव मे किये हो तो कसर रहे, परन्तु अनन्त-अनन्त काल से तुम ये काम करते हुए आ रहे हो, फिर भी अब तक तुम धापे नही हो। रात-दिन उन्ही के पीछे दौड रहे हो और कहते हो कि 'हाय घौडो दिन थोडो'। अरे दौडते-दौडते भी दिन थोडा रह रहा है। भाई, जब दिन थोडा रह गया है, तब फिर जल्दी-जल्दी कदम रखो, तभी पहुचोगे। आज तक कोई भी व्यक्ति धन की थैलियो को साथ मे नही ले गया है और आप लोग भी लेकर के नही जाओगे। यदि साथ मे कोई ले जाने वाला हो तो वह बताये ? और भी कहा है—

'चुन-चुन मटिया महल चिनाया, पड़ीं रही रे हवेलियां।
धर्म करो रे म्हारा वेलियां'।

नीव से लेकर ऊपर तक शानदार कोठिया और बगले बनाये, उनमे बढिया फर्नीचर जमाया, कई प्रकार की साज-सज्जा की और बिजली के ट्यूब बल्व लगाकर रोशनी भी बहुत की। उन कोठी और बगलो मे जनानखाना गुसलखाना, हरमखाना और गाडीखाना आदि भी बनाये। परन्तु मैं पूछू कि अन्तिम समय पर इन सबको आप साथ ले जायेंगे, या ये सब यही पडे रहेगे ? आपके बडेरे साथ ले गये नही और आप लोग भी साथ ले जायँगे नही। फिर अपनी आत्मा का जो काम करने का है, उसे क्यो नही कर रहे हो ? कोई कहता है कि महाराज, आप धर्म-धर्म कह रहे हैं। परन्तु वह धर्म क्या वस्तु है ? कोई तो कहता है कि खूब भक्ति करो तो कल्याण हो जायगा कोई कहता है कि खूब पढो तो पार हो जाओगे। कोई कहता है कि खूब क्रिया काण्ड करो और कोई कहता है कि माथा मुडाओ और उल्टे लटको तो मुक्ति मिल जायगी। इस प्रकार सब लोग अपने अपने धर्म की न्यारी-न्यारी ढफली बजाते हुए अलग-अलग राग आलाप रहे हैं और लोगो को अपनी बातो मे फसा रहे हैं। परन्तु आप बतायें कि सच क्या है ? हम धर्म किसे समझे ?

---

१ मारवाड की बोली मे वेलिया परममित्र या अजीजदोस्त को कहते हैं।

हाथी और सात अन्धे

भाई, जो ये लोग धर्म की अलग-अलग बात कह रहे हैं, सो ये सभी धर्म के अग है। परन्तु ये लोग एक-एक अग को ही धर्म मानकर और उसे ही पकड कर बैठ गये हैं और लोगो को चक्कर मे डाल रहे हैं। जैसे एक हाथी किसी गाव मे आया तो लोग उसे देखने के लिए गये। उस गाव मे सात अन्धे पुरुष भी थे। उनके मन मे भी आया कि हम भी हाथी को देख आवें कि हाथी कैसा होता है? उन्होने यह तो नही सोचा कि जब हमारी आखें नही हैं तो हम क्या देखेंगे? परन्तु मन मे देखने की लगन लगी तो वहा गये जहा पर हाथी था और लोगो का मेला लग रहा था। लोगो ने कहा—अरे सूरदासो, तुम लोग यहां भीड-भाड मे क्यो आये हो? वे बोले—हम लोग भी हाथी को देखने के लिए आये हैं। इस प्रकार वे भीड-भाड मे घुलते हुए हाथी के समीप पहुचे। महावत ने भी इन लोगो को आता हुआ देखकर पूछा- अरे बाबा, यहा क्या देखने को आये हो? इन्होने उसे भी वही उत्तर दिया कि हाथी को देखने के लिए आये हैं। सूरदासो ने उससे पूछा कि भाई आप कौन है? उसने कहा कि मैं हाथी को चलाने वाला महावत हू। सूरदास बोले—हम हाथी को देखना चाहते हैं। महावत ने कहा—यह हाथी खडा है और तुम लोग इसके शरीर पर हाथ फेरकर देख लो। अब वे अन्धे हाथी की ओर बढे। उनमे से एक ने उसकी पूछ, एक ने सूड, एक ने दात, एक ने कान, एक ने पेट, एक ने कुम्भस्थल और एक ने हाथी का पैर पकड लिया। इस प्रकार हाथी के विभिन्न अगो पर अपने-अपने हाथ फेर करके वे सब वापिस लौटे। कुछ आगे जाने पर कुछ मसखरो ने पूछा कि आज सातो ही सवारिया कहा गई थी? इन्होंने कहा कि हम लोग हाथी को देखने गये थे। उन्होंने पूछा कि हाथी देख आये? सूरदास बोले—हा, देखकर ही तो आ रहे है। महावत बहुत भला आदमी है, उसने हमे अच्छी रीति से हाथी को देखने दिया। लोगो ने पूछा कि हाथी को कैसे देखा? इन्होने उत्तर दिया कि हाथ फेर फेर कर देखा। लोगो ने कहा—अच्छा बताओ-हाथी कैसा है? एक ने कहा हाथी तो मकान के थम्भे के समान है। तब दूसरा बोला—अरे

अन्धे, क्यो झूठ बोल रहा है ? पहले खराब करनी की सो तो अब अन्धा बना है और फिर झूठ बोल कर क्या अगले जन्म मे भी अन्धा बनना चाहता है ? हाथी तो मैंने देखा है, वह तो रस्सीके समान है। तब तीसरा अन्धा उसकी बात काटते हुए बोला—अजी, ये दोनो झूठ बोल रहे हैं। हाथी न तो थम्भे के समान है और न रस्सी के समान ही ! किन्तु हाथी तो कोयटे के (कूएँ लाव के समान है। तब चौथा अन्धा बोला—नही, नही, हाथी तो मूसल के समान है। इसे सुनते ही पाचवा बोला—हाथी तो सूपडे के समान है। यह सुनकर छठा बोला—नही जी, हाथी तो घडे के समान है। तब सातवा अन्धा बोला—ये सभी झूठ बोलते हैं। हाथी को मैंने अच्छी तरह देखा है। हाथी तो चबूतरे के समान है। इस प्रकार वे अन्धे आपस मे ही लडने झगडने लगे। और वे मसखरे उनका तमाशा देखने लगे।

अधो का झगडा ही चल रहा कि इतने मे एक समझदार व्यक्ति उधर से निकला। उसने उन्हे लडते-झगडते देखकर पूछा कि अरे सूरदासो, आज तुम लोग आपस मे ही क्यो लड-झगड रहे हो। उनमे से एक बोला—भाई सा०, आखें फूट गई तो फूट गई। परन्तु इन लोगो का हिया ही फूट गया है। इन लोगो की झूठी बात को कैसे मान लेवे ? उसने पूछा कि क्या बात है ? उसने कहा हम लोग हाथी को देखकर लौट रहे है। लोगो के पूछने पर कोई उसे मूसल के समान और कोई सूपडे के समान बताता है, कोई किसी प्रकार का और कोई किसी प्रकार का बताता है। अब बताये कि इन लोगो की झूठी बात को कैसे सच मान लिया जाय ! उसकी बात सुनकर उस समझदार आदमी ने कहा—सूरदासजी, तुम सातो ही झूठे भी हो और सच्चे भी हो। तब वे सभी सूरदास बोल उठे—आप बहुत अच्छे न्याय करने वाले मिले—जोकि सभी को एक ही लाठी से हाक रहे हैं। यह नही हो सकता कि सभी झूठे हो, सभी सच्चे ? आप हमारा न्याय ठीक रीति से कीजिए। तव उसने कहा—देखो, तुम लोग सच्चे तो इसलिए हो कि जो अग हाथी का तुम्हारे हाथ मे आया, उसके अनुसार तुम उसे बता रहे हो। और झूठे इस-लिए हो कि तुम लोग उस एक-एक अग को हाथी मान रहे हो। तुम

लोग आपस मे तनातनी क्यो करते हो ? मैं कहता हू कि तुम सातो ने ही हाथी देखा है, इसलिए तुम सब सच्चे हो। पर उसके अग न्यारे न्यारे हैं। जो कहता है कि हाथी थम्भे के समान है, उसने तो हाथी के पैर देखे हैं। जो हाथी को कोयटे के लाव जैसा कहता है उसने हाथी की सूड देखी है। जो हाथी को मूसल जैसा कहा करता है, उसने हाथी के दात देखे है। जो घट्टे के समान कहता है, उसने हाथी का माथा देखा है। जो सूपडे के समान कहता है, उसने हाथी के कान देखे हैं। जो हाथी को चबूतरे के समान कहता है उसने हाथी का पेट देखा है। और जो रस्सी के समान बताता है उसने उसकी पूछ पकडी है, अब तुम लोग इन सातो ही अगो को इकट्ठा करो तो असली हाथी का पूरा स्वरूप तुम्हारी समझ मे आ जायगा। अन्यथा नही आयगा।

भाइयो, जिस प्रकार एक-एक अग को हाथी मानने पर जैसे वे सूरदास आपस मे झगडे, इसलिए वे सब झूठे थे, क्योकि एक अग-रूप हाथी नही है, किन्तु सर्व-अगो के समुदाय रूप ही हाथी है। इसी प्रकार जो लोग केवल अन्य-निरपेक्ष भक्ति, ज्ञान, क्रिया और सेवा-शुश्रूषा को ही धर्म मान रहे हैं, अत वे झूठे हैं, क्योकि एक अग ही धर्म नही है। किन्तु ये चारो ही धर्म के अग हैं, उन चारो का मिलना ही धर्म का पूर्ण स्वरूप है। इसलिए, चार निक्षेप, पाच समवाय और सात नय को इकट्ठे करके सब को स्वीकार करने पर और सभी अगो का पालन करने पर ही धर्म सम्भव है, अन्यथा नही।

धर्म का सार समभाव

यदि आप लोग एक ही बात मे धर्म का स्वरूप समझना चाहते हैं तो वह है समभाव। अनुयोग द्वार सूत्र मे कहा है—

> जो समोसव्वभूएसु तसेसु थावरे सु य।
> तस्स सामाइय होइ इइ केवलि भासियं॥

जो त्रस एव स्थावर आदि सब जीवो के प्रति समभाव रखता है, उसी को सच्ची सामायिक होती है—ऐसा केवली भगवान ने कहा है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य भी कहते है—

अन्धे, क्यो झूठ बोल रहा है ? पहले खराब करनी की सो तो अब अन्धा बना है और फिर झूठ बोल कर क्या अगले जन्म मे भी अन्धा बनना चाहता है ? हाथी तो मैंने देखा है, वह तो रस्सीके समान है । तब तीसरा अन्धा उसकी बात काटते हुए बोला—अजी, ये दोनो झूठ बोल रहे हैं। हाथी न तो थम्भे के समान है और न रस्सी के समान ही ! किन्तु हाथी तो कोयटे के (कूएँ लाव के समान है । तब चौथा अन्धा बोला—नही, नही, हाथी तो मूसल के समान है । इसे सुनते ही पाचवा बोला—हाथी तो सूपडे के समान है । यह सुनकर छठा बोला—नही जी, हाथी तो घडे के समान है । तब सातवा अन्धा बोला—ये सभी झूठ बोलते है । हाथी को मैंने अच्छी तरह देखा है । हाथी तो चबूतरे के समान है । इस प्रकार वे अन्धे आपस मे ही लडने झगडने लगे। और वे मसखरे उनका तमाशा देखने लगे ।

अधो का झगडा ही चल रहा कि इतने मे एक समझदार व्यक्ति उधर से निकला । उसने उन्हे लडते-झगडते देखकर पूछा कि अरे सूरदासो, आज तुम लोग आपस मे ही क्यो लड-झगड रहे हो । उनमे से एक बोला—भाई सा०, आखें फूट गई तो फूट गई । परन्तु इन लोगो का हिया ही फूट गया है । इन लोगो की झूठी बात को कैसे मान लेवे ? उसने पूछा कि क्या बात है ? उसने कहा हम लोग हाथी को देखकर लौट रहे है । लोगो के पूछने पर कोई उसे मूसल के समान और कोई सूपडे के समान बताता है, कोई किसी प्रकार का और कोई किसी प्रकार का बताता है । अब बताये कि इन लोगो की झूठी बात को कैसे सच मान लिया जाय ! उसकी बात सुनकर उस समझदार आदमी ने कहा—सूरदासजी, तुम सातो ही झूठे भी हो और सच्चे भी हो । तब वे सभी सूरदास बोल उठे—आप बहुत अच्छे न्याय करने वाले मिले—जोकि सभी को एक ही लाठी से हाक रहे हैं । यह नही हो सकता कि सभी झूठे हो, सभी सच्चे ? आप हमारा न्याय ठीक रीति से कीजिए । तब उसने कहा—देखो, तुम लोग सच्चे तो इसलिए हो कि जो अग हाथी का तुम्हारे हाथ मे आया, उसके अनुसार तुम उसे बता रहे हो । और झूठे इस-लिए हो कि तुम लोग उस एक-एक अग को हाथी मान रहे हो । तुम

लोग आपस मे तनातनी क्यो करते हो ? मैं कहता हू कि तुम सातो ने ही हाथी देखा है, इसलिए तुम सव सच्चे हो। पर उसके अग न्यारे न्यारे हैं। जो कहता है कि हाथी थम्भे के समान है, उसने तो हाथी के पैर देखे हैं। जो हाथी को कोयटे के लाव जैसा कहता है उसने हाथी की सूड देखी है। जो हाथी को मूसल जैसा कहा करता है, उसने हाथी के दात देखे हैं। जो घड़े के समान कहता है, उसने हाथी का माथा देखा है। जो सूपड़े के समान कहता है, उसने हाथी के कान देखे हैं। जो हाथी को चवूतरे के समान कहता है उसने हाथी का पेट देखा है। और जो रस्सी के समान वताता है उसने उसकी पूछ पकडी है, अव तुम लोग इन सातो ही अगो को इकट्ठा करो तो असली हाथी का पूरा स्वरूप तुम्हारी समझ मे आ जायगा। अन्यथा नही आयगा।

भाइयो, जिस प्रकार एक-एक अग को हाथी मानने पर जैसे वे सूरदास आपस मे झगडे, इसलिए वे सव झूठे थे, क्योकि एक अग-रूप हाथी नही है, किन्तु सर्व-अगो के समुदाय रूप ही हाथी है। इसी प्रकार जो लोग केवल अन्य-निरपेक्ष भक्ति, ज्ञान, क्रिया और सेवा-शुश्रूषा को ही धर्म मान रहे हैं, अत वे झूठे है, क्योकि एक अग ही धर्म नही है। किन्तु ये चारो ही धर्म के अग हैं, उन चारो का मिलना ही धर्म का पूर्ण स्वरूप है। इसलिए, चार निक्षेप, पाच समवाय और सात नय को इकट्ठे करके सर्व को स्वीकार करने पर और सभी अगो का पालन करने पर ही धर्म सम्भव है, अन्यथा नही।

धर्म का सार समभाव

यदि आप लोग एक ही वात मे धर्म का स्वरूप समझना चाहते हैं तो वह है समभाव। अनुयोग द्वार सूत्र मे कहा है—

> जो समोसव्वभूएसु तसेसु थावरे सु य।
> तस्स सामाइयं होइ इइ केवलि भासियं ॥

जो त्रस एव स्थावर आदि सव जीवो के प्रति समभाव रखता है, उसी की सच्ची सामायिक होती है—ऐसा केवली भगवान ने कहा है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य भी कहते हैं—

चारित्त खलु धम्मो, धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हि समो ॥

निश्चय से चारित्र ही सदाचार ही— धर्म है और वह धर्म समभाव रूप कहा गया है । वह समभाव क्या है ? मोह (दर्शन मोह, या मिथ्यात्व भाव) ओर क्षोभ (चारित्र मोह या कषाय भाव) से रहित आत्मा का जो शुद्ध परिणाम है, उसी का नाम समभाव है और वही निश्चय नय से धर्म कहा गया है ।

भाइयो, प्रत्येक वस्तु का अलग-अलग स्वभाव है और वही उसका धर्म है । क्योकि आगम मे '**वत्थुसहावो धम्मो**' ऐसा कहा गया है । आत्मा भी एक स्वतन्त्र वस्तु है । उसका स्वभाव समभाव है । उस समभाव मे रहने पर ही उसे अपने धर्म मे अवस्थित समझना चाहिए । जब वह अपने इस समभाव रूप धर्म मे अवस्थित नही है, तब समझना चाहिए कि वह अधर्म रूप मे परिणत हो रही है । इसलिए हमे प्रत्येक वस्तु मे समभाव रखना चाहिए और जिस वस्तु का जैसा स्वभाव है, उसको उसी रूप मे रहने देना चाहिए । हमे जिस वस्तु से जितना और जैसा प्रयोजन अभीष्ट है, उससे उतना ही समभावपूर्वक ले लेना चाहिए । क्योकि हमे तो अपने स्वार्थ की सिद्धि से प्रयोजन है । यहा पर आप लोग सोच रहे होगे कि महाराज स्वार्थ-सिद्धि को अपना प्रयोजन कैसे बतला रहे है । क्योकि स्वार्थ-सिद्धि तो बुरी बात है । सो भाइयो, यहा पर उस लौकिक स्वार्थ-सिद्धि से प्रयोजन नही है, क्योकि वह तो स्व यानी अपनी आत्मा का यथार्थ प्रयोजन नही है, वह तो शरीर और इन्द्रियादिक का प्रयोजन है, ऐसा स्वार्थ तो क्षण-भगुर है और पाप-वर्धक है, क्योकि लौकिक स्वार्थ-साधन से तो तृष्णा बढती है और उसके बढने से मनस्ताप बढता है । जहा पर मन का सन्ताप बढ रहा हो, वहा पर आत्मिक शान्ति कहा सम्भव है । इसलिए सच्चा स्वार्थ तो स्व अर्थात् अपने आत्मा मे समभाव रूप से स्थित होना ही है । उसी को सच्चा स्वार्थ कहते हैं । समन्तभद्राचार्य भगवान सुपार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए कहते हैं कि—

स्वास्थ्य यदात्यन्तिकमेष पुसा स्वार्थो न भोगः परिभगुरात्मा ।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्ति रिती दमस्यद् भगवान् सुपार्श्व ॥

आत्यन्तिक रूप से—चरम सीमा को प्राप्त होकर जो अपना स्वाथ्य है—अपनी आत्मा मे स्थिरता है, वही पुरुषो का सच्चा स्वार्थ है। क्योकि वह अविनश्वर है। यह इन्द्रिय विषयो के भोग ने रूप स्वार्थ सच्चा स्वार्थ नही है। क्योकि विनश्वर-स्वरूप वाला है। इस क्षणभगुर विषय-भोगो के सेवन से तृष्णा वढती है और उसके वढने से सन्ताप की शान्ति नही हो सकती है। इस प्रकार भगवान् सुपार्श्वनाथ ने हम सव लोगो को परम शान्ति प्राप्त करने का उपदेश दिया है।

ज्ञान की कुजी . अनेकातवाद

जो लोग जैनधर्म के अनेकान्तवाद से परिचित नही है, वे लोग ही एकान्तवाद को पकड कर वस्तु के यथार्थ स्वरूप से अनभिज्ञ रहते हैं। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिए अनेकान्तवाद का आश्रय लेना आवश्यक है। अभी सात सूरदासो का एक दृष्टान्त आप के सामने कहा। एक दूसरा दृष्टान्त और भी आपके सामने रखा जाता है, जिससे आप लोग जान सकेंगे कि किसी लौकिक प्रयोजन की सिद्धि भी किसी एक कारण से नही होती है। किन्तु उसकी सिद्धि के लिए भी अनेक कारणो की आवश्यकता है। जैसे कोई कहे कि तवा होवे तो रोटी वने, कोई कहे कि आग होवे तो रोटी वने, कोई कहे कि चूल्हा हो तो रोटी वने, कोई कहे कि पानी होवे तो रोटी वने, कोई कहे कि परात होवे तो रोटी वने और कोई कहे कि आटा होवे तव रोटी वने। भाइयो, किसी एक साधन मात्र से भी रोटी नही वन सकती है और किसी एक साधन के विना भी रोटी नही वन सकती है। रोटी वनने के लिए सभी साधन-अपेक्षित है, सभी के मिलने पर ही रोटी वन सकेगी, अन्यथा नही। इसी प्रकार ज्ञानी जन कहते हैं कि सारी वातो का यथास्थान उपयोग मानकर सव का यथास्थान महत्त्व स्वीकार करो। दुनिया के धर्मो मे और तुम्हारे जैनियो के धर्मो मे यही अन्तर है कि वे लोग एक-एक अग को ही धर्म मान रहे है तव जैन धर्म सभी अगो के समुदाय को धर्म कहता

है। वस्तु अनेक धर्मात्मक है, उसे अनेक दृष्टियो से, उनके अपेक्षाओ से देखने पर ही यथार्थतत्त्व हस्तगत हो सकता है, एक दृष्टि से देखने पर नही। इसी का नाम अनेकान्त दृष्टि है। इस अनेकान्त दृष्टि से वस्तु स्वरूप को समझ करके भिन्न-भिन्न नयो की अपेक्षा वस्तु स्वरूप के कथन करने का नाम ही स्याद्वाद है। जैनधर्म की महत्ता इसी स्याद्वाद से है। एक ही अपेक्षा से वस्तु स्वरूप को पकडने पर जैन नही कहला सकता, क्योकि अनेकान्त दृष्टि से ही धर्म है।

तत्त्व का स्वरूप

आज पर्युषण पर्व का पहिला दिन है। आज के दिन ज्ञानावरणीय कर्म को तोडना है, उसे कमजोर करना है और उसके क्षयोपशम का प्रयत्न करके अपनी आत्मा को निर्मल ज्ञानवान् बनाना है। इसके लिए पहिला कारण बताया कि देव, गुरु और धर्म की सेवा-भक्ति करो। देव कौन हैं ? जो वीत-राग है, जिन्होने राग द्वेष, मोह आदि समस्त दोषो को जीत लिया है, सर्वज्ञ है अर्थात् ससार के त्रैलोक्य और त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्यो के गुण-पर्यायो को हस्तामलकवत् जान रहे हैं और संसार के प्राणियो को हित के उपदेष्टा—शास्ता हैं, ऐसे जिनेन्द्र अरहन्त-सिद्ध भगवान् ही सच्चे देव हैं। गुरु वे हैं जिन्होने कनक-कामिनी का त्याग कर दिया है, विषयो की आशा से रहित हैं, आरम्भ-परिग्रह से रहित हैं और ज्ञान-ध्यान एव तप मे लगे रहते हैं, वे ही सच्चे गुरु हैं। जिन्होंने ससार की समस्त माया को पीछे कर दिया और मोक्ष को आगे रखकर उसे पाने का अहर्निश प्रयास करते रहते हैं। पाच समिति, तीन गुप्ति और पच महाव्रत रूप साधु के आचार मे जिन्होने अपने शरीर को केशरिया किया हुआ है। यदि मरण भी आ जाय तो भी जिन्हें उसकी कोई परवाह नही है परन्तु व्रतो के परिपालन मे दृढ हैं। ऐसे साधु-सन्त पुरुषो को ही गुरु माना गया है। तथा धर्म किस मे है ? दया मे धर्म है। सारे चराचर जीवो पर समभाव रखे और यह समझे कि जैसी हमारी आत्मा है, वैसी ही दूसरो की भी आत्मा है। यदि हमको समय पर भोजन पानी नही मिले तो हमे दुःख होता है, मकान—वर्तन, वस्त्र आदि नही मिलें, तो

हमे दु ख होता है, वैसे ही दूसरे जीवो को भी दु ख होता है। हमको समय पर आवश्यक वस्तुओं के मिलने से जैसे मन मे सुख होता है, इसी प्रकार ससार के अन्य प्राणियो को आवश्यकता पूरी होने पर उन्हें भी सुख होता है। इस लिए हमे किसी को दु ख नही पहुँचाना चाहिए। किन्तु सभी को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा विचार करके भाइयो, अपनी ममता उतारो और जिनको जिस वस्तु की आवश्यकता है, उसे वह वस्तु पहुचाने का प्रयत्न करो। यदि सब लोग ऐसा सोचकर सब को सुखी बनाने का प्रयत्न करने लगे तो आज जो कम्युनिस्ट और नक्सलवादियो का वातावरण बन रहा है, उसके बनने का अवसर ही नही आयगा। आज आप लोगो के सामने कैसी कैसी बातें आ रही है कि जिनको आज तक न कभी सुना और न कही पढा भी है। आज का वातावरण तो यह है कि जिसके पास जमीन अधिक है, उससे छीन लो और जिसके पास नही है, उसे दे दो। यह अवसर क्यो आया ? इसीलिए आया कि एक के पास हजारो बीघा भूमि है और एक के पास एक हाथ भी जमीन नही है और वे खेती वाडी के विना भूखे मर रहे हैं। यदि तुम ही अपने पास सैकडो बीघा जमीन रखना चाहोगे तो यह बात अब चल नही सकती है। आज का जमाना कहता है कि सबके पास उसके निर्वाह के योग्य भूमि होना चाहिए। आज भूमि-हीन लोगो को भूमि देने के लिए आन्दोलन हो रहा है कि भूमिवालो से भूमि छीनो और भूमि-हीनो को दो। जब ऐसी अवस्था है, तब क्या वे थोडे समय के बाद मकान देने के लिए नही कहेंगे क्या ? आज जो आधी, अन्धड या प्रवाह चल रहा है, वह किसी के रोके रुकेगा नही। अब आप चाहे हमे भला कहें या बुरा ? मगर जो प्रवाह आ रहा है उसे रोकने की शक्ति किसी मे नही है। ससार मे सदा से ही यह होता आया है कि अन्याय के युग मे अन्याय का प्रवाह आया और न्याय के युग मे न्याय का प्रवाह आया। धर्म के युग मे धर्म का प्रवाह बहा और अधर्म के युग मे अधर्म का दौरदौरा रहा। इसीलिए भगवान् ने पहिले से ही हमे सचेत करते हुए कहा कि भाई, अपनी तृष्णा का नियमन करो, अपनी आवश्यकता से अधिक का सग्रह मत करो तो शान्ति रहेगी और कभी दुखी नही हो सकोगे।

सज्जनो, आप लोग स्वय ही विचार करे कि चार भाई तो दिन मे पाँच वार जीमें और चार भाइयो को एक बार भी भर पेट न मिले ? यह कहा का न्याय है ? अब यह अन्धेर नही चल सकता है। अब तो भूखे रहने वाले वे भाई विद्रोह या विप्लव करेंगे ही। उसे रोकने का उचित मार्ग यही है कि भाइयो, आप लोग भी हमारे पास आ जाओ। अब हम पाच वार न जीमेगे, किन्तु अपन सब मिलकर चार वार ही जीमेगे। अब तुम्हें भूखे रहने की आव श्यकता नही है। ऐसा करने से ही सबको शान्ति मिल सकेगी। जैन धर्म में एकासन, आयबिल, उपवास, बेला, तेला आदि करने का क्या कारण है ? वास्तव मे तपस्या करने का प्रथम यही प्रयोजन रहा है कि हम अपनी जिह्वा पर नियत्रण रखेगे। मन और इन्द्रियो के विकारो को कम करने के लिए भोजन पर रोक लगा दी। दूसरा कारण यह है कि आज हमारे उपवास करने से जो भोजन बचेगा, वह दूसरे के काम आ जायगा। जो भूखे हैं, उन्हें खाने को मिल जायगा। इससे देश मे विप्लव भी नही होगा और आतक भी नही फैलेगा। महीने मे दो चार उपवास करने वाले जैनियो मे बहुत मिलेंगे। जितनी अधिक तपस्या की जाती है, उससे हमारी आत्मा का तो कल्याण होता ही है और दुखित-बुभुक्षित मनुष्यो को सहायता भी प्राप्त होती है। इस प्रकार देव, गुरु और धर्म की भक्ति करें।

सच्ची भक्ति यही है कि जैसा उन्होने सुख-प्राप्ति का मार्ग बतलाया है, उसके ऊपर चलें। इसके करने से हमारे ज्ञान के ऊपर जो आवरण चढा हुआ है वह दूर होगा।

ज्ञानी का गुणोत्कर्ष

ज्ञानावरणीय कर्म को दूर करने का दूसरा उपाय बताया गया है कि ज्ञानी पुरुषो का गुण-गान करो। उनकी विनय करो और उनकी स्तुति करो कि धन्य है आपको ! आपने अपने कामादि विकारो को जीत करके कैसा निर्मल और अगाध ज्ञान प्राप्त किया है ? आपने कैसी अनुपम भक्ति और सेवा-सुश्रूपा अपने गुरु की की है। आपको लाख-लाख धन्यवाद है। ज्ञानी पुरुषो के समान ज्ञान की भी भक्ति करो, मति, श्रुत, अवधि, मन.पर्याय

और केवल ज्ञान की स्तवना करो, गुण-गान करो और मन मे यह विचार करते रहो कि —

ज्ञान समान न आन जगत मे सुख को कारण,
यह परमामृत जन्म-जरा मृति रोग निवारण ।

ससार मे ज्ञान के समान और कोई सुख का कारण नही है । यह ज्ञान जन्म, जरा और मरण रूपी अनादि काल के रोगो का निवारण करने के लिए परम अमृत के समान है ।

धन समाज गज वाजि-राज तो काज न आवे,
ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावे ।
तास ज्ञान को कारण स्व-पर-विवेक बखानो,
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनो ॥

हे भाई, यह धन, यह कुटुम्ब, परिवार का समुदाय, ये हाथी घोडे और राज-पाट, यह सब तेरे कुछ भी आत्म-कार्य मे सहायक होने वाले नही है । ज्ञान यह आत्मा का स्वरूप है । यदि इसकी एक बार भी प्राप्ति हो जायगी तो फिर यह आत्मा के साथ अचल हो करके रहेगा, कभी भी दूर नही होगा प० दौलतराम जी इस ज्ञान की महिमा का गान करते हुए आगे और भी कहते है—

जे पूरव शिव गये, जाहि, अब आगे जैहै,
सो सब महिमा ज्ञान तनी मुनिनाथ कहै है ।
विषय-चाह दव-दाह जगत-जन-अरणि दझावै
तासु उपाय न आन, ज्ञान घन-घान बुझावै ॥

आज तक जितने भी जीव मोक्ष को गये हैं, आज जा रहे हैं और आगे जावेंगे, यह सब ज्ञान की ही महिमा है, ऐसा मुनियो के नाथ श्रीजिनेन्द्र देव ने कहा है । यह ज्ञान रूपी मेघ-धारा ही विषयो की चाह रूपी दावानल मे जलते हुए ससारी प्राणियो को जलने से बचाने वाली है, उस विषय—चाह दावानल को ज्ञान रूपी मेघ-धारा के सिवाय और कोई नही बुझा सकता है । इसलिए हे भव्य जीवो, हजारो काम छोड करके और करोडो उपाय करके इस ज्ञान को अपने हृदय मे लाओ । तभी तुम्हारा ससार से उद्धार होगा ।

शास्त्र विनय क्या है ?

ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम का तीसरा कारण है कि ज्ञान के जो उपकरण शास्त्र-पुस्तक आदि हैं, उनका विनय करो, जिनको इनकी आवश्यकता हो, उन्हें शास्त्र-पुस्तक आदि प्रदान करो, पाठशालाए और विद्यालय खुलवाओ, जिससे ज्ञानार्थी जीव उनमे जाकर ज्ञान का अभ्यास कर सकें। ज्ञान के साधनो की आशातना मत करो। पोथी—शास्त्र या पुस्तको को मत फाडो, उन्हें यतना से रखो। यदि हमारे पूर्वज इन पोथी-शास्त्रो की इस प्रकार से आशातना करते होते, तो क्या आज सैकडो वर्ष पुरानी प्रतिया मिल सकती थी ? नही मिल सकती थी। उन्होने बडी सावधानी से उन लिखित प्रतियो को सभाल कर रखा तो आज हमारे ये ज्ञान-भण्डार विद्यमान हैं। आज के लोग तो यह विचार करते हैं कि इन पुराने पत्रो मे क्या है ? इनको रद्दी मे वेच दो। यह तो ओटाले के वास्ते अटाला है। परन्तु जो इनके महत्त्व को समझते है, वे इनकी कद्र करते हैं। इस ज्ञान के बिना क्या जाति, देश, समाज और धर्म टिक सकता है ? कदापि नही।

किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

अन्धकार है वहां जहां आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह कौम जहां साहित्य नहीं है॥

भाई, जहां आदित्य (सूर्य) नही है तो वहां अन्धकार है। जिस जाति का ज्ञान—साहित्य नही है, वह जाति तो मुर्दा ही है। इसलिए हमे ज्ञानी पुरुषो की, ज्ञान के उपकरणो की, ज्ञान के साधनो की भक्ति करना चाहिए। पोथी पत्रो को खराब नही होने देवें, उनकी पूरी सभाल रखे। ससार का अन्य सर्व वस्तुओ का मिलना सुलभ है, परन्तु ज्ञान का भण्डार मिलना बहुत कठिन है। कहा है—

फरे है गावड दोवड़ी, फर - फर नीचा नैन।
इण कष्टे पोथी लिखी, जतना रखिए सैन॥

जिस समय लेखक लोग इन पोथियो को लिखते थे तब अपनी गर्दनो को नीचे किये रहते थे, नेत्र पत्रो पर जमाये रखते थे और एकाग्र चित्त होकर

लिखने का कठिन श्रम उठाते थे, तब कहीं बड़े कष्टों से ये लिखी जाती थी। उन्होंने तुम्हारे फाड़ने या खराब करने के लिए नहीं लिखी। किंतु उन लोगों के लिए लिखी जो कि ज्ञान के जिज्ञासु थे, पिपासु थे और विद्यार्थी थे। पुरानी पोथियों के अन्त मे लेखक गण अपनी करुण कष्ट कथा को बड़े ही विनम्र शब्दों मे लिखते आये हैं कि—

> तैलाद् रक्षेद् जलाद् रक्षेद् रक्षेच्छिथिलबन्धनात्।
> मूर्खहस्ते न दातव्यमेव वदति पुस्तिका॥

लेखकगण कहते हैं कि भाई इस पुस्तक को तेल से बचाना, पानी से बचाना और ढीले बंधन से बचाना तथा मूर्ख के हाथ मे भी न देना, ऐसा यह पोथी कह रही है।

पुस्तक देने का काम पड़े तो ज्ञानी और चतुर पुरुष को ही देना। परन्तु मूर्ख के हाथ मे मत देना। जो इन पोथियों का महत्त्व जानते हैं, उन्हे दूसरो के द्वारा इनमे की गई गड़बड़ी सहन नहीं होती है।

मैं एक बार पाली गया। वहां पर फतीरचन्दजी अच्छे होशियार वैद्य थे। उन्होंने अनेक हस्तलिखित धर्मग्रन्थो का संग्रह किया था। उन्होने एक सूत्र की टीका मुझे दिखाई और कहा कि यह प्राचीन है। मैंने उसे लिया और उसके एक पत्र को जरा असावधानी से उठाया—जिससे कि उसके टूटने की संभावना थी—तो उन्होंने देखते ही कहा—आप बड़े कहलाते हैं, परन्तु आपको पुस्तक रखने का ध्यान नहीं है। मैंने देखा कि वास्तव मे उसका एक पन्ना मेरी असावधानी से फट गया था। वे बोले—क्या यों ही पन्ने फाड़ते चले जायेंगे? सुनकर मुझे कुछ धक्का सा लगा। यद्यपि उनके वचन कुछ कठोर थे, परन्तु उनके कहने मे हित-बुद्धि थी। फिर कहा - कि पन्ना ऐसे नहीं, ऐसे रखना। भाई, यह पाटी क्यो रखते हैं? इसीलिए कि पोथी के पन्ने खराब नहीं हो जावे। उन्होंने कुछ कड़वे वचनो से मुझे कहा था, परन्तु मुझे अभी तक याद है कि मैंने गलती की थी, अतः उन्होंने उपालम्भ दिया। इसलिए पुरानी पोथी-पन्नो की अवहेलना न करके खूब सँभाल के रखना चाहिए। यह भी ज्ञान का विनय है। जो मनुष्य इन पांच कारणो से ज्ञान और ज्ञान के उप-

करणो की सावधानीपूर्वक रक्षा करते हैं, स्वयं उन्हे पढते हैं और दूसरो को पढाते हे, उपदेश दे कर दूसरो को सम्बोधते हैं और उन्हे सन्मार्ग का परिज्ञान कराके उस पर चलाने का प्रयत्न करते हैं, उनके बँधे हुए ज्ञानावरणीय कर्म के वन्धन ढीले पडते हैं और ज्ञान का क्षयोपशम प्रकट होता है। जो लोग एक दिन मे पचास, सौ और दोसौ श्लोक भी याद कर लेते हैं, उनके ज्ञान का क्षयोपशम बहुत अधिक जानना चाहिए। यदि उनके ऐसा क्षयोपशम न हो, ज्ञान का अन्तराय टूटा हुआ न हो तो इतना याद नही रह सकता है। आज आपको कोई बात बताई और आपने तोता के समान 'बोल सुआ, राम-राम' कह दिया, पर राम के भाव की भावना जैसे तोते को नही है, वैसे ही आपको भी नही है तो ऐसे तोता-रटन्त ज्ञान से कोई लाभ नही है। परन्तु जिनके ज्ञान की अन्तराय टूटी हुई है, वे एक पद या वाक्य को सुनकर ही उसमे से अनेक ऐसी रहस्य भरी बातो को निकाल लेते हैं कि जिन्हे सुनकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं। और कहने लगते हैं कि न जाने इसके दिमाग मे कितनी बाते भरी हुई हैं। यह सब ज्ञान के क्षयोपशम का ही चमत्कार है।

एकपद : एक मास मे

कोटा-सम्प्रदाय के पूज्य दौलतराम जी स्वामी अनेक शिष्यो के गुरु थे। उन्होने सुना कि दिल्ली मे दलपतरायजी चौरडिया शास्त्रो के बडे धुरन्धर जानकार श्रावक हैं। अत उन्होंने सोचा कि दिल्ली जाकर दलपतरायजी श्रावक से शास्त्रो की वाचना लेनी चाहिए। कहाँ वे साधु और कहाँ वे श्रावक ! पर ज्ञान-प्राप्ति की भावना से प्रेरित होकर वे कोटा से विहार करके दिल्ली पधारे। उनके दिल्ली पहुँचते ही दलपतराय जी उनकी सेवा मे उपस्थित हुए। भाई, आज तो किसी को थोडा सा ज्ञान हो जाय, तो कहता है कि मैं वडा पडित हो गया। परन्तु पुराने समय मे पुरुषो को ज्यो ज्यो अधिक ज्ञान की प्राप्ति होती थी, त्यो त्यो वे विनयवान और भक्तिमान होते जाते थे। उन्हे ज्ञान का अहकार नही आता था। दिल्ली मे जो भी सन्त-सती गण पधारते थे तो वे उनका व्याख्यान सुनते और सोचते कि ये हमारे पूज्य

है तो कोई न कोई नई बात अवश्य सुनने को मिलेगी । वे पूज्य दौलतरामजी स्वामी के पास गये, दर्शन-वन्दन किया । दोपहर को वे फिर स्वामीजी के पास गये तो स्वामीजी ने कहा—दलपतरायजी, मैं कोटा से यहाँ इस भावना से आया हूँ कि भगवतीसूत्र की आपसे वाचना लूँगा । उन्होंने बड़े विनम्र शब्दों में कहा - स्वामिन्, सेवक आपकी सेवा में उपस्थित है । मेरे पास जो कुछ है, वह सब आप गुरुजनों के प्रसाद से ही प्राप्त हुआ है । यदि यह आपके उपयोग में आता है तो यह मेरा सौभाग्य है । पर महाराज, यह तभी संभव है, जब आपका यहीं पर चौमासा हो । क्योंकि, दस-पाँच दिन में शास्त्र की वाचना का आनन्द नहीं मिलेगा । उनके कहने पर पूज्यश्री ने चौमासा वहीं कर लिया । अब पूज्यजी ने भगवतीसूत्र का पाना उठाया । तब दलपतरायजी ने पूछा—स्वामिन्, ये किस शास्त्र का पाना है । उन्होंने कहा—भगवतीसूत्र का । दलपतरायजी बोले—पहिले आप दशवैकालिक लेवें और भगवतीसूत्र रख देवें । स्वामीजी बोले—इसकी तो वाचना हमारे पोते-पर-पोतेओं को दी है, अब उसकी वाचना क्या लेना है ? मैं तो भगवतीसूत्र की वाचना लेने को आया हूँ । दलपतरायजी ने कहा—मेरा निवेदन है कि पहिले इसकी वाचना तो लीजिए । पीछे आपकी समझ में आवे तो लीजिए, अन्यथा फिर सोचा जायगा । पूज्यजी को भी जँच गई और दशवैकालिक की वाचना लेनी प्रारम्भ कर दी । पहिली गाथा आई—'**धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं**' । इस एक गाथा के ऊपर सारा सावन मास समाप्त हो गया । आखिर पूज्यजी को कहना पड़ा कि ओ हो श्रावकजी, आपका इतना गहन ज्ञान है ? उन्होंने कहा ज्ञानियों का ज्ञान तो अथाह है, उनके सामने मेरा ज्ञान क्या है ? पूज्यजी ने कहा—अभी तो पहिली गाथा में ही एक महीना पूरा हो गया । उन्होंने कहा—स्वामिन् आप कहें वैसे गाड़ी चलाऊँ ? पूज्यजी ने कहा—दशवैकालिक तो पूरा होना ही चाहिए । चार मास में छह जीवणीकाय पूरी हुई और उनको बत्तीस सूत्रों की जानकारी करा दी । अब कोई कहे कि छह जीवणी में सब कर दिया तो पीछे क्या रहा ? आरे के पाचवे उतरते समय में एक छह जीवणी (अध्ययन) रहेगी । यदि वह नहीं रहे, तो साधु-साध्वी अपना साधुपना

कैसे पाल सकेंगे ? भाई, दलपतरायजी जैसे वाचना देने वाले और पूज्यजी जैसे वाचना झेलने वाले थे तो इतना ज्ञान मिला। जब ज्ञान का ऐसा विशिष्ट क्षयोपशम था, तभी ऐसा ज्ञान प्राप्त हुआ। यद्यपि पढते सभी हैं, तथापि ज्ञान का विकास तो क्षयोपशम के अनुसार ही होता है।

क्षयोपशम का चमत्कार

वि० स० १९८४ की साल मे आपके यहाँ वाडीलाल भाई आये थे, जब कि वे वीकानेर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स-अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप मे जा रहे थे। यहाँ की स्थानकवासी समाज ने उनका बडा भारी सन्मान किया। उस समय वाडीलाल भाई ने एक गाथा पर भाषण दिया।

न सा जाई न सा जोणी, न तं ठाण न तं कुल।
न जाया न मुआ जत्थ, सव्वे जीवा अणतसो॥

अर्थात् ऐसी कोई जाति नही, कोई योनि नही, कोई ऐसा स्थान और कुल भी नही, जिसमे जाकर सभी जीव अनन्तवार न जन्मे हो और अनन्त-वार न मरे हो।

इस गाथा के ऊपर वे लगातार छत्तीस घटे तक एक आसन से बोलते रहे। हाँ, वीच मे कई वार चाय की प्याली अवश्य ली थी। वे इतने प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होने गुजराती भाषा मे जो अनेक लेख लिखे हैं, उन्हे जब बडे बडे तत्त्ववेत्ता दार्शनिक विद्वान् पढते है, तो कहते है कि वाह रे वाडी लाल, तेरे भीतर कितना अगाध ज्ञान भरा था। यह ज्ञान की विशालता कहाँ से आई ? इसका उत्तर एक मात्र यही है कि उसके ज्ञानावरणीय कर्म का ऐसा विशिष्ट क्षयोपशम हुआ, तव उनमे यह अगाध विद्वत्ता आई। यदि ज्ञान का क्षयोपशम न हो तो दो चार वाते वताने पर भी उनका स्मरण नही रहता है। इसका कारण यही है कि प्रथम तो ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नही है। दूसरे ससार की दूसरी वातो मे मन लगा हुआ है। इसी से पढी वात भी याद नही रहती है। यदि वाहरी वातो मे मन न जाय और ज्ञान का क्षयोप-शम प्रकट होवे तो आत्म-कल्याण की वातो मे आनन्द आयेगा और वे सदा याद रहेगी।

आज मैंने आप लोगो के समक्ष पर्युषण पर्व के प्रथम दिवस के उपलक्ष मे ज्ञान के विषय पर बात कही है। आप मे और हममे ज्ञान आयेगा, तो चांदनी हो जायेगी और प्रत्येक वस्तु स्पष्ट रूप से दिखने लग जायेगी।

अब मुझे आपके लिए यह बताना है कि अभी आपके सामने मुनिजी ने अंतगडसूत्र मे बताया कि द्वारका नामकी नगरी थी, वहां पर श्रीकृष्ण का राज्य था। वहां पर भगवान् नेमिनाथ पधारे, रानियो ने, राजकुमारो ने और सेठ साहूकार आदि ने उपदेश सुना और संसार से उद्विग्न हो साधुपना लेकर कितने ही मोक्ष पधारे और कितने ही स्वर्ग गये। परन्तु आपके मन मे यह शंका नही आई कि यादव लोग द्वारका मे कहां से आये थे? जब कि यादवो का राज्य शौरीपुर और मथुरा मे था? वे लोग क्यो शौरीपुर और मथुरा छोडकर द्वारका मे गये और किस प्रकार वहां पर बसे? इस बात का थोडे समय मे विवरण कैसे कराया जा सकता है? यह सब तो समय मिलने पर ही विस्तृत रूप से कभी बताया जायगा कि किस समय और क्यो यादव लोग अपनी वंश परम्परागत राजधानी को और अपनी मातृभूमि को छोडकर द्वारका मे गये।

आज तो आप लोग इस बात पर ही विचार करे और अपने जीवन का सिंहावलोकन करें कि हमारा ज्ञान उत्तरोत्तर बढ रहा है या घट रहा है? यदि बढ रहा है तो सत्य ज्ञान की दिशा मे बढ रहा है, अथवा मिथ्या ज्ञान की दिशा मे बढ रहा है, यदि मिथ्या ज्ञान की दिशा मे बढ रहा है, तब तो हमे संसार मे और भी रुलना पडेगा और जन्म-मरण के दुखो को भोगना पडेगा। आज यद्यपि मनुष्यो का ज्ञान बढ रहा है, तथापि वह आध्यात्मिकता की ओर न बढ कर भौतिकता की ही ओर बढ रहा है, जो कि अनन्त दुखो का कारण है। अतः हमे आत्मलक्षी होकर सत्य ज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए, तभी संसार से हमारा बेडा पार होगा।

●●

२ | सम्यक् श्रद्धा ही सार है

जिनशासन के प्रेमियो, आज पर्युषण पर्व का दूसरा दिन है। मैं आपसे कह रहा था कि आत्मा स्वतत्र है। परन्तु कर्मों के द्वारा परतत्र बनी हुई है। हमने इन कर्मों को किस प्रकार बाँधे और किस प्रकार इन्हे तोडना चाहिए, यह बात हमे एक-एक दिन बतलाना है। कल आपके सामने ज्ञाना-वरणीय कर्म के सम्बन्ध मे विस्तार से बतलाया गया था।

दर्शनावरण का अर्थ

आज दूसरे दर्शनावरणीय कर्म के सम्बन्ध मे आप से कुछ बातें करनी हैं। दर्शन नाम देखने का है। अब देखना क्या ? आप सभी ने बाग-बगीचे भी देखे है, बडे-बडे महल, किले, मकान बगले भी देखे हैं, पानी के सरोवर, भाखडा-नागल जैसे बाध, नदी-नाले और झरने भी देखे हैं। इस प्रकार मनुष्य-निर्मित और प्राकृतिक वस्तुओ को देखने मे आपने कोई कसर नही रखी है। क्या इनके देखने को ही हम 'दर्शन' कह दें। परन्तु हमारा प्रयोजन उनके देखने से नही है। हमारा प्रयोजन तो अपने आत्मस्वरूप से है। हमारा जो निज का रूप है, जिसे देखने की हमे बडी आकांक्षा लगी हुई है, उसको देखने का नाम ही वास्तव मे दर्शन है। उस दर्शन से ही हमारा

प्रयोजन है। दर्शनावरणीय कर्म उसे आवृत्त करता है अर्थात् अपनी आत्मा के दर्शन नहीं करने देता है।

जैसे आप को किसी राजा, महाराजा, राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री, राज्य के बड़े अधिकारी या बड़े श्रीमन्त सेठिया से मिलना आवश्यक है, आप वहां जाते हैं। परन्तु उसके महल, मकान या बंगला के बाहिर सन्तरी या पहरेदार बन्दूक लिये खड़ा है। वह आपको ऐसे ही सीधे जाकर दर्शन नहीं करने देता है और कहता है कि यहीं पर रुक जाओ। आप अन्दर नहीं जा सकते हैं। मैं पहिले जाकर सूचना दे दूँ और महाराजा की या अपने अधिकारी की आज्ञा लाकर दूँ, तब आप—भीतर जा सकते हैं। यद्यपि आप को उनसे मिलना बहुत आवश्यक है, परन्तु उसने बीच में आप के मिलने में व्यवधान खड़ा कर दिया, अटका डाल दिया। अतः मिलने में बाधा आगई और जब तक यह बाधा दूर नहीं होगी, तब तक आप जिनसे मिलना चाहते हैं, उनके दर्शन भी नहीं कर सकेंगे। इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म हमारे-आपके पीछे ऐसा लगा हुआ है कि वह आत्मा के दर्शन नहीं करने देता है। इस दर्शनावरणीय कर्म का बंधन कब और कैसे हुआ है, इस बात पर विचार किया जाता है।

दर्शनावरण के नौ प्रकार

दर्शनावरणीय कर्म का बन्धन नौ प्रकार का होता है—

> निद्दा तहेव पयला निद्दानिद्दा पयल-पयला य।
> तत्तो य थीणगिद्धी उ, पंचमा होइ नायव्वा।
> चक्खु मचक्खु ओहिस्स दंसणे केवले य आवरणे।
> एयं तु नव विगप्पं नायव्वं दंसणावरणं।
>
> —उत्तराध्ययन ३३। ५-६

निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, यह पांच प्रकार की निद्रा तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, और केवलदर्शनावरणीय। इनमें पहिली है निद्रा। आप पूछेंगे कि महाराज, नींद का एक ही है फिर आपने उसके पांच भेद कैसे कहे? भाई, आपके

लिए एक भले हो, परन्तु जैनागमो मे पाच प्रकार की निद्रा बताई गई है। उनका स्वभाव भी भिन्न-भिन्न है। वैद्यकग्रथ चरक सूत्र २१।५८ मे भी छह प्रकार की नीद बताई है।[1] आज के मनोविज्ञानवेत्ता भी इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि नीद की जातियाँ अनेक प्रकार की होती है। जो नीद सुखपूर्वक ली जाती है और सुख पूर्वक ही खुल जाती है, ऐसी आराम की नीद को निद्रा कहते है। अर्थात् जो नीद विस्तर पर लेटते ही आजाय और जिस समय उठना चाहें, उस समय अपने आप खुल जाय, अथवा किसी की जरासी भी आहट या आवाज के पाते ही खुल जाय, उसी नीद को आगम मे निद्रा कहा है। यथा—**सुह पडिबोहा णिद्दा**।

—निद्रा वाला पुरुष सुख से जगाया जा सकता है या सुख से जग जाता है।

दूसरी नीद का नाम है—निद्रा-निद्रा। आप विस्तर पर जाकर सोये। परन्तु घटे-आध घटे तो नीद आती ही नही। कई बार करवट बदले और पैर पटके, तब कही वडी कठिनाई से नीद आई। फिर ऐसी गहरी नीद आई कि जागने का समय हो जाने पर भी अपने आप नही खुलेगी। जब कोई घर वाला आकर आवाज और पानी के छीटे मुख पर डाले, तब कही उठेगे। दु ख से नीद आना और दु ख से कठिनाई से जागना, ऐसी नीद को ही निद्रा-निद्रा कहते है। शास्त्र मे कहा गया है कि **'णिद्दा-णिद्दाय दुक्खपडिबोहा'**। निद्रा-निद्रा वाले पुरुप को वडी कठिनाई से ही जगाया जा सकता है। इसका वर्णन करते हुए शास्त्रकारो ने कहा कि—

'णिद्दाणिद्दुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घाडिय सक्को'।

अर्थात् निद्रा-निद्रा कर्म के उदय से इतनी गहरी नीद आती है कि दूसरे के द्वारा उठाये जाने पर भी दृष्टि को उघाड नही सकता है—प्रयत्न करने पर ही वडी कठिनता से आखो को खोल पाता है।

तीसरी नीद का नाम है प्रचला। इसका स्वरूप इस प्रकार है—

पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तो वि।
ईस ईसं जाणदि मुहुं मुहुं सोवदे मद॥

---

१ १. तमोभवा—मरण के समय आनेवाली, २ कफवृद्धि से आनेवाली, ३ शरीर श्रम से, ४ विना कारण से, ५ रोग के कारण से तथा ६ रात्रि मे आनेवाली।

प्रचला कर्म के उदय से जीव कुछ-कुछ आखो को उघाड कर सोता है और सोते हुए भी थोडा-थोडा सा जानता रहता है। बार-बार मन्द नीद मे सोता है। जैसे कुत्ते की नीद होती है, वह सोते हुए भी कुछ-कुछ जागता रहता है, ऐसी बहुत हलकी नीद को प्रचला कहते हैं। यह पाचो प्रकार की निद्राओ मे सबसे उत्तम कही गई है।

चौथी जाति की नीद का नाम है प्रचला-प्रचला। इसका स्वरूप शास्त्रो मे इस प्रकार का कहा है—

पयला पयलुदयेण य वहेदि लाला चलति अगाइ।

णिद्दुदये गच्छतो ठाइ पुणो वइसइ पडेइ॥

प्रचला-प्रचला कर्म के उदय से सोते मे या बैठे-बैठे ऊघने पर मुख से लार बहने लगती है, हाथ-पैर चलते रहते हैं। इस निद्रा वाला पुरुष चलते-चलते, खडे-खडे या बैठे-बैठे ही नीद लेने लगता है। आपने भी कितने ही लोगो को हाथी, घोडे, ऊट आदि पर नीद मे ऊघते हुए देखा होगा। हमने भी ऐसे लोगो को देखा है और यहा तक देखा है कि दोनो हाथो मे घी की घडी लेकर आदमी चल रहा है और नीद भी ले रहा है। इस नीद वाला पुरुष गमन करता हुए भी कभी खडा हो जाता है, कही पर बैठ भी जाता है और कभी कही पर गिर भी पडता है। यह नीद खतरनाक है और मृत्यु का सा निमत्रण देने वाली है।

पाचवी जाति की नीद का नाम है स्त्यानगृद्धि। यह नीद इतनी गहरी आती है कि नीद मे बडे से बडा भयकर काम कर डालने पर भी जागने पर उसे उसका कुछ भी भान नही रहता है। अभी कुछ दिन पहिले 'नवनीत' नामक मासिक पत्र मे नीद के विषय मे एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमे बताया गया था कि एक शिकारी अपने दल-बल के साथ जगल मे शिकार खेलने को गया। शिकार हाथ न लगने पर उसने रात मे जगल मे ही डेरा डाल दिया। वह अपने साथियो के साथ तम्बू के भीतर सो गया और घोडे को तम्बू से बाहिर बाध दिया। सोते मे उसने स्वप्न देखा कि शेर बाहिर आया हुआ है। वह सोती अवस्था मे ही उठा और अपनी बन्दूक लेकर तम्बू

से बाहिर निकला और अपने घोडे को ही शेर समझ कर उसे गोली मार कर वापिस जाकर सो गया। प्रात काल जब उठा तो घोडे को मरा पाया। फिर भी उसे अपने द्वारा मारे जाने की याद नही आई। साथ के लोगो ने कहा—हजूर, आप ही रात मे उठे थे और बन्दूक लेकर बाहिर गये थे और गोली दागी थी। उनके कहने पर भी उसे विश्वास नही हुआ। तब उन लोगो ने बन्दूक उठाकर उसे खाली बतलाया। भाई, ऐसी निद्रा के विषय मे ही शास्त्रकारो ने कहा है कि—

दिण चितियत्थ करणी थीणद्धी अद्धचक्कि अद्धबला।

जो दिन मे चिन्तवन किये हुए कार्य को रात्रि मे सोते हुए कर डाले, ऐसी निद्रा को स्त्यानगृद्धि निद्रा कहते हैं। इस निद्रा के तीव्र उदय होने पर मनुष्य कुम्भकर्णी निद्रा लेता है अर्थात् लगातार छह मास तक सोता रहता है। ऐसी निद्रा के उदय मे कभी-कभी किसी पुरुष को आधे चक्रवर्ती अर्थात् त्रिखण्डेश्वर नारायण जैसा भी बल प्राप्त हो जाता है।

ये पाचो प्रकार की निद्राएं जीव के दर्शन गुण का घात करती हैं। इसलिए इनकी गणना दर्शनावरणीय कर्म के भीतर की गई है।

इनके अतिरिक्त दर्शनावरणीय कर्म के चार भेद और है। उनमे पहिला भेद है चक्षुदर्शनावरणीय कर्म। आप आखो से देखना चाहते हैं, किन्तु देख नही सकते। आखो मे छाया आ जाय, बादी आ जाय, फूला पड जाय और मोतिया बिन्दु हो जाय। या इसी प्रकार के अन्य नेत्र सबन्धी रोग हो जाये। मनुष्य इन दुखो से छटपटाता है और चाहता है कि मैं देखू! परन्तु देख नही सकता। एकेन्द्रिय जीवो से लेकर तीन इन्द्रिय जीवो तक के इस कर्म का प्रबल उदय रहता है, इसलिए उनको तो चक्षु इन्द्रिय ही नही प्राप्त होती है। चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीवो के जो आख प्राप्त है, वह चक्षु दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त है। किन्तु उन जीवो मे भी सभी के एक-सा क्षयोपशम नही होता है। जिसे जैसा हीनाधिक क्षयोपशम प्राप्त होता है, वह उसी प्रकार से हीन या अधिक देख सकता है।

दूसरा भेद है अचक्षुदर्शनावरणीयकर्म। चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त स्पर्शन,

रसना, घ्राण और स्पर्श इन चार इन्द्रियों के द्वारा जो सामान्य आभास या वस्तु का दर्शन होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं। इसको आवरण करने वाला कर्म अचक्षुदर्शनावरण कहलाता है। आंख से नही देखने पर भी दूसरे के पैरों की आहट से, उसी की छींक लेने से या उबासी लेने पर हमें जो यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक व्यक्ति आ रहा है, या अमुक व्यक्ति छींक रहा है, इस प्रकार का जो ज्ञान होता है, वही अचक्षुदर्शन है। इस प्रकार की शक्ति को अचक्षुदर्शनावरणकर्म रोक देता है।

तीसरा भेद यह है अवधिदर्शनावरणीय कर्म। अवधि-ज्ञान होने के पूर्व उसके विषयभूत पदार्थ का पहिले जो सामान्य दर्शन या आभास होता है, उसे अवधिदर्शन कहते है। उसे आवरण करने वाले कर्म को अवधिदर्शनावरणीय कहते हैं। हमारे आपके अवधिज्ञानावरणीय और अवधिदर्शनावरणीय कर्म का उदय है, इसलिए हम अवधिज्ञान के विषयभूत परोक्ष पदार्थों को और पर भव की पर्यायों को न जान पाते है और न देख ही पाते हैं। जिन जीवों को अवधिज्ञान प्राप्त होता है, उन जीवों को ही अवधिदर्शन प्राप्त होता है अन्यों को नहीं।

चौथा भेद है केवलदर्शनावरणीयकर्म। सर्व लोकालोक के पदार्थों को जानने की शक्ति का नाम केवल ज्ञान है और उन्हें देखने की शक्ति का नाम केवलदर्शन है। प्रत्येक प्राणी में सभी पदार्थों को देखने की शक्ति है, किन्तु केवल दर्शनावरणीयकर्म ने इस शक्ति पर आवरण डाल रखा है, इससे हमें संसार की सर्व वस्तुओं का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होने पाता है।

बंधन के कारण

अब जानने की प्रयोजन भूत बात यह है कि कैसे काम करने से दर्शनावरणीय कर्म का बंध होता है? आपको जो कारण ज्ञानावरणीय कर्म के बतलाये थे, वे ही कारण इस दर्शन गुण के विरुद्ध में किये जाते हैं, तब उन्हीं कारणों से दर्शनावरणीयकर्म का बन्ध होता है। दूसरों को शास्त्र नहीं देखने देना, ज्ञान प्राप्ति में विघ्न करना, पढ़ने वालों को नहीं पढ़ने देना, विद्यालय और पाठशाला आदि के संचालन में बाधाएं उपस्थित करना, ज्ञान के प्रचार और प्रसार को नहीं होने देना, किसी की देखी हुई वस्तु के

लगाना, शास्त्रो के पठन-पाठन के साधनो को नष्ट कर देना, पढने लिखने वालो के काम मे विघ्न-बाधाएं उपस्थित करना, दूसरे को पढता-लिखता देख कर हर्ष नही करना, बल्कि ईर्ष्याभाव करना, अनादर करना, ज्ञानी जनो को देखकर प्रमुदित नही होना, उनको आता हुआ देखकर मुख फेर लेना, किसी तत्त्व के रहस्य को जानते हुए भी दूसरे के पूछने पर कहना कि मैं इस बात को नही जानता हूँ, पठन-पाठन की सामग्री अपने पास होने पर भी दूसरे को देखने के लिए मागने पर भी नही दिखाना, अथवा यह कह देना कि मेरे पास नही है, बाहिर गई हुई है, अपने गुरुजनो का अपमान करना, गुरु का नाम नही बताना, गुरुजनो से पढने पर भी यह कहना कि मैने किसी गुरु से नही पढा है, मैने स्वय ही पढा है, अथवा अनेक गुरुजनो से पढने पर भी अपने को अप्रसिद्ध गुरुओ का शिष्य न बताकर प्रसिद्ध गुरुओ का शिष्य बतलाना, किसी की प्रशसा योग्य बात की भी प्रशसा नही करना, किसी उच्च कुलीन व्यक्ति को नीचे कुल का दिखाना, दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करना, अस्वाध्यायकाल मे पठन-पाठन करना, दर्शनीय वस्तुओ को छिपा कर रखना, किसी को देखने नही देना, तथा दूसरो के दिखाने पर उन्हे दिखाने से रोक देना, आलसी जीवन बिताना, इन्द्रियो के विषयो मे मग्न रहना, शराब, भाग, चरस, गाजा आदि नशीली वस्तुओ का सेवन करना जमीकद लहसन, प्याज आदि का भक्षण करना, अधिक निद्रा लेना, दिन मे सोना, दूसरो की दृष्टि मे दोष लगाना, देखने के साधन—चश्मा आदि चुरा लेना, इत्यादि कार्यों से इस दर्शनावरणीय कर्म का बन्ध होता है। अत हमे अपने दर्शन गुण को प्रकट करने, तथा उसके उत्तरोत्तर विकसित करने के लिए ऊपर बतलाये हुए कामो को नही करना चाहिए।

आज धर्मध्यान भी हो रहा है, त्याग-तप और प्रत्याख्यान भी हो रहे है, सन्त-सेवा भी हो रही हैं और यथाशक्ति आप लोग पैसो से ममता भी उतार रहे हैं। इतना सब कुछ करते हुए भी उसका उपयोग हमारी दृष्टि मे समुचित प्रतीत नही हो रहा है। इसका कारण क्या है ? इसमे और कोई कारण नही है। इसमे हमे अपनी ही भूल का अनुभव करना चाहिए कि हमने उन वस्तुओ को ठीक रीति से नही परखा है। यही कारण है कि

अन्य कार्यों को करते हुए जो फल मिलना चाहिए वह नहीं मिल रहा है

आज निरवोल मे आप सामायिक लेकर मेरे सामने बैठे हुए बड़े सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। मुझे यह दृश्य देखकर बड़ा आनन्द आ रहा है। इसका कारण क्या है? यदि इसी प्रकार आप लोग नित्यप्रति सामायिक करते रहें तो शासन कितना चमक उठे और शासन की कितनी प्रभावना होवे? परन्तु दुःख है कि इस पर्व के पवित्र एवं सुन्दर अवसर पर भी ये पगड़ी और साफे वाले नजर आ रहे हैं, ये इन दिनों मे अच्छे नहीं लगते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि या तो इनके पास उपकरण नहीं होंगे, या सामायिक करने मे इनको लज्जा प्रतीत होती होगी। अथवा ये दुनिया से निराले सबसे बड़े आदमी होंगे—जो सोचते होंगे कि हमे सामायिक करने की क्या आवश्यकता है? हम क्यों करें? परन्तु उन्हें सोचना चाहिए कि हम जा रहे हैं, और नया दिन है तो इस दिन के अनुरूप नया रूप नया वेष का धारण करना ही चाहिए। अरे, ये पगड़ियां और साफे तो सदा बांधते ही रहोगे? यदि कहो कि हमारे तो तीन करण और तीन योग से त्याग किया हुआ है तो फिर कोई बात नहीं है। यदि भूल गये हैं तो आज की भूल माफ की जाती है किन्तु मन मे याद रखना।

सत्यपूर्ण श्रद्धा—सम्यग् दर्शन

अब बात यह है कि हमारे भीतर एक ही वस्तु एक दृष्टि से आनी चाहिए कि हम देव, गुरु और धर्म मे पूरी श्रद्धा, पूरा विश्वास और पूरा यकीन रखें। इसी को कहते हैं—शुद्ध दर्शन या सम्यग्दर्शन। सम्यक्त्व भी इसी का नाम है। तत्त्वों की शुद्ध श्रद्धा का नाम ही सम्यक्त्व है। तत्त्व का निरूपण करना और निर्णय करके उस पर दृढ़ होना इसी का नाम सम्यग्दर्शन है। संसार मे हजारों पंथ या मत हैं, परन्तु प्रसिद्ध दर्शन तो छह ही हैं—जैनदर्शन, बौद्धदर्शन, कणाददर्शन, सांख्यदर्शन, मीमांसकदर्शन और चार्वाक-दर्शन। मूल दर्शन तो ये छह ही हैं। हां इनकी शाखा-प्रति-शाखाएं अनेक निकल गयी हैं। परन्तु दर्शन शास्त्र जिसको कहते हैं, उनका नाम लेने पर तो ध्यान मे प्रायः ही सामने आते हैं। आज के समय मे प्रत्येक मत स्वार

की तराजू पर तोला जाता है कि इसकी क्या मान्यताएँ हैं और ये एकातवादी हैं, या अनेकान्तवादी हैं। इसका निर्णय पढ़े बिना नही हो सकता है, यदि आप लोग धर्म मे दृढ होना चाहते हैं, तो न्याय को पढ़ें, दर्शन को पढ़ें। इनके ग्रन्थो को पढने से बडा आनन्द मिलेगा। जो श्रीमन्त हैं और जिन्हे सब सुविधाए प्राप्त हैं, वे लोग ही पढ सकते हैं। क्योकि पढने के लिए समय चाहिए, बडी-बडी पुस्तकें चाहिए। आज अन्य दर्शन वालो मे भी कुछ लोग ऐसे मिलते हैं जो रुचि के साथ दर्शन और न्याय के ग्रन्थ पढते है।

आज जोधपुर के एक विद्वान मिले। जब उनसे पूछा कि कहा गये थे तो उन्होने बताया कि मेहता साहब के पास गया था। क्यो गये थे ? यह पूछने पर उन्होने कहा कि आजकल मेहता साहब जैमिनीय दर्शन पढ रहे है। वे योगशास्त्र के बहुत उच्चकोटि के विद्वान हैं। साख्य दर्शन के और वेदो के भी ज्ञाता हैं। मेहता जी पजाबी के विद्वान और घराने के मुसद्दी हैं। क्या जोधपुर मे कोई कमी है ? ये मेहता जी जोधपुर के खानदानी नही हैं, किन्तु किशनगढ के खानदानी है। देखो— ये बाहिर से आये हुए मुसद्दी और सिद्धान्त जानने के इतने प्रेमी है। परन्तु बहुत दुख की बात है कि जोधपुर के सरदारो मे कोई ऐसा दर्शन शास्त्र का प्रेमी नही है। आप लोग पढ-लिखकर के बडे-बडे वकील और हाईकोर्ट के जज बन गये। फिर भी रविवार तक को भी मुह नही दिखाते हैं ? आज हम देखते हैं कि जो पाच-पच्चीस हजार का माल लेकर के बैठे हैं और जो जोधपुर के धनाढ्य बने हैं और जिन्हे नई पूजी मिली है, वे लोग कहते हैं कि साहब, हमसे आठ दिन व्यापार बन्द रखना नही बन सकता है। जो बेचारे पाच सौ का माल लेकर बैठे हैं उन लोगो ने तो आठ दिन की ममता को छोड कर अपने व्यापार को बन्द कर दिया। किन्तु पूजीपति कहते हैं कि हमारे कारखाने तो इसी प्रकार चलेंगे। बलिहारी है आपकी। और धन्यवाद है आपको कि आप लोग अनूठे ही पूजीपति बने ? और रोटिया मौज से मिल रही हैं। फिर भी कहते हैं कि यह काम हमसे नही बन सकता है। मैंने अष्टमी को सूचित किया था कि हमारी समाज के जैन दिवाकर श्री चौथमल जी

कि महाराज कुछ कह देंगे। अरे, आज मै बुलाना चाहू तो राष्ट्रपति और प्रधानमत्री भी आ सकते है। फिर आप तो उनसे बडे नही हैं। मैं तो बुला कर दो वचन कह देता कि जो मर्यादा चली आ रही है, उसे पालना चाहिए। महाराज के पास कोई हुकूमत का डडा नही है कि तुम्हे जबरन् पालना ही पडेगा। यह मर्यादा तो सबको प्रेम से और अपना कर्त्तव्य समझ कर पालना है। उपस्थित भाइयो, आप लोग उन्हे ही लखपति और करोडपति बनने दो। पूजी काम ही आयगी। सबकी अलग-अलग प्रकृति होती है। परन्तु आप लोग तो अपने कर्तव्य-पालन मे दृढ रहना। आज का युग ही खराब है, आज तो रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार का जमाना है। आज के युग मे वे ही लोग आगे आते हैं जो कि धर्म का पालन नही करते हैं। किन्तु याद रखो कि पाप का फल अच्छा नही होता है।

सच्चाई पर डटे रहो ?

बन्धुओ, मुझे तो आप लोगो से एक ही बात कहना है कि देव पर आस्था रखो, गुरु पर आस्था रखो और धर्म पर आस्था रखो। इसी को कहते है शुद्ध दर्शन। शुद्ध दर्शन के प्रकट होने पर सब काम स्वयमेव सम्पन्न होते है और आनन्द के काम मे तो सदा आनन्द ही प्राप्त होता है। और विघ्न के काम मे विघ्न ही आते है। मिश्री खाते दात नही गिरा करते। पर थोडा देर के लिए मानले कि किसी का हिलता दात मिश्री के कडक होने से खाते समय यदि गिर भी जाय तो यह कोई नही कहेगा कि मिश्री खाने से दात टूट गया। यदि पडता है, तो पडने दो। कहा भी है कि—

भलाई करते जग हंसे तो हसने दो।
सीरा खाते दांत घिसे तो घिसने दो ॥

भले काम के लिए जो अपने पास है, उसको अर्पण कर दो। उसकी ओर लक्ष्य मत दो। आज आप कारखाने वाले कहते हैं कि हमारे पास बहुत आदमी हैं। कारखाना बन्द करने पर उनका क्या होगा ? भाई, बम्बई मे सैकडो मील-कारखाने हैं, अहमदाबाद और कानपुर मे भी मील-कारखाने चलते है। परन्तु जब जिस धर्मवाले का धार्मिक पर्व दिन आता है तो उस

अपने को बडा समझनेवाले क्या देगे ? पाच सौ, या हजार से आगे देने वाले नही है। अभी मैं अपनी मर्यादा मे हूँ। ये जो चूडिया पहिनने वाली बैठी है, इशारा करने पर तो ये भी हजार पाच सौ झोली मे डाल देगी। आज तो हजार-पाच सौ की ओली मे ही सेठपना आ गया है। मुकुन्दचन्द जी वालिया ने पाली मे रहकर पूजी कमाई तो वहा पर स्कूल बनवा करके दी या नही ? उनकी सन्तान आज भी यहा मौजूद है। किसी भी काम के लिए सबकी ओलियाँ मड जाने पर वालिया जी के पास जाते है तो उसी समय रकम दे देते है। ये कभी-कभी सामायिक करते थे। परन्तु समाज का काम पड जावे तो उनकी ओली जोधपुर वालो से ऊँची ही रहती है। तभी समाज मे अपना नाम रखते है। परन्तु आज तो वे लोग ही घोटाला कर रहे है जो कि पूज्य चौथमल जी के खास भक्त बने और चेले बन गये। वे मेरे तो स्वामी जी हैं—उन्ही की तो मर्यादा है, मेरी तो नही है। भाई, मेरे वचन तो खारे लगे होगे और मैं खमत-खामणा भी करता हूँ। परन्तु मैं तो हितकारी ही वचन कहता हू। मैं किसी की खुशामद नही करता हू। जब कोई कहने का अवसर होता है तभी कहता हू। कोई भी मेरे कहने से तो नही करेगा। जो करेगा, वह अपने मन से ही करेगा। पर एक बात आप सब लोगो से अवश्य कहूगा कि जो धन के मद मे अन्धे हो जाते हैं, उन लोगो का आप अन्धानुकरण मत करना। क्योकि किसी पहुँचे हुए सन्त ने कहा है कि—

न श्रृण्वन्ति न बुध्यन्ति न प्रयान्ति च सत्पथम्।
प्रयान्तोऽपि न कार्यान्त धनान्धा इति चिन्त्यताम्॥

अर्थात् जो धन के मद से अन्धे है, वे लोग सर्वप्रथम सन्मार्ग की बात को सुनते ही नही है। यदि सुन भी लेवे तो उसे समझते नही है कि इसका क्या महत्त्व है। यदि किसी प्रकार किसी गुरु के जोर से समझ भी लेवे तो उस पर चलते नही है। यदि किसी साथी के आग्रह पर चले भी, तो कार्य के सम्पन्न होने तक उस पर नही चलते है। भाई, धनान्धो की ऐसी प्रवृत्ति होती है। ऐसा सोच करके कभी भी उनका अन्धानुकरण मत करना।

भरपूर आराम देती थी। मगर जिठानियो का स्वभाव बहुत बुरा था। वे उसकी कुछ न कुछ नुक्ता-चीनी किया ही करती थी। जैसे नये लखपतियो मे टहलका आता है, वैसा ही उनको भी आ गया। छोटी बहू के इतना काम करने और सबको आराम पहुँचाने पर भी वे कहने लगी कि धणी तो अन-कमाऊ है, फिर यह घर का सारा काम-काज न करे ? इस प्रकार उसे ताने मारती और उसके काम मे कुछ न कुछ दोष निकालती रहती थी। पर छोटी बहू बहुत शान्त और गम्भीर स्वभाव की थी। अत वह सब सहन करती जाती थी। एक दिन बिना किसी भूल के अकारण ही वे तीनो जिठानिया उस पर उबल पडी। उन्होने आपस मे सलाह कर ली कि इसको किसी प्रकार घर मे निकाल देना चाहिए। परन्तु बिना आडे टेढ़े बोले लडाई नही होती है, बिना गाडी-बैल के खेती नही होती है और गाढ़े रहे बिना धर्म नही होता है। इसलिए उन जिठानियो ने बात बात पर उसे छेडना शुरू कर दिया। कहा है—

सज्जन विचारा क्या करे दुर्जन केडे लग्ग।
अति मथियातीं निकरै चदन माय थी अग्ग।

वह बेचारी छोटी बहू बहुत शान्त, गम्भीर और धर्मपरायण थी। परन्तु जितनी बात सहन करने की होती है, उतनी ही सहन की जा सकती है। एक दिन जब उन जिठानियो ने पुन उसके पति को अनकमाऊ और बैठे-बैठे खाऊ कहा, तो उसे बहुत बुरा लगा। उस दिन उसने भोजन भी नही किया। काम से निवृत्त होकर रात्रि मे वह अपने कमरे मे गई और अपने पति से जिठानियो के द्वारा कही गई बात कह दी। पति के चुप रह जाने पर वह फिर बोली कि हम मजदूरी करके पेट भर लेगे, परन्तु अब जिठानियो के ऐसे ताने नही सहेगे। मैं अपने लिए सब कुछ सहन कर सकती हूँ। परन्तु आपके लिए कोई अनुचित शब्द कहे तो उसे मैं सहन नही कर सकती हूँ। स्त्री की बात सुनकर उसका पति बोला—श्रीमतीजी, शान्त रहो। जो जो पुद्गल फरसना है, वह तो, होगी ही। पति के वचन सुनकर स्त्री चुप हो गई और कई प्रकार के सकल्प-विकल्प करती हुई सो भी गई। किन्तु

को क्यो दु ख हुआ ? वे तीनो बोले—पिताजी, आपने तो लाड-प्यार मे उसे बिगाड दिया। अब वह चला गया तो इसमे हमारा क्या दोष है। इधर उनकी माँ ने तीनो बीदणियो से कहा कि वह तुम तीनो की प्रतिदिन लडाई देखता था, इसी से ऊबकर वह चला गया है। वे तीनो बोली—सासूजी, आपको भी चुपचाप रहना हो तो रहे, अन्यथा हम से अलग हो जावे। भाई, जब कोई बडो को बडा समझे, तब तो विवेक रखे। नही तो क्या विवेक रखेगी। जब यह बात सेठ के कान तक पहुँची तब उन्होने सेठानी से कहा कि जितने गहने पहिने हो वे सब खोल दो और मादे कपडे पहिनकर यहाँ से चलो। सब कुछ इन लडको और बहुओ को ही सौप कर यहाँ से चलो। जब सेठ और सेठानी घर छोडकर जाने लगे तब वह छोटी बहू भी उनके पीछे चल दी। लडके और तीनो बहुए खडे-खडे देखते रहे, मगर किसी ने भी उनको रोका नही। वे लोग तो मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि चलो हमारी झझट सदा के लिए दूर हो गई।

सेठ, सेठानी और छोटी बहू तीन नगर के किसी अच्छे मोहल्ले मे पहुँचे। वहा एक खाली अच्छे मकान को देखकर उसके मालिक से पूछा कि क्या आप इसे हम लोगो को किराये पर देगे ? मकान-मालिक ने कहा - सेठ साहब, आप से क्या किराया लेना उचित है ? आपका ही मकान है। आप यहा खुशी से रहिये। सेठ ने कहा—नही भाई, जो दूसरे से किराया लेते रहे हो, वह हमसे भी लेना। मजूरी पाकर तीनो उस मकान मे रहने लगे। सेठ ने किराया नामा लिख दिया। जैसे ही यह चर्चा गाव मे फैली कि सेठ के रिश्तेदार और व्यापारी लोग मिलकर सेठ के पास आये और कहने लगे कि आप बिना कुछ लिये हुए ही घर से कैसे चले आये। हम पचो को इकठा करके इसकी पचायत करेगे और आपको हिस्सा दिलावेगे। तब सेठ ने कहा पचो, हमने आपको बुलाया नही, फिर भी आप लोग बिना बुलाये ही पचा-यत करने को आ गये ? सेठ का यह कथन सुनकर सब लोग वापिस चले गये। सेठ, सेठानी और बहू ने एकान्त स्थान मे बैठकर निराकुलतापूर्वक सामायिक की। तत्पश्चात् छोटी बहू ने कहा—मासा० और पिताजी, आप लोग

कार्यकर्त्ता ने आगे होकर एक पापड कारखाना खोला, तो वहा भी कोई नही जाता है। न वहा कोई देख-रेख। परन्तु आप लोग याद रखे, कि कला-हुनर सीखे बिना आगे काम चलने वाला नही है।

आपके जोधपुर मे चूदडी का धधा जोर-शोर से चलता है। और सारे भारत मे जोधपुर की चूदडी प्रसिद्ध है। और जो जोधपुर के झरझरिया और बादले बनते हैं वे भी सारे भारत मे मशहूर है। यदि आपके भी घरो मे ये काम करने वाली हो, तो पेट भली-भाति से भरा जा सकता है। परन्तु वात यह है कि इन देवियो को तो लडाई झगडे करना याद हैं और निन्दा-विकथा करने से ही अवकाश नही मिलता है। जो भाई वहिने अपने हुनर के काम मे लगे रहते हैं, वहुत आनन्द मे हैं।

हा, तो मैं कह रहा था कि वह छोटी वहू अपने खानदान की मान-मर्यादा रखते हुए अपना काम करती और सव का निर्वाह आनन्द से होता था। इस प्रकार कार्य करने हुए उसे छह माह हो गये। एक दिन वहूने कहा— सासूजी, आपकी आज्ञा हो तो मैं पीहर हो आऊ ? सासूने कहा— हा वेटा, जा आओ। मेरी माताओ और वहिनो, आप लोग भी ऐसी ही सासू और बहुए बन जाओ। यदि ऐसी बन जाओ तो फिर क्या तुम्हारा घर स्वर्ग से कम रहेगा ? अरे, जो जन्म को देने वाली है, उनके यहा तो वेटी अठारह वर्ष तक ही रहती है, परन्तु बहुए तो तुम्हारे घर मे जीवन भर रहती है। ये आपकी वेटिया नही है क्या ? छह माह के वाद वह वहू सासूकी आज्ञा लेकर अपने पीहर जाने को उद्यत हुई। जाते हुए उसके मकान से आगे की गली के नुक्कड पर एक सेठ जी की दुकान थी। उनका वही एक बडा कोठा था, जिसमे माल भरा रहता था। भाव अच्छा आने से सेठ ने उस कोठे का सारा माल बेच दिया। वर्षों से सफाई न होने के कारण उस कोठे मे धूल भी बहुत भर गई थी, जिसे सेठ जी ने साफ करा के कोठे के बाहर ढेरी लगवा दी थी। वे सोच रहे थे कि कोई गाडी वाला आये तो उसे भरवा करके वाहिर फिकवा दू। भाई, पहिले जमाने मे स्त्रिया बाजार मे से होकर नही निकलती थी। बल्कि गली मे से होकर जाती आती थी। आज तो वह रिवाज समाप्त हो गया है। अब तो अकेली स्त्री बाजार मे

खुरपा लेकर उसे हिलाने चलाने लगी। इस प्रकार उबालते-उबालते जब वह खूब गाढा हो गया तो उसे उतार करके सोने की दो-तीन ईंटे जमा ली। पुन उसने दूसरा घान चढाया और तैयार होने पर उससे भी सोने की ईंटें बनाईं। इस प्रकार नये नये घान चढा-चढा करके उसने उस धूल के ढेर को तेल मे पका-पकाकर सोने की ईटो का ढेर लगा दिया। उसकी इस चतुराई को देखकर सेठ ने पूछा—बहू, यह कला तूने कहा से सीखी ? उसने कहा—आपकी कृपा से। मैं कही बाहिर तो सीखने को गई नही हू। सेठ ने सोने की कुछ ईटे बेंचकर एक दुकान मोल लेली, गादी-तकिये लगवा दिये और मुनीम-गुमास्ते रखकर व्यापार-धन्धा चालू कर दिया। उसका व्यापार खूब धूम-धाम से चलने लगा, सेठ धर्मात्मा और दयालु तो थे ही, अत दान-पुण्य भी खूब होने लगा और गरीब असहायो की सहायता करके हजारो का पेट भरने लगे। जो भी जिस प्रकार की मदद मागता, उस प्रकार की मदद देने लगे।

उधर तो सेठजी का कारोबार दिन दूना रात चौगुना बढने लगा और उसके लडको का कारोबार दिन पर दिन गिरने लगा। जो पूँजी सेठ से पाई थी, धीरे धीरे वह सब समाप्त हो गई। जब उन्होने अपने पिता का कारोबार बढता हुआ देखा तब वे सोचने लगे और आपस मे कहने लगे कि पिताजी जाहिर पूँजी को तो लेकर नही गये है किन्तु जो उनके पास गुप्त पूँजी थी, उसे लेकर वे अवश्य गये है, अन्यथा यह कारोबार कहाँ से फैलता। अतएव हमे भी वहाँ चलकर उस पूंजी पर अधिकार करना चाहिए। ऐसी आपस मे सलाह करके वे तीनो लडके सेठ के पास गये और उनका घेराव करके कहने लगे कि पिताजी साहब, आप महाजनी से पूजी हमे देदो, अन्यथा आपका यह सारा बडप्पन धूल मे मिल जायगा। लडको का यह कथन सुनकर सेठ ने कहा—भाई, मैं वहाँ से तुम्हारा क्या लेकर आया हू ? लडके कहने लगे—पिताजी, आप बगुलाभेषी धर्मी ठग हो। सारी पूजी तो आप ले आये और दिवालिया दुकान हम लोगो को सौंप दी। उन लोगो का यह कोलाहल सुन कर के बाजार के अनेक महाजन लोग आ गये और कहने लगे कि

पीता है, अथवा मोती चुगता है। आखिर वह कुवर उस हस को लेकर एक सेठ के घर गया। सेठ ने इसे भला पुरुप समझकर स्वागत करते हुए कहा—पधारिये कुवर साहब, भोजनपान कीजिए। कुवर ने कहा—सेठ साहव, यह हस भूखा है, इसे दूध पिलाये बिना मैं भोजन नही कर सकता हूँ। सेठ इसे लिवाकर घर पर गया और ज्यो ही दूध का बर्तन लेकर हंस के सामने रखा कि उसकी भवानी देवी भडकी और तडककर कहा—तुम सब कुँए मे जाकर पडो, क्या यह दूध इसलिए रख छोडा है? सेठ ने कहा—अरी भाग्यशालिनी, कमाता तो मैं हूँ? सेठानी गरजती हुई बोली—पर, घर का काम तो मैं करती हूँ। यहा पर तुम्हारा क्या है? सेठानी की फटकार सुनकर सेठ चुपचाप हस को लेकर बाहिर आया और किसी हलवाई के यहा जाकर हस को भरपेट दूध पिलाया और उन दोनो ने भी वही पर खाया-पिया। अब वह कुवर हस को लेकर आगे चला। उस हस के जो साथी बिछुड गये थे, वे जंगल मे मिले। अपने साथियो को देखकर हर्ष से उस हस ने आवाज लगाई और कुवर से अपनी बोली मे कहा—आपने मुझ पर बडी कृपा की है। आपने मेरे प्राण बचाये हैं। मैं आपके उपकार को कभी नही भूल सकता हू। अब इतनी कृपा और करे कि मुझे छोड देवें तो मैं अपने साथियो मे जाकर मिल जाऊ? उसकी यह बात सुनते ही इसने उसे छोड दिया। वह हस उडकर अपने साथियो से जा मिला और अपने पकडे जाने वा छुडाये जाने का सब हाल साथियो से कहा। उसने कहा कि यदि ये सज्जन मुझे न छुडाते, तो मैं मारा जाता। अत अब हमे भी इसकी कुछ सेवा करनी चाहिए। हसने आकर अपनी बोली मे इस कुवर से कहा—आप कुछ दिन यही पर ठहरिए और हमारी सेवा स्वीकार कीजिए। कुवर वही ठहर गया। वह हस अपने साथियो के साथ समुद्र के किनारे गया। सब हस अपनी चो-चो मे मोती और रत्न दावकर आये और जहा यह ठहरा हुआ था, वहा पर सब मोती और रत्नो को डाल गये। इस प्रकार उन हसो ने एक ही दिन मे मोती और नाना प्रकार के रत्नो के ढेर उसके पास लगा। दिये यह सोचने लगा कि इन सारे मोतियो और रत्नो को कहा रखू? मेरे पास तो इनको भरकर रखने के लिए कोई साधन भी नही है। इतने मे उसका ध्यान गाय-भैंसें जो वहा

छाने भी सुरक्षित रखे जाते हैं, आदि। समय पाकर सेठ ने वेटे से कहा—तेरी यह बहू बडी सुपात्र और भाग्यशालिनी है। इसने तो तेरे जाने के पश्चात् घर को सोने की ईंटो से भर दिया। तव लडका बोला- मैं भी कोई उससे कम नही हूँ। यदि उसने घर को सौने से भर दिया है, तो मैं भी घर को रत्नो और मोतियो से भरे देता हू। यह कहकर उसने उन सव छानो को पानी की गगाल मे डलवा दिया। पानी मे पडते ही गोवर गल गया और मोती—माणिक आदि रत्न चमकने लगे। पिता ने इनके पाने का हाल पूछा तब उसने सारा वृतान्त आद्योपान्त कह सुनाया। पिता ने अति हर्पित होकर कहा तू तो बहू से भी बढकर निकला है।

उधर क्या हुआ कि जिस दिन वे तीनो भाई वाप के पास से ईटे लेकर गये थे, तभी कुछ वदमाशो ने इस बात को जान लिया। रात को जव ये आनन्द की नीद मे मस्त होकर सो रहे थे तब उन बदमाशो ने सेंध मारकर सारी सोने की ईटें चुरा ली। भाई, हराम का माल किसके पास रहा है? चोरी का माल तो मोरी मे ही जाता है। सवेरे जव वे लोग उठे और सोने की ईटो को नही देखा तो माथा पीटकर रह गये। उनका हाल पहिले से भी बुरा हो गया। यह खबर उनके पिता के पास भी पहुंची। छोटी बहू ने अपने पति से कहा—जाकर अपने भाई-भोजाइयो की भी तो कुछ खबर लो—कैसे हैं? यह उनके पास गया और उनकी बुरी हालत देखकर पूछा कि यह क्या हो गया है? उन्होने कहा- भैया, जब से तुम गये हो, तभी से हमारी हालत खराब होती गई है। छोटे भाई ने कहा—भाई, साहबान, आप लोग अपनी नीति सुधारिये और न्याय मार्ग से चलिये, तो दशा सुधरते भी देर नही लगेगी। यदि आप अब भी न्याय नीति पर चलें तो मैं आप सबकी सेवा करने के लिए अब भी तैयार हूँ। उन्होने कहा—हम लोग प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से सब न्याय मार्ग पर चलेंगे और धर्म को भी नही छोडेंगे। यह सुनकर छोटे भाई ने एक ओडी जवाहिरात उनके यहा भिजवा दिये। धीरे-धीरे उनका कारोबार भी सुधर गया और सब लोग आनन्द से रहने लगे।

छाने भी सुरक्षित रखे जाते हैं, आदि ।

तेरी यह बहू बडी सुपात्र और भाग्यशालि

घर को सोने की ईंटो से भर दिया । त

कम नही हूँ । यदि उसने घर को सोने ं

रत्नो और मोतियो से भरे देता हू । यह

पानी की गगाल मे डलवा दिया । पानी

मोती—माणिक आदि रत्न चमकने लगे ।

तब उसने सारा वृतान्त आद्योपान्त कह सु

कहा तू तो बहू से भी बढकर निकला है

उधर क्या हुआ कि जिस दिन वे तीनो

गये थे, तभी कुछ वदमाशो ने इस वात क

आनन्द की नीद मे मस्त होकर सो रहे थे त

सारी सोने की ईटें चुरा ली । भाई, हराम व

चोरी का माल तो मोरी मे ही जाता है । सवेरे

की ईटो को नही देखा तो माथा पीटकर रह ग

भी बुरा हो गया । यह खबर उनके पिता के पास

अपने पति से कहा—जाकर अपने भाई-भोजाइयो

लो—कैसे हैं ? यह उनके पास गया और उनकी बुरी

कि यह क्या हो गया है ? उन्होने कहा– भैया, जव से तु

हमारी हालत खराब होती गई है । छोटे भाई ने कहा—

आप लोग अपनी नीति सुधारिये और न्याय मार्ग से चलिये, तो

भी देर नही लगेगी । यदि आप अब भी न्याय नीति पर चले

सबकी सेवा करने के लिए अब भी तैयार हूँ । उन्होने कहा—

प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से सब न्याय मार्ग पर चलेंगे और धर्म को भ

छोडेंगे । यह सुनकर छोटे भाई ने एक ओडी जवाहिरात उनके यहा भि

दिये । धीरे-धीरे उनका कारोबार भी सुधर गया और सब लोग आनन्द

रहने लगे ।

छाने भी सुरक्षित रखे जाते हैं, आदि। समय पाकर सेठ ने बेटे से कहा— तेरी यह बहू बडी सुपात्र और भाग्यशालिनी है। इसने तो तेरे जाने के पश्चात् घर को सोने की ईंटो से भर दिया। तब लडका बोला- मैं भी कोई उससे कम नही हूँ। यदि उसने घर को सोने से भर दिया है, तो मैं भी घर को रत्नो और मोतियो से भरे देता हू। यह कहकर उसने उन सब छानो को पानी की गगाल मे डलवा दिया। पानी मे पडते ही गोवर गल गया और मोती—माणिक आदि रत्न चमकने लगे। पिता ने इनके पाने का हाल पूछा तब उसने सारा वृतान्त आद्योपान्त कह सुनाया। पिता ने अति हर्षित होकर कहा तू तो बहू से भी बढकर निकला है।

उधर क्या हुआ कि जिस दिन वे तीनो भाई वाप के पास से ईंटे लेकर गये थे, तभी कुछ बदमाशो ने इस बात को जान लिया। रात को जब ये आनन्द की नीद मे मस्त होकर सो रहे थे तब उन बदमाशो ने सेंध मारकर सारी सोने की ईटें चुरा ली। भाई, हराम का माल किसके पास रहा है? चोरी का माल तो मोरी मे ही जाता है। सवेरे जब वे लोग उठे और सोने की ईटो को नही देखा तो माथा पीटकर रह गये। उनका हाल पहिले से भी बुरा हो गया। यह खबर उनके पिता के पास भी पहुँची। छोटी बहू ने अपने पति से कहा—जाकर अपने भाई-भोजाइयो की भी तो कुछ खबर लो—कैसे है? यह उनके पास गया और उनकी बुरी हालत देखकर पूछा कि यह क्या हो गया है? उन्होने कहा- भैया, जब से तुम गये हो, तभी से हमारी हालत खराब होती गई है। छोटे भाई ने कहा—भाई, साहबान, आप लोग अपनी नीति सुधारिये और न्याय मार्ग से चलिये, तो दशा सुधरते भी देर नही लगेगी। यदि आप अब भी न्याय नीति पर चले तो मैं आप सबकी सेवा करने के लिए अब भी तैयार हूँ। उन्होने कहा—हम लोग प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से सब न्याय मार्ग पर चलेंगे और धर्म को भी नही छोडेंगे। यह सुनकर छोटे भाई ने एक ओडी जवाहिरात उनके यहा भिजवा दिये। धीरे-धीरे उनका कारोबार भी सुधर गया और सब लोग आनन्द से रहने लगे।

३ | सुख-दुख का कारण

सज्जनो, अतगडसूत्र का तीसरा वर्ग अभी आपके सामने आया और आज पर्युषण पर्व का दिन भी तीसरा है। आपने गजसुकुमाल जी के विषय मे सुना। उन्हे दीक्षा के प्रथम दिन ही सोमिल ब्राह्मण के निमित्त से महान् उपसर्ग का सामना करना पडा, जिससे उन्हे असह्य वेदना हुई।

परन्तु मैं आपसे पूछू कि गजसुकुमाल को यह असह्य वेदना क्यो सहन करनी पडी ? उन्हे इस कष्ट के आने का क्या कारण था ? क्योकि बिना कारण के कोई कार्य नही होता है, यह तर्कशास्त्र का नियम है। भाई, प्रत्येक प्राणी अपने पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से साता-असाता या सुख-दुख को भोगता है। आप पूछेगे कि सुख-दुख को देने वाला कर्म कौन सा है ? उसका नाम है वेदनीय कर्म। आज मैं इस कर्म के विषय मे आपके सम्मुख प्रकाश डालूगा।

वेदनीय कर्म का स्वरूप

वेदनीय कर्म का स्वरूप बतलाते हुए शास्त्रकारो ने कहा है—

वेयणीय पि य दुविह सायमसाय च आहियं

· उत्तराध्ययन ३३।७

वेदनीय कर्म दो प्रकार का है, सुख (साता) रूप और दुःख (असाता) रूप। आचार्यों ने विस्तार से बताया है—

अक्खाण अणुभवणं वेयणियं सुहसरूवयं सायं ।
दुक्खसरूवमसायं तं वेययतीति वेयणियं ॥

जो कर्म इन्द्रियों से अच्छे या बुरे विषयों का अनुभवन कराये, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। उनमें से जो सुखरूप इन्द्रिय विषयों का अनुभव कराये, उसे साता वेदनीय कर्म कहते हैं और जो दुःखरूप इन्द्रिय-विषयों का अनुभव कराये, उसे असाता वेदनीय कर्म कहते हैं।

इसी बात को दृष्टान्तपूर्वक स्पष्ट करते हुए कहा गया है--

महुलित्तखग्गधारा लिहणं व दुहा उ वेयणियं।
महुआसायणसरिसो सायावेयस्स होइ हु विवागो।
जं असिणा तह छिज्जइ सो उ विवागो असायस्स ॥

मधु से लिप्त खड्ग की धार को चाटने के समान दो प्रकार के विपाक (फल) को वेदनीय कर्म देता है। उनमें से मधु के आस्वादन के सदृश साता-वेदनीय कर्म का विपाक होता है। तथा तलवार से जीभ कटने के सदृश असातावेदनीय कर्म का विपाक होता है। अर्थात् जैसे शहद-लपेटी हुई तलवार की धार को चाटने से शहद तो मीठा लगता है। किन्तु तलवार की धार से जीभ कट जाती है और दुःख होता है। इसी प्रकार सातावेदनीय कर्म के उदय से जीव को सुखदायक सामग्री प्राप्त होती है और सुख का अनुभव होता है। किन्तु असातावेदनीय कर्म के उदय से दुःख देने वाली सामग्री मिलती है और जीव को दुःख का अनुभव होता है।

सुख के कारण

अब आप लोग विचार रहे होंगे कि कैसे काम करने से साता वेदनीय कर्म बंधता है और कैसे काम करने से असाता वेदनीय कर्म बंधता है। शास्त्रकारों ने इसका बहुत उत्तम और स्पष्ट विवेचन किया है। तत्त्वार्थसूत्रकार कहते हैं—

भूतव्रत्यनुकम्पादान सराग संयमादियोग क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥

अर्थात्-प्राणिमात्र पर दया भाव रखना, उनके दुख देखकर द्रवित होना, उनके दुखो को दूर करने का प्रयत्न करना, दान देना, सराग सयम पालन करना, क्षमा भाव रखना, हृदय को पवित्र रखना इत्यादि कार्यों से साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कर्म ग्रन्थकार कहते हैं—

गुरुभत्ति-खति-करुणा-वयजोग-कसायविजय दाणजुओ।
दढधम्माई अज्जइ सायमसाय विवज्जयओ ॥

जो सच्चे गुरु की भक्ति करता है, क्षमा धारण करता है, जिसके हृदय मे करुणा की धारा बहती है, व्रत पालता है, दश प्रकार की समाचारी से युक्त है, अपनी कषायो को जीतता है, दान देता है और धर्म मे दृढ है, ऐसा पुरुष साता वेदनीय कर्म का उपार्जन करता है।

दुःख के कारण

जो उक्त कारणो से विपरीत आचरण करता है—अर्थात् गुरु की भक्ति नही करता, क्षमा भाव नही रखता, जिसके हृदय मे करुणा नही है, जो व्रत-शीलादि को नही पालता, समाचारी को धारण नही करता है, कषायो को नही जीतता है, दान भी नही देता है और धर्म मे भी जो दृढ नही है, ऐसा जीव असाता वेदनीय कर्म को बाधता है।

तत्त्वार्थ सूत्रकार ने इन कारणो के अतिरिक्त कुछ और भी कारण बतलाये हैं। यथा—

दुख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य।

इसी वात को कर्म प्रकृतिकार भी बतलाते हैं—

दुक्ख-वह-सोग-तावाकन्दण-परिदेवणं च अप्पठिय।
अण्णट्ठिय मुमयट्ठियमिदि वाबधो असादस्स ॥

अर्थात् दुख, शोक, वध, सन्ताप, आक्रन्दन और परिदेवन स्वय करने से, अन्य को कराने से, तथा स्वय करने और दूसरो को कराने से असातावेदनीय कर्म प्रचुरता से वधता है। जो जीवो पर क्रूरता पूर्ण व्यवहार करते हैं,

भूतव्रत्यनुकम्पादान सराग संयमादियोग क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥

अर्थात्-प्राणिमात्र पर दया भाव रखना, उनके दुख देखकर द्रवित होना, उनके दुखो को दूर करने का प्रयत्न करना, दान देना, सराग सयम पालन करना, क्षमा भाव रखना, हृदय को पवित्र रखना इत्यादि कार्यों से साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कर्म ग्रन्थकार कहते हैं—

गुरुभत्ति-खति-करुणा-वयजोग-कसायविजय दाणजुओ।
दढधम्माई अज्जइ सायमसाय विवज्जयओ ॥

जो सच्चे गुरु की भक्ति करता है, क्षमा धारण करता है, जिसके हृदय मे करुणा की धारा बहती है, व्रत पालता है, दश प्रकार की समाचारी से युक्त है, अपनी कषायो को जीतता है, दान देता है और धर्म मे दृढ है, ऐसा पुरुष साता वेदनीय कर्म का उपार्जन करता है।

दुःख के कारण

जो उक्त कारणो से विपरीत आचरण करता है—अर्थात् गुरु की भक्ति नही करता, क्षमा भाव नही रखता, जिसके हृदय मे करुणा नही है, जो व्रत-शीलादि को नही पालता, समाचारी को धारण नही करता है, कषायो को नही जीतता है, दान भी नही देता है और धर्म मे भी जो दृढ नही है, ऐसा जीव असाता वेदनीय कर्म को बाधता है।

तत्त्वार्थ सूत्रकार ने इन कारणो के अतिरिक्त कुछ और भी कारण बतलाये हैं। यथा—

दुख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य।

इसी बात को कर्म प्रकृतिकार भी बतलाते हैं—

दुक्ख-वह-सोग-तावाकन्दण-परिदेवणं च अप्पठिय।
अण्णट्ठिय मुभयट्ठियमिदि वाबधो असादस्स ॥

अर्थात् दुख, शोक, वध, सन्ताप, आक्रन्दन और परिदेवन स्वय करने से, अन्य को कराने से, तथा स्वय करने और दूसरो को कराने से असातावेदनीय कर्म प्रचुरता से बधता है। जो जीवो पर क्रूरता पूर्ण व्यवहार करते हैं,

लिए दु खदायक हैं और जो सदा दूसरो को दु ख पहुँचाने मे लगे रहते हैं, उनके असातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है ।

कृत-कर्म भोगना ही पड़ेगा

भाइयो, जो कर्म आप लोग हसते-हसते बाधते हैं, वे भी भोगने पडेगे। और जो रोते-रोते बाधे हैं, वे भी भोगने पडेगे। क्योकि आगम मे कहा है कि **'कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि'** अर्थात् किये हुए कर्मों का फल भोगे विना उनसे छुटकारा नही मिल सकता है। परन्तु देखिये-आज चलते हुए, वैठे हुए, और प्रत्येक कार्य को करते हुए आपको कर्मों का बन्ध करते किसी वात का विचार नही है। आप लोगो के तो ये विचार हैं कि शास्त्र क्या हैं, गुरुजन क्या है और भगवान् की वाणी कहा है ? हमे तो जीवन का आनन्द और खान-पान का मजा लेने दो। परन्तु भाई, यह जीवन का मजा नही, कजा है, क्योकि इसके फलस्वरूप आगे वडी भारी सजा मिलने वाली है। आज जो आपको थोडा सा छोटा बीज दिखाई देता है, वही आगे जाकर वडा भारी पहाड वन जायगा।

आप लोगो ने अभी मेरे से पहिले मुनि जी से सुना कि गजसुकुमालजी के केश-लु चन किये हुए मु डित मस्तक पर सोमिल ब्राह्मण ने चिकनी मिट्टी की पाल वाधकर खैर के धधकते हुए अंगारे रख दिये। अब कहो-उनके कष्ट का कोई पार था क्या ? पर विचारने की बात यह है कि उन्हे इतना महान् कष्ट क्यो भोगना पडा ? वात यह है कि गजसुकुमाल जी के जीवने ९९ लाख भवो के पहिले ऐसे ही असातावेदनीय कर्म का बन्ध किया था, जिसका फल इस भव मे उन्हे उसी प्रकार से भोगना पडा।

गजसुकुमाल के कर्म बंध का कारण

वहुत पुराने समय मे एक नगर मे एक सेठ था। उसकी शादी एक स्त्री से हो गई थी, परन्तु उससे कोई सन्तान उत्पन्न नही हुई। तव उसने दूसरा विवाह किया। भाग्य से उसके एक पुत्र उत्पन्न हो गया। इसलिए उसका सन्मान वडी सेठानी से अधिक होने लगा। यह देख वडी के मन मे ईर्ष्या भाव पैदा हो गया। वह सोचने लगी कि 'यदि किसी प्रकार मेरे भी पुत्र

लिए दुखदायक है और जो सदा दूसरो को दुख पहुँचाने मे लगे रहते हैं, उनके असातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

कृत-कर्म भोगना ही पड़ेगा

भाइयो, जो कर्म आप लोग हसते-हसते बाधते हैं, वे भी भोगने पडेंगे। और जो रोते-रोते बाधे है, वे भी भोगने पडेंगे। क्योकि आगम मे कहा है कि **'कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि'** अर्थात् किये हुए कर्मों का फल भोगे विना उनसे छुटकारा नही मिल सकता है। परन्तु देखिये-आज चलते हुए, बैठे हुए, और प्रत्येक कार्य को करते हुए आपको कर्मों का बन्ध करते किसी बात का विचार नही है। आप लोगो के तो ये विचार हैं कि शास्त्र क्या है, गुरुजन क्या है और भगवान् की वाणी कहा है ? हमे तो जीवन का आनन्द और खान-पान का मजा लेने दो। परन्तु भाई, यह जीवन का मजा नही, कजा है, क्योकि इसके फलस्वरूप आगे बडी भारी सजा मिलने वाली है। आज जो आपको थोडा सा छोटा बीज दिखाई देता है, वही आगे जाकर बडा भारी पहाड बन जायगा।

आप लोगो ने अभी मेरे से पहिले मुनि जी से सुना कि गजसुकुमालजी के केश-लुचन किये हुए मुडित मस्तक पर सोमिल ब्राह्मण ने चिकनी मिट्टी की पाल बाधकर खैर के धधकते हुए अंगारे रख दिये। अब कहो-उनके कष्ट का कोई पार था क्या ? पर विचारने की बात यह है कि उन्हे इतना महान् कष्ट क्यो भोगना पडा ? बात यह है कि गजसुकुमाल जी के जीवने ९९ लाख भवो के पहिले ऐसे ही असातावेदनीय कर्म का बन्ध किया था, जिसका फल इस भव मे उन्हे उसी प्रकार से भोगना पडा।

गजसुकुमाल के कर्म बध का कारण

बहुत पुराने समय मे एक नगर मे एक सेठ था। उसकी शादी एक स्त्री से हो गई थी, परन्तु उससे कोई सन्तान उत्पन्न नही हुई। तब उसने दूसरा विवाह किया। भाग्य से उसके एक पुत्र उत्पन्न हो गया। इसलिए उसका सन्मान बडी सेठानी से अधिक होने लगा। यह देख बडी के मन मे ईर्ष्या भाव पैदा हो गया। वह सोचने लगी कि "यदि किसी प्रकार मेरे भी पुत्र

लिए दु खदायक हैं और जो सदा दूसरो को दु ख पहुँचाने मे लगे रहते हैं, उनके असातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है ।

कृत-कर्म भोगना ही पड़ेगा

भाइयो, जो कर्म आप लोग हसते-हसते बाधते हैं, वे भी भोगने पडेगे। और जो रोते-रोते बाधे हैं, वे भी भोगने पडेगे। क्योकि आगम मे कहा है कि **'कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि'** अर्थात् किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना उनसे छुटकारा नही मिल सकता है। परन्तु देखिये-आज चलते हुए, बैठे हुए, और प्रत्येक कार्य को करते हुए आपको कर्मों का बन्ध करते किसी बात का विचार नही है। आप लोगो के तो ये विचार हैं कि शास्त्र क्या हैं, गुरुजन क्या है और भगवान् की वाणी कहा है ? हमे तो जीवन का आनन्द और खान-पान का मजा लेने दो। परन्तु भाई, यह जीवन का मजा नही, कजा है, क्योकि इसके फलस्वरूप आगे बडी भारी सजा मिलने वाली है। आज जो आपको थोडा सा छोटा बीज दिखाई देता है, वही आगे जाकर बडा भारी पहाड बन जायगा।

आप लोगो ने अभी मेरे से पहिले मुनि जी से सुना कि गजसुकुमालजी के केश-लु चन किये हुए मु डित मस्तक पर सोमिल ब्राह्मण ने चिकनी मिट्टी की पाल बाधकर खैर के धधकते हुए अंगारे रख दिये। अब कहो-उनके कष्ट का कोई पार था क्या ? पर विचारने की बात यह है कि उन्हे इतना महान् कष्ट क्यो भोगना पडा ? बात यह है कि गजसुकुमाल जी के जीवने ९९ लाख भवो के पहिले ऐसे ही असातावेदनीय कर्म का बन्ध किया था, जिसका फल इस भव मे उन्हे उसी प्रकार से भोगना पडा।

गजसुकुमाल के कर्म बंध का कारण

बहुत पुराने समय मे एक नगर मे एक सेठ था। उसकी शादी एक स्त्री से हो गई थी, परन्तु उससे कोई सन्तान उत्पन्न नही हुई। तब उसने दूसरा विवाह किया। भाग्य से उसके एक पुत्र उत्पन्न हो गया। इसलिए उसका सन्मान बडी सेठानी से अधिक होने लगा। यह देख बडी के मन मे ईर्ष्या भाव पैदा हो गया। वह सोचने लगी कि "यदि किसी प्रकार मेरे भी पुत्र

उत्पन्न हो जाय तो मेरा भी सन्मान होने लगे। पर भाई, यदि लडका होने का योग होता, तो सेठ दूसरा विवाह क्यो करता ? धीरे-धीरे उसके मन मे ईर्ष्या की अग्नि वढती गई और वह सौत के लडके को मारने की घात मे रहने लगी। दुर्भाग्य के उदय से उस बालक के सिर मे छोटे-छोटे अनेक फोडे पैदा हो गये। उसकी वेदना से वह बालक कराहने लगा। अनेक उपचार कराने पर भी वे फोडे मिटे नही। तब किसी ने बताया कि बाजरे के आटे की मोटी रोटी बनाकर गर्म-गर्म रोटी से माथे के फोडो को सेंकने से बच्चे को आराम मिलेगा और फोडे भी साफ हो जावेंगे। छोटी सेठानी इसी से उसका उपचार करने लगी। और बच्चे को भी वहुत कुछ आराम मिला। एक दिन छोटी सेठानी को किसी पडौसी के यहा गीत गाने का बुलावा आया। तव उसने वडी सेठानी से कहा—वडी जीजी, मैं अमुक के घर गीत गाने को जा रही हू, आप इसके सिर को वाजरे की रोटी से सेंक देना, जिससे कि यह सो जाय। वडी सेठानी ने कहा—तुम चिन्ता मत करो, मैं सब कर दूगी। इधर तो छोटी सेठानी गई और उधर वडी सेठानी ने बाजरे का आटा उसना, रोट वनाया और गर्म-गर्म रोट मे पहिले तो खूव सेंका और फिर खूब गर्म-गर्म रोट को सिर पर रख के कपडे से कस कर वाघ दिया। अब आप लोग स्वय ही सोच सकते हैं कि वह छोटा सा मासूम बच्चा उस गर्मी को कैसे सहन कर सकता था! अत वह सदा को सो गया।

उस बाल हत्या के महापाप से मर कर उस सेठानी का जीव लाखो योनियो मे असख्य दुखो को भोगता हुआ किसी पुण्य योग से श्रीकृष्ण के यहा गजसुकुमाल के रूप मे उत्पन्न है। परन्तु उस सेठानी के भव मे वाधा हुआ वह असातावेदनीय कर्म का निकाचित वन्ध ज्यो का त्यो पडा हुआ था। उसका ब्याज वढता गया, जिसके फलस्वरूप इसके सिर पर धधकते खैर के अगारे रखे गये। निकाचित रूप से वधे कर्म जिस रूप से बधते हैं, उसी रूप से उदय मे आते हैं। गजसुकुमाल के जीव ने उस बच्चे के माथे पर वह रोट वाधकर उसके प्राण लिये थे तो इस भव मे उनके भी मस्तक पर रोट से भी कई गुने गर्म अगारे रखकर उनकी इह जीवन-लीला समाप्त हुई। यह दूसरी वात है

कि उन्होने उस ब्राह्मण के द्वारा दिये कष्ट को अपने ही पूर्वोपार्जित पाप का परिपाक माना और उस महा कष्ट को शान्ति से सहन करके सब कर्मों का नाश कर वे मोक्ष पधारे।

भाइयो, अभी तो आप लोग हसी-मजाक के वशीभूत होकर चलते-फिरते हुए मजा-मौज से कर्मों का बन्ध कर लेते हैं। परन्तु अभी के बधे हुए ये कर्म जब उदय मे आवेगे, तब उनका भोगना कठिन हो जायगा। आप किसी अन्धे को जाते हुए देखते हैं और यह भी देख रहे हैं कि सामने एक खड्डा है। उस बेचारे को तो दिखता नही है। परन्तु आप बैठे हुए उसकी मजाक करते हैं और कहते हैं कि सूरदास जी लकडी के हाथ जाओ। (जिधर कि खड्डा है।) बेचारा वह आपके कथनानुसार उसी हाथ जाता है और गड्डे मे धडाम से गिर पडता है, उसके हाथ-पैरो मे चोट आ जाती है, और माथे से खून बहने लगता है। फिर भी आप लोग बैठे बैठे हसते है, खुश होते हैं और कहते हैं कि वाह, वाह, खूब गिरा! पर आप लोगो को यह ध्यान नही है कि हमने इस जरा सी हसी-मजाक मे कितने घोर दुःखदायी कर्मों का बन्ध कर लिया है। जब इनका परिपाक काल मे फल मिलेगा तब याद आयेगा कि हाय, ऐसे दुष्कर्म हमने कब और कैसे बाध लिये? आज तो चलते-फिरते इस प्रकार के अनेक पाप कर्मों का आप नित्य बन्ध करते रहते है। अब तो आप लोगो को न तो खाने की मर्यादा रही है और न बैठने-उठने की ही, अकारण ही आप लोग कर्म बन्ध करते रहते हैं।

अविवेक से व्यर्थ ही कर्मबध

आजकल बरसात का मौसम है। त्रस जीवो की उत्पत्ति इन दिनो मे अधिक होती है। घर मे पडी लकडी और रखे कोयले मे भी जीव आकर बैठ जाते हैं। आपने उन्हे बिना देखे ही चूल्हे और सिगडी मे जला दिये। लकडी और कोयले की पडिलेहना-प्रमार्जना नही की और उनमे रहे हुए जीवो के प्राण ले लिये। यह आपके विवेक की कमी है। आप चलते हुए वृक्ष की डाली पकड कर उसे तोड देते है, घास को उखाडने जाते है और पत्र-पुष्पादिक को अकारण या निष्प्रयोजन ही छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। यह सब अनर्थदण्ड

है। इसके द्वारा भी आप व्यर्थ के पाप बाधते रहते हैं। कभी मार्ग मे जाते समय किसी वृक्ष को हरा-भरा देखकर कहने लगते हैं कि इसका तना कितना मोटा और सीधा है, यदि इसे काटा जाय तो इसमे से अनेक लम्बे चौडे पाटिये निकलेंगे। यह बकरा कितना मोटा है, इसमे दो मन मास निकलेगा। भाइयो, बोलो—ऐसे अनर्थकारी बोल बोलने से आपको क्या लेना-देना है ? अरे, भाग्यशाली पुरुष तो कर्मों को हटाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु दुर्भागी लोग व्यर्थ मे ही कर्मों का बन्ध करते रहते हैं। किसी सेठ की दुकान पर मुनीम काम कर रहा है, तब कहता है—मुनीम जी, व्याख्यान का समय हो गया है, आप व्याख्यान सुन आओ। मुनीम कहता है कि सेठ सा०, यह काम का समय है। सेठ फिर कहता है कि भाई, घटे-दो घटे मे मेरे कौन सी अधिक कमाई हो जावेगी ? आप काम रहने दें और जाकर व्याख्यान सुन आवें। एक तो ऐसा भला सेठ है जो मुनीम आदि को धर्म साधन एव व्याख्यान-श्रवण की स्वय सुविधा प्रदान करता है। और दूसरा ऐसा है कि मुनीम के व्याख्यान-श्रवणार्थ जाने की पूछने पर कहता है कि देखो—यह नौकरी है, भाई चारा नही है। यदि व्याख्यान सुनने की अधिक इच्छा है, तो छुट्टी लेलो और फिर खूब सुनो। यदि नौकरी करना है, तो समय पर आना पडेगा और पूरे समय काम करना पडेगा। बीच मे इधर-उधर कही भी नही जा सकते। देखो - ऐसा कह कर वह कितना अन्तराय कर्म बाधता है ?

आप लोग गृहस्थी के भीतर भी देखते हैं कि बहू के लिए कपडे-गहने बनवाये गए हैं। फिरे भी कई मां-बाप ऐसे होते हैं जो कहते हैं कि क्या तेरे बाप का माल है ? इन्हे खोल दे, मत पहिन ! बेचारी बहू को खोलने पडते हैं। भले ही वे वस्त्राभूषण पडे-पडे सड जायें, बिगड जायें, परन्तु वे उसे काम मे नही लेने देंगे। एक बार मैं एक गाव मे था। वहा के एक सेठ का लडका तभी दिसावर से आया। वह एक बढिया साडी लाया था सो अपनी स्त्री को दे दी। वह उसे पहिनकर सासू के सामने गई। उसे पहिने हुए देख कर सासू ने हजार गालियां सुनाई और कहा—राड, तू यह कहां

कि उन्होने उस ब्राह्मण के द्वारा दिये कष्ट को अपने ही पूर्वोपार्जित पाप का परिपाक माना और उस महा कष्ट को शान्ति से सहन करके सब कर्मों का नाश कर वे मोक्ष पधारे।

भाइयो, अभी तो आप लोग हसी-मजाक के वशीभूत होकर चलते-फिरते हुए मजा-मौज से कर्मों का बन्ध कर लेते है। परन्तु अभी के वधे हुए ये कर्म जब उदय मे आवेंगे, तब उनका भोगना कठिन हो जायगा। आप किसी अन्धे को जाते हुए देखते हैं और यह भी देख रहे हैं कि सामने एक खड्डा है। उस बेचारे को तो दिखता नही है। परन्तु आप बैठे हुए उसकी मजाक करते हैं और कहते हैं कि सूरदास जी लकडी के हाथ जाओ। (जिधर कि खड्डा है।) बेचारा वह आपके कथनानुसार उसी हाथ जाता है और गड्डे मे घडाम से गिर पडता है, उसके हाथ-पैरो मे चोट आ जाती हैं, और माथे से खून बहने लगता है। फिर भी आप लोग बैठे बैठे हसते है, खुश होते हैं और कहते हैं कि वाह, वाह, खूब गिरा! पर आप लोगो को यह ध्यान नही है कि हमने इस जरा सी हसी-मजाक मे कितने घोर दुःखदायी कर्मों का वन्ध कर लिया है। जब इनका परिपाक काल मे फल मिलेगा तब याद आयेगा कि हाय, ऐसे दुष्कर्म हमने कब और कैसे बाध लिये? आज तो चलते-फिरते इस प्रकार के अनेक पाप कर्मों का आप नित्य बन्ध करते रहते है। अब तो आप लोगो को न तो खाने की मर्यादा रही है और न बैठने-उठने की ही, अकारण ही आप लोग कर्म बन्ध करते रहते हैं।

अविवेक से व्यर्थ ही कर्मबंध

आजकल बरसात का मौसम है। त्रस जीवो की उत्पत्ति इन दिनो मे अधिक होती है। घर मे पडी लकडी और रखे कोयले मे भी जीव आकर बैठ जाते हैं। आपने उन्हे बिना देखे ही चूल्हे और सिगडी मे जला दिये। लकडी और कोयले की पडिलेहना-प्रमार्जना नही की और उनमे रहे हुए जीवो के प्राण ले लिये। यह आपके विवेक की कमी है। आप चलते हुए वृक्ष की डाली पकड कर उसे तोड देते है, घास को उखाडने जाते है और पत्र-पुष्पादिक को अकारण या निष्प्रयोजन ही छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। यह सब अनर्थदण्ड

परित्याग करो और जो काम कर चुके हो, उनके लिए अपनी आलोचना, निन्दा और गर्हा करो, तथा उदयागत कर्म को शान्ति से सहन करो तो अवश्य ही तुम्हारा भविष्य सुधर जायगा ।

साता देने से साता

जो जीव पूर्व भव से साता वेदनीय कर्म को बाध करके आये है, उन्हे पिता, पुत्र, माता, भाई, बहिन, स्त्री, नौकर, चाकर और मुनीम-गुमास्ते आदि सभी अच्छे मिलेंगे, पडौसी और नगर-निवासी तक उत्तम मिलेंगे । वे जिधर दृष्टि डालेंगे, उधर साता ही साता नजर आयगी । जैसे कि तीर्थंकरादि महापुरुषो को प्राप्त होती है । भ० महावीर ने कहा है—

समाहिकारए ण तमेव समाहिं पडिलब्भई ।

—भगवतीसूत्र ७।१

समाधि-सुख देने वाला समाधि सुख पाता है । किन्तु जो असातावेदनीय कर्म को बाध कर आए हैं उन्हे प्रथम तो धन, परिवार आदि मिलेंगे ही नही । यदि मिल भी गये तो एक समय के लिए भी साता नसीब नही होगी । भाई, जब दूसरो को जो असाता पहुचा कर आया है, वह अब साता कैसे प्राप्त कर सकता है । हम भले ही आज ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण आदि कुलो मे जन्मे न हो, परन्तु भीतर जिनके विचार बुरे हैं, दूसरो को कष्ट पहुचाने के हैं और दूसरो के साथ छल-कपट कर नीचा दिखाने के भाव रखते हैं, वे सातावेदनीय कर्म को किस प्रकार बाध सकते हैं ? कभी नही बाध सकते हैं । वे तो अपनी पापमयी भावना के फल से आगे दु ख ही भोगने की सामग्री सचय कर रहे हैं । उन्हे तो उसके फल से इसी जन्म मे भी दुःख भोगने पडेंगे और आगामी जन्म भी नरक-निगोदादि के दु ख भोगना पडेंगे ।

दो भाई

मारवाड के एक गाव की बात है । गाव का नाम मैं नही बताऊ गा । दो भाइयो के पास पांच-सात लाख की पू जी थी । उनकी आपस मे नही बनी तो वे न्यारे-न्यारे हो गये । यह सब कुछ औरतो की लडाई-झगडे के कारण

से लाई ? उस बेचारी ने उसे खोलकर रख दी। दुर्भाग्य से तीसरे दिन लडका बीमार पडा और पाचवे दिन मर गया। बताओ—ऐसी माँ को माँ कहा जाय, या डाकिन कहा जाय ? किसी के भोग--उपभोग मे आड देना, दूसरे का काम बिगाड देना और झगडा-टटा करना ठीक नही है। इससे असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है। कितने ही दुर्भागी मनुष्य ऐसे होते हैं कि अन्य साधारण दिनो मे तो शान्ति रख लेते है, किन्तु होली, दिवाली और राखी आदि त्यौहारो के दिनो मे घर वालो को शान्ति से खाने नही देते है, कलह करते हैं और कोई न कोई झगडा-फिसाद की बात उठाकर घर मे कुहराम मचा देते है, जिससे बनी हुई खाद्य-सामग्री भी कुत्तो और गधेडो को ही डालनी पडती है। इस प्रकार के सहज मे बाधे गये कर्म जब उदय मे आते हैं, तब कहते है कि हमने इस भव मे तो बाधे नही, न मालूम कब के वाधे हुए कर्म उदय मे आये है। अरे, जब बाधे थे तब तो हस-हस करके वाधे थे, और अब जब वे उदय आये है, तो भोला बनता है और कहता है कि इस जन्म मे तो मैंने वाधे नही हैं ? अभी गुरुजन सावधान कर रहे हैं, फिर जब ये ही कर्म उदय मे आयेंगे, तब रोयेगा और कहेगा कि हाय, मैंने ये कैसे कर्म वाधे ?

आजकल लोग अपने धन का, परिवार का, रूप का, अधिकार का, बल का, ज्ञान का, ऐश्वर्य का, कुल का और जाति का अहकार करते है कि मैं ऐसा हूं, मैं वैसा हू ? मेरे जैसा कोई नही ? इस प्रकार मदान्ध होकर अभी तो पुण्य-पाप की कुछ परवाह करते नही और नाना प्रकार के असाता देने वाले पाप कर्मों को वाधते रहते हैं। पीछे इन्ही कर्मों के उदय आने पर रोते हैं कि हाय भगवान् मेरे पर यह क्या आपत्ति का पहाड टूट पडा। दीन-बन्धो, मेरी रक्षा करो, मुझे वचाओ। पर दीनबन्धु भगवान् कहते हैं कि भाई जब मैं तुम्हे पुकार-पुकार कर बुरे कामो को करने से रोक रहा था, तब तो तुमने मेरी एक न सुनी, एक भी बात मानी नही ? अब मैं क्या कर सकता हू। अब तो तुम्हे किये कर्मों का फल भोगना ही पडेगा। यदि अब भी आगे के लिए अपना भला चाहते हो तो ऐसे कामो के करने का

कर्त्तव्य है। किन्तु सफलता मिलना भाग्य के अधीन है, वह अपने हाथ मे नहीं है।

हा, तो वे बच्चा बच्ची बिलख रहे हैं और कहते हैं कि मा, रोटी दो, रोटी दो। मा कहती है कि बेटा, अभी लाती हू। अब उसने धनी से कहा कि रोटी का कुछ न कुछ उपाय करो। वह घर से निकला। उसने अपने जीवन मे आज तक कभी किसी के आगे हाथ नही फैलाया था। वह समाज के कितने ही बडे लोगो की दुकानो पर गया। पर जब कोई उसे नौकर रखने को भी तैयार नही हुआ, तब सहायता देना तो बहुत दूर है। ऐसे तो अपनी जाति बडी ऊंची रही है, और समाज भी ऊचा है। परन्तु आज समाज मे ऐसे लोग पैदा हो गये है कि दुखियो का कोई धनी धोरी नही रहा है। कहा भी है—

सब ही सहायक सबल के, कोई न निबल सहाय।
पवन जरावत आग को, दीप हि देत बुझाय॥

सभी लोग मोटो के—लाठो के—सहायक हैं, परन्तु दीन-पुरुषो का सहायक कोई नही है। अरे, आप जैनी लोग ही दया नही पालेंगे, तो क्या कसाई पालेंगे? कोई भाई अपाहिज है, स्त्री बुड्ढी है, आदमी अपग है और घर मे कोई पानी पिलाने वाला भी नही है। ऐसी अवस्था मे यदि आप ढाढस बधाकर कह दें कि भाई, घबराओ नही, मैं तुम्हारा यह काम कर दूगा और खाने-पीने का भी प्रबन्ध कर दूगा। तो इतना कहने भर से उसको कितनी शान्ति मिलती है। पर आज इतना कहने वाले भी समाज मे नहीं दिखाई देते हैं।

हा, तो वह भाई कई लोगो की दुकानो पर गया, काम करने की प्रार्थना भी की। मगर कही भी काम नही बना। आखिर उसने घर लौट कर कहा—अभी तो मा सा० जीवित हैं। और जेठ-जिठानी भी है, तू उनके पास जा और सेर-दो-सेर आटा उधार ही ले आ। उसके कपड़े भी फट गये थे। वह अपनी लाज भी नही बचा सकती थी। अत पति की बात सुनकर बडी चिन्ता मे पडी कि ऐसी हालत मे मैं कैसे सासू और जिठानियो के सामने

हुआ । न्यारे होने के वाद वडे भाई की पुण्यवानी प्रवल थी, अत उसके और भी लक्ष्मी बढती गई । परन्तु छोटे भाई की पुण्यवानी हल्की होने से उसके घाटा ही घाटा होता गया । घर मे खर्च ज्यो का त्यो चले और दुकान मे टोटा ही होता रहे, तो घर कितने दिन बना रह सकता है ? आखिर ऐसा समय आया कि दुकान वन्द हो गई और रहने का मकान भी बिक गया । खाने के लिए घर मे कासे के वर्तन भी नही रहे । इधर वडा भाई पहिले भी लखपति था, और अव चौगुनी लक्ष्मी वढ गई, तो ठाट-बाट से रहने लगा । मोटर भी रख ली और नौकर-चाकर भी बढ गये । एक दिन छोटा भाई बडे भाई के पास गया और बोला—भाई साहव, आप और हम एक ही मा के पेट मे उत्पन्न हुए हैं । परन्तु आज मेरी ऐसी स्थिति हो गई है, इसलिए कुछ मेरी सहायता करे तो मैं अपना काम चला सकू । यह सुनकर वडा भाई बोला—देखो, मैंने तुम्हारा हिस्सा बाटकर तुम्हे दे दिया । अव तुम निर्धन हो गये तो यह तुम्हारी तकदीर की बात है । मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नही कर सकता हूँ । छोटे भाई ने बहुत अनुनय-विनय करके कहा कि यदि आप मेरी सहायता नही करेंगे तो हम सब लोगो को भूखा मरना पडेगा । वडा भाई बोला- मेरी तरफ से तुम कल मरते थे तो आज मर जाओ । इसकी मुझे कुछ परवाह नही है, पर मैं कुछ भी मदद नही दूगा । जब छोटे भाई ने बडे भाई के ऐसे वचन सुने तो वह हताश होकर अपने घर चला आया । कुछ दिन किसी प्रकार उसने काम चलाया । आखिर एक दिन ऐसा आया कि घर मे आटा-दाल कुछ भी नही रहा । दो दिन स्त्री और पुरुप को उपवास करते बीत गये । तीसरे दिन छोटे वच्चा वच्ची भूख के मारे तिल मिला उठे और रोटी-रोटी चिल्लाने लगे । भाई, भूख की पीर भी कम नही होती । एक कवि ने कहा है कि—

> रोटी रोटी की है पीर, हाल सुन नैना वरसै नीर ।
> दुखियो की हालत को सुनकर जाय कलेजो चीर ।

वन्धुओ, पैसे तो हाथ-पैर नही कमाते है, दिमाग नही कमाता है, परन्तु भाग्य कमाता है । यह ठीक है कि उद्योग करना मनुष्य का

जेठ सा०, आप पिता के समान हैं, आपको ऐसी गालिया देना शोभा नही देता है। आटा तो मैंने उसनलिया है। यदि आपको नही देना है, तो ये रहा आटा। वडे भाई ने विना कुछ आगा-पीछा सोचे ही परात उठाया और बाहिर आकर आटा कुत्तो को फेंककर और परात को फोड के घर के भीतर फेंकता हुआ अपने घर चला आया।

कहो भाइयो, क्या यही ओसवालो की दया है ? क्या यही हरी वनस्पति की रक्षा करने वाले और पानी छानकर पीने वाले जैनियो की दया है ? अब कहो कि ऐसा अपमान-जनित दुख कैसे सहन किया जाय ? इधर बच्चा वच्ची कह रहे है कि मा रोटी दो! बच्चो के ये शब्द सुनते ही उस बहू की आखो से आसुओ की धारा वह निकली, फूट-फूट कर रोने लगी और रोते हुए बोली—हे प्रभो, यह आपत्ति का पहाड कहा से टूट पडा ? आज वच्चे रोटी के बिना विलख रहे हैं और उन्हे रोटी का टुकडा भी देने मे समर्थ नही हू। ऐसे जीने से तो मर जाना ही अच्छा है। यह सोचकर किसी से कुछ कहे बिना ही वह अपने लडके - लडकी को लेकर घर से निकली और गाव के वाहिर बावडी पर पहुची। उसने बच्चो को वावडी के पाल पर बैठाकर कहा कि मैं रोटी लेकर आती हू। और स्वय बावडी के भीतर जाकर पानी मे कूद पडी और मर गई। मनुष्य को जब असह्य दुख हो जाता है तब वह आत्मघात कर बैठता है।

इधर छोटा भाई गाव मे गया था सो किसी की मिन्नतें करके सेर-सवा सेर अनाज लेकर घर आया। घर को खुला और सूना पडा देखकर उसने पड़ोसियो से पूछा तो एक ने वताया कि तेरा वडा भाई अभी कुछ समय पहिले तेरे घर आया था। वह तेरी बहू से लडा और उसना हुआ आटा कुत्तो को खिलाकर चला गया। इसके बाद तेरी वहू दोनो बच्चो को लेकर इधर चली गई। यह सुनते ही उसका दिल दहल गया और वह सीधा गाव के वाहिर उसे ढूढने निकला। बापडी पर जाकर देखा कि दोनो वच्चे बैठे हुए रो रहे हैं। बच्चों को देखते ही उसने उन्हें छाती से लगा लिया और उनसे पूछा तुम्हारी मा कहा गई है ? बच्चो ने रोते हुए वताया कि वावडी मे रोटी

लेने को गई है। और हमे यहा पर कह गई है कि रोटी लेकर अभी आती हूँ। उसने बावडी मे झाक कर देखा उसने स्त्री की लाश पानी के ऊपर तैरती दिखाई दी। यह देख उसने भी सोचा कि अब मैं भी जिन्दा रहकर क्या करूगा ? बस उसने दोनो बच्चो को दोनो बगलो मे दबाया और धडाम से बावडी मे कूद पडा। हाय री गरीबी, तुने कितना जुल्म किया और एक पूरे घर को ही समाप्त कर दिया !!!

भाइयो, उस बडे भाई के हीन दृष्टिकोण और बुरे व्यवहार से चार जीवो को बिना मौत के मरना पडा और एक पूरा घर समाप्त हो गया। थोडी ही देर मे यह समाचार सारे गाव मे बिजली के समान फैल गया। सारे गाव के लोग हाहाकार करने लगे सब अपने-अपने घरो मे उस दुष्ट भाई की नीचता को धिक्कारने लगे। परन्तु उस लखपति भाई के घर जाकर किसी को भी यह कहने का साहस नही हुआ कि अरे नीच, आज तेरी नीचता के कारण ही चार जीवो के प्राण गये हैं और तू ही इन चार हत्याओ का अपराधी है। यदि तू जरासा सहारा दे देता और आज उसना आटा फेंककर कुत्तो को न खिलाता तो यह नौबत क्यो आती ? भाई, यदि किसी गरीब के द्वारा यह अनर्थ हुआ होता, तो दुनिया उसे अग्नि मे होम देती। परन्तु आज पूजी वालो से ऐसे ऐसे अनर्थ कर देने पर भी कौन कहने की हिम्मत करता है ? कौन कह सकता है कि यह दोषी है। ऐसी दशा आज कितने ही स्थानो पर हो रही है, परन्तु इस पर कोई विचार नही करता है।

अन्धेर नहीं, देर

परन्तु भाइयो, आखिर बुरे का फल बुरा ही होता है। कुदरत के घर मे देर हो सकती है, पर अन्धेर नही हो सकता। जो जैसा करता है, उसे एक न एक दिन वैसा ही भोगना भी पडता है। तुलसीदास जी कह गये हैं कि '**जो जस करहि सो तस फल चाखा**। बस, फिर क्या था ? पाच वर्ष के बाद जब उसके भी पाप का घडा भर गया, तो वह फूट गया। उसे भी व्यापार मे ऐसी टक्कर लगी कि सारी पूंजी ठिकाने लग गई और शरीर मे भी असाध्य रोग लग गया। उसके शरीर से राध और रक्त झरने

लगा और शरीर मे कीडे पड गये। अन्त मे भयकर वेदना से कराहते हुए वह मर गया। भाइयो, ससार का हाल देखो कि घर मे सब कुछ होते हुए भी सगे भाई के लिए उसका दिल कितना कठोर बन गया कि दो सेर आटा देना भी सहन नही हुआ। और उन चार प्राणियों को पेट की ज्वाला मे जलकर असमय मे मरना पडा। बताओ, ऐसे निन्द्य एव घृणित कार्य करने वाले लोग क्या साता वेदनीय कर्म बाध सकते है ? कभी नही ? वे तो ऐसे तीव्र असातावेदनीय कर्म का बन्ध करेंगे कि अनेक भवो तक कुयोनियो मे अनन्त दु खो को भोगते रहेंगे। जीवो के द्वारा उपार्जन किये गए छोटे या बडे सभी पाप कर्म समय पर उदय आते ही हैं। जो मनुष्य जिस व्यक्ति के साथ जैसा खोटा व्यवहार करता है, वह परभव मे उसका बेटा-बेटी होकर साझेदार होकर या गाय-भैंस बनकर बदला लेता ही है। भाइयो, याद रखो कि ऋण और वैर ये दो कभी नही छूटते हैं। इनको तो भोगना ही पडता है।

आज आप लोग छोटी-छोटी बातो के लिए भी कितना छोटापना दिखाते हैं कि जिसकी कोई सीमा नही है। आपके लडके की सगाई होती है तो पहिले से ही पच्चीस-पचास मोहरें तय कर लेते है। लडकी वाला मजबूरी मे कबूल कर लेता है। मगर घर मे न होवे तो कहा से देगा। यदि कोई कबूली हुई मोहरो मे से कुछ कम दे पाता है, तो आप लोग क्या करते है कि लडकी को वापिस नही भेजते हैं। इस प्रकार के कार्यों से क्या आप अन्तराय कर्म नही बाधते हैं और क्या असातावेदनीय का बन्ध नही कर रहे हैं ? आज आपके इस बडे समाज में बीस-पच्चीस वर्ष की बडी बडी अनेक लडकिया पीहर मे बैठी हुई अपने भाग्य को रो रही है और आप लोगो को कोस रही हैं। हे समाज के सिर मौर और धर्म के अनुयायियो, क्या आप लोगों को इस बात का जरा भी विचार है कि हमारे समाज की क्या हालत हो रही है ? और कितनी बुरी दशा से समाज गुजर रहा है ? तुलसीदासजी ने कहा है कि—

तुलसी हाय गरीब की, कबहुं न निष्फल जाय।
मरे बैल के चामसे, लोह भस्म हो जाय॥

भाई, गरीबो के अन्तरंग से निकली हाय कभी निष्फल नही जाती है। वह एक न एक दिन अपना रग दिखा करके ही रहती है। इन गरीबो के शाप से जाति का बडा बिगाड हो रहा है। आज जाति मे बडा ओछापन आ रहा है। यदि इसी प्रकार दिन पर दिन बिगडते ही चले गये तो फिर सुधार की आशा दुराशा मात्र होगी। लोगो को अपने पेट की ज्वाला तो शान्त करनी ही पडेगी। आपके सामने छत्तीसो ही जातिया अपना पेट भर रही हैं और आपके नौजवान औरो के सामने जावे और कहे कि ठेकेदार सा०, मिहरवानी करो और हमको भी नौकर रख लो। अरे, पहिले वे लोग आपके यहा से पेट भरते थे और आज आपके लडके उनके यहा पेट भरने के लिए जावे? यह आप-लोगो के लिए बडे शर्म की बात है। आपकी समाज के भाई आपकी दुकान पर काम करने के लिए आजाये तो आप उनको रखने के लिए तैयार नही। भले ही आप अन्य समाजवालो को रख लेंगे फिर चाहे वे आपके घर का सफाया ही कर देवे और चोरिया करे। परन्तु उनको आप रखते हैं। इसका यही मतलव है कि आपके हृदय मे जाति का प्रेम नही, अपने घर वालो से प्रेम नही, सार्धमियो से स्नेह नही है। फिर बताओ—सातावेदनीय कर्म कैसे वधेगा?

वाधने वाले आप ही हैं

भाइयो, हम सातावेदनीय को वाधने वाले हैं और हम ही असातावेदनीय को वाधने वाले हैं। जैसा कि अभी पहिले बता चुके हैं—भले कामो से—शुभ कार्य करने से सातावेदनीय कर्म बँधता है और बुरे कामो से—अशुभ कार्य करने से असातावेदनीय कर्म वध जाता है। असातावेदनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा-कोडी सागरोपम की है। एक वार का तीव्र दुर्भावो मे वधा हुआ कर्म इतने लम्वे काल तक फल देता हुआ चला जाता है। सभी नारकियो के जीवन भर असाताकर्म का उदय चलता है और सभी देवो के जीवन भर साता कर्म का उदय रहता है। किन्तु मनुष्य और तिर्यंचो

के इन दोनो का उदय धूप-छाया के समान वदलता रहता है। यदि आप लोग अपने असाता कर्म के तीव्र उदय को ढीला करना चाहते हैं, उन्हे चाहिए कि वे दीन, अनाथ, अपाहिज और रोगी पुरुषो की सेवा करें। भगवान् ने मुनिराजो तक को परस्पर मे वैयावृत्य करने का उपदेश दिया है। श्रावको के लिए सेवा करना वताया और मुनियो के लिए वैयावृत्य करना कहा। मगर दोनो शब्दो का अर्थ एक ही है। अलग-अलग दो शब्द कहने का अभिप्राय यह है कि मुनिजन सेवा-टहल यतनापूर्वक करते हैं, इसलिए उनका यह कार्य वैयावृत्त्यतप हो जाता है और आप खुले हैं। अत आपकी सेवा-टहल तप का अग न होकर पुण्य की साधना है।

आप लोगो को यह वात अव ध्यान मे आगई होगी कि साता वेदनीय कर्म उत्तम विचारो से, प्रिय वचन वोलने से, काया से दूसरो की सेवा टहल करने से और धन के द्वारा दूसरो को सहायता पहुचाने से साता वेदनीय कर्म वधता है। आज कितने ही स्थानो पर ऐसे ऐसे पुण्यवान् पुरुष भी मौजूद हैं कि जिनकी दुकान पर कोई गरीव जरूरतमन्द आया और उसने कहा कि सेठ जी, गेहू की जरूरत है। सेठ जी कहते हैं कि ले जाओ भाई। वे यह नही पूछते हैं कि पैसे लाये हो, या नही ? वे अनाज तौलते-तौलते दो मोहरें डाल देते हैं। जव वह अनाज को घर ले जाकर साफ करता है और उसमें से मोहरें निकलती देखता है तो ले जाकर सेठ जी को देता है। तव सेठ जी कहते हैं कि भाई, मोहरें मेरी नही हैं। कही कोई अनाज मे मोहरें भी रखता है ? जाओ-ले जाओ, ये तुम्हारे पुण्य से कही से आगई हैं। भाई, मदद पहुचाने का यह तरीका है। भाई, पच्चीसा काल पड गया पाली मे। उस समय वहा पर काकरिया जी का घर वडा जवर्दस्त था। उन्होंने लड्डुओ की प्रभावना वाटी तो उन्होंने उनके भीतर मोहरें डलवा करके लड्डु वनवाये और उन्हे गरीव साधर्मी भाइयो के यहाँ वटवाये। वे काकरिया जी अव वहा नही रहे हैं। उनका एक घर यहा जोधपुर आ गया है और एक घर महामन्दिर मे चला गया परन्तु आज भी उनके काम का नाम चल रहा है। हालाकि कोई आदमी उनके घर का वहा नही रहा है

और अव उनके वशजो के पास पैसा भी नही रहा है। रतलाम मे भी एक नगर सेठ ऐसे हो गये हैं, जो राखी के त्योहार पर लड्डुओ मे मोहरे रखकर गरीब साधर्मी भाइयो के घर पाच-पाच लड्डू भिजवाते थे। जब कोई आकर के कहता कि सेठजी, लड्डुओ मे ये मोहरें निकली हैं, आपकी है,आप इन्हे ले लो। तब वे कहते—बावले हो गये हो ? क्या कोई लड्डुओ मे मोहरें रखता है। तुम्हारे पुण्य से तुम्हारे ही घर पर ये प्रकट हो गई हैं। इस प्रकार कह कर उन लोगो को लौटा देते थे। भाई, समाज सेवा का और साधर्मी वात्सल्य का यह तरीका पहिले अपनी समाज मे प्रचलित था। और यह तो अभी तक प्रथा चली आ रही है कि पर्व-त्योहार पर अपने घर बने पकवानो और लड्डुओ को लोग पडौसी एव गरीब साधर्मी भाइयो के यहा भिजवाते हैं। शायद बडे शहरो की चकाचौंधी मे आप लोग इस प्रथा को भी भूल गये होगे। पर गावो मे यह प्रथा बराबर आज भी चालू है। आप लोग आज अपने पडौसी और भूखे बाल-बच्चो का तो ख्याल नही रखे और यहा हमारे पास आकर पाच-पाच सामायिकें करे और दया पाले। मैं पूछता हू कि यह कैसी दया करते हो ? अरे, वह तो दया दिल मे है कही बाहिर से लानी नही है। उसका तो हमे बहुत विचार करना चाहिए।

भाइयो, आज एक बात कहते हुए मुझे बडा दुख हो रहा है। मेरे पास अभी सरदारपुरा के लडके आये और कहने लगे कि महाराज साहब, पहिले माथुर सा० हैडमास्टर थे तो वे पर्युषण पर्व मे आठ दिन की छुट्टिया रखते थे। परन्तु अब ओसवाल हेडमास्टर आये हैं तो उन्होने इन दिनो की छुट्टिया बन्द कर दी हैं। भाई बताओ कि हम आपके कैसे गुण-गान करे ? और कैसे मीठे बोलें ? यदि कडवा बोलते है तो आप लोग कहते है कि महाराज, आप तो कडवा बोलते हैं। जब माथुर सा० हेड मास्टर थे, तब वे पर्युषण पर्व का महत्त्व रखते थे। और अब ओसवाल साहब कहते हैं कि इन दिनो छुट्टियो की क्या आवश्यकता है ? यदि हडताल हो जाय तो दिनो के दिन और महीने ही पूरे हो जाये, तब तो उसका उन्हे रोना नही है। परन्तु पर्युषण की छुट्टियो पर अवश्य विचार करते है। सस्था के जो प्रेसीडेन्ट और

सेक्रेटरी हैं, क्या उनका कोई अधिकार नही है ? कहते हैं कि क्या करें, स्कूल का सारा अधिकार तो हेड मास्टर सा० को दे रखा है। बस, ऐसी ही वातो से उन्हें और भी शह मिल जाती है। फिर क्या है, भले ही जाति का सुधार हो, या विगाड ? उसकी उन्हें क्या चिन्ता है ? जिस जाति के नाम पर आप अन्यत्र जाने पर पहिचाने जाते है और सन्मान पाते हैं, आज आपको और आपके ही द्वारा सस्थापित सस्थाओ के कार्यकर्त्ताओ को उस जाति के गौरव की कोई चिन्ता नही, उस धर्म के प्रभाव, प्रसार और प्रचार की कोई चिन्ता नही ? इससे वढकर और दु ख की दूसरी वात क्या हो सकती है ?

वगाल का सूवेदार

वगाल का एक सूवेदार जो वहा का सर्वेसर्वा तथा वादशाह की नाक का वाल था। वही पर मारवाड के नागौर के पास के वाडली गाव के सेठ अमीचन्द जी थे। एक वार सेठजी की स्त्री पर सूवेदार की नजर पड गई। वह हाकिम था सो उसने षड्यन्त्र रच करके किसी प्रकार सेठानी को अपने वगले पर वुला लिया। परन्तु वह सेठानी वडी समझदार, और आन-वान पर मर मिटने वाली थी। अपने सतीत्व की रक्षा का उसे भरपूर ध्यान था। जव उसने अपने सतीत्व धर्म पर सकट आते हुए देखा, तव वह भाग्यवती सती कटारी खाकर मर गई, परन्तु अपने धर्म पर दाग नही लगने दिया। और वह उस पापी तुर्क के घर मे नही रही। वह सेठ भी मरोड वाला था, ऐसा-वैसा नही था। जव उसे स्त्री के सूवेदार के यहा जाने की वात का पता चला तो वह भी वहा पहुचा और देखा कि स्त्री मरी हुई पडी है तो उसकी, नस-नस मे खून खोल गया। उसने कहा—अरे तुर्क, यदि मैं ओसवाल की मां का दूध पिया होऊगा तो तेरा खात्मा करके रहूँगा। फिर उसने वह खेल दिखाया कि मुसलिम सल्तनत नेस्तनावूद हो गई और भारत सदा के लिए गड्ढे मे गिर गया और अग्रेजो के अधीन हो गया। भाई, क्रोध मे तो ऐसा ही होता है। जव उस सूवेदार ने ऐसी नीचता की वात सोची, तव उसे भी प्रतिशोध के लिए वैसा करना पडा। यदि अमीचन्द सेठ के स्थान पर अन्य कोई कुपात्र होता, तो वताओ जाति की नाक कटती, या नही कटती ? पर

अभीनन्द को यह अपमान सहन नही हुआ कि कोई नीच मेरी स्त्री को ले जावे और मै चुपचाप बैठा देखता रहू ! इसलिए उसने उसको उसकी करनी का मजा चखाना ही उचित समझा । परन्तु आज जाति का कोई गौरव और वीर्य नही रहा है । समाज और जाति मे ऐसी कमजोरी कैसे आ गई, इसी पर विचार करना है ।

मै कह रहा था कि पर्युषण पर्व का आज तीसरा दिन है । परन्तु आज हमारे भीतर कितने ही लोग तो तिथिया, कितने ही नितिया, कितने ही भादविया, कितने ही पजूषणिया और कितने ही सवत्सरिया भक्त हैं । कई लोग जो नित्य आते जाते हैं, वे तो व्याख्या व कथा कोई भी कहे, चाहे वे अपने साधु महाराज हो, चाहे अन्य मतावलबी साधु हो, सबसे सुनते अवश्य है । परन्तु समझते कुछ नही है । बैठके घिस डाले, अनेक मु हपत्तिया फाड डाली । परन्तु उनसे पूछो कि लेश्या कितनी है, तो वे नही बता सकते । कई तिथिया भक्त हैं, वे दोज, पचमी, अष्टमी, ग्यारस और चतुर्दशी को ही मुख दिखाते है । कई भादविया भक्त है, जो भादवा मास के लगते ही बैठका पू जनी को तैयार करते है । और कई है पजूषणिया भक्त । वे तो साल भर मे केवल पर्युषण के दिनो मे ही आते है । कितने ही सबसे बढकर है, वे है सवत्सरिया भक्त । ये तो केवल सवत्सरी के दिन ही अपना नाम लिखाने को आ जाते है । परन्तु जो वर्ष भर मे एक भी दिन नही आते है, उनसे तो वे अच्छे है कि एक दिन आते तो हैं ।

मै परसो पदमसागर से वापिस आ रहा था, तो रास्ते मे एक भाई मिले । उनके साथ एक छोटा लडका था । उस बच्चे ने कहा—राम-राम महाराज ! उसके बाप ने कहा—बेटा, ये अपने महाराज नही है । इनको तो [illegible] करने का कहना चाहिए । यह सुनकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ । अरे, [illegible] के [illegible] ! राज मे नौकरी करली तो वैष्णव धर्म भी स्वीकार कर लिया । जाति का जरा भी असर नही रहा और जाति का गौरव ही समाप्त कर दिया । मै जब ऐसी बाते देखता और सुनता हू, तब कभी-कभी मन मे यह विचार आता है कि मेरी जाति मे यह क्या हो रहा है ? दूसरी

जातियो मे कोई आर्यसमाजी है, या ब्रह्मसमाजी हो गये हैं, या अन्यधर्मी हो गये हैं, परन्तु उन्होंने अपनी जाति का गौरव नही छोड़ा है। परन्तु यहा तो पहिले जाति को छोटते हैं। फिर जरासा धापकर खाने को मिला नही, पेटिया और नौकरी मिली नहीं कि धर्म को छोडते भी देर नही लगती है। भाई, गये गुजरे कभी धर्म नही करते हैं परन्तु पुण्यवान लोग ही धर्म करते हैं। गीता मे भी कहा है -

'स्वधर्मे निधन श्रेय. पर धर्मो भयावह .'

श्री कृष्ण जी अर्जुन से कहते हैं कि अपने धर्म मे मरना श्रेयस्कर है, परन्तु पर धर्म को धारण करना भयकर है।

भाइयो, इस गीता वाक्य का असली अर्थ यह है कि जो स्व अर्थात् आत्मा का धर्म है, हमारा कल्याणकारी धम है, वीतराग सर्वज्ञ देव ने कहा है जिसे निर्ग्रन्थ मुनिराजो ने वताया है, उस धर्म को पालन करते हुए मर जाना अच्छा है, अवसर आने पर प्राण दे देना भला है परन्तु पर धर्म को स्वीकार करना अच्छा नही है, क्योंकि वह ससार मे परिभ्रमण का कारण है और इसीलिए वह भयावह है। इसलिए हमे कभी भी अपने धर्म से विचलित नही होना चाहिए। भले ही हम पर कैसे ही और कितने ही सकट क्यो न आवे ? यदि कोई विपत्ति की वात आये तो उसे सुधारना चाहिए। इसी से शाति मिलेगी, साता और आराम प्राप्त होगी।

आज के इस तीसरे दिन से यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हम ऐसे शुभ कार्य करें कि जिससे दूसरो को साता पहुचे। दूसरो को साता पहुंचाने से आपके भी सातावेदनीय कर्म का वन्ध होगा, जिससे आप इस लोक मे भी साता पायेंगे और पर लोक मे भी साता पाने के अधिकारी वन जायेंगे।

वि स २०२७ भादपद कृष्णा १५
जोधपुर

●●

४ | मोह को जीते, सब जीते

सज्जनो, आज पर्युषण पर्व का चौथा दिन है। चार वस्तुओ के बिना कार्य वनता नही है। कोई काम आपने हाथ मे लिया, उसे एक बार किया, दो वार किया और तीन बार किया। परन्तु फिर भी उसमे कोई न कोई कमी रह जाने पर दुनिया कहती है कि भाई, हिम्मत मत हारो और 'चौथे चावल सीझें' इस लोकोक्ति के अनुसार चौथी बार कार्य करने पर वह अवश्य सम्पूर्ण होगा और सफलता प्राप्त होकर रहेगी।

सब का राजा मोह कर्म

आत्मस्वरूप का आवरण करने वाले और उसके स्वरूप के विघातक कर्म आठ हैं। उनमे से आपके सामने ज्ञानावरणीय कर्म का स्वरूप बताया कि यह कर्म ज्ञान को प्रकट नही होने देता है। दर्शनावरणीय कर्म आत्मा के अनन्त दर्शन गुण का आवरण किये हुए है और वेदनीय कर्म आत्मा को सर्व वाधाओं से रहित निराकुल अव्यावाध सुख की प्राप्ति नही होने देता है।

अव आज का विपय है मोहनीय कर्म। यह सव कर्मों का राजा है। यह सवका अध्यक्ष है। यदि यह मोहनीय कर्म पराजित हो जाय, समाप्त हो जाय, तो शेप सातो कर्मों का विनाश होते कोई देर नही लगती है। परन्तु

इस मोह कर्म का किला और झडा वडा मजवूत है। यह वहुत वलवान् राजा है। इसकी अट्ठाईस प्रकृतिया हैं। इसका स्वभाव मदिरा (शराव) के समान है। मदिरा पिया हुआ व्यक्ति अपना ज्ञान, ध्यान, होश-हवास, वुद्धि और चातुर्य सव नष्ट कर देता है। वह शराव के नशे मे पागल वनकर नाना प्रकार से वकना, लडना, झगडना प्रारम्भ कर देता है। यह सव शराव का ही प्रभाव है। जव उसका नशा उतर जाता है तव वह पहिली अवस्था मे आ जाता है और वह होश-हवास से काम करने लगता है। इसलिए आत्मा का सवसे भयानक शत्रु मोहनीय कर्म ही है। इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि—

मुह्यन्ति देहिनो येन मोहनीयेन कर्मणा।
निर्मितान्निर्मिताशेषकर्मणा धर्मवैरिणा॥

यह मोहनीय कर्म धर्म का वैरी है। इसके रहते हुए आत्मा की प्रवृत्ति धर्म करने की होती नही है और आत्मा का यथाख्यात स्वभाव प्रकट नही हो पाता है। यह मोहनीय कर्म ही शेष सव कर्मो का निर्माण करने वाला है। इसके द्वारा निर्मित मोह से-राग-द्वेष-अज्ञानादि भावो से ससार के समस्त प्राणी मोहित हो रहे हैं। इसने ससार के किसी प्राणी को अपने अधीन करने से छोडा नही है। इसने वडे से वडे व्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे देवताओ को भी अपने शिकजे मे जकड रखा है। आचार्य अकलक देव इस जगज्जयी मोह की महिमा और मोहजयी वीतराग देव की महामहिमा वतलाते हुए कहते हैं—

व्रह्मा चर्माक्षसूत्री सुरयुवती रसावेश विभ्रान्तचेता
शम्भुः खट्वाङ्गधारी गिरिपतितनयापागलीलानुविद्धः।
विष्णु श्चक्राधिप सन् दुहितरभगमद् गोपनाथस्य मोहाद्॥
अर्हन् विध्वस्तरागो जितसकलभय कोऽयमेष्वाप्तनाथ॥

यह व्रह्मा जो ससार का सृष्टिकर्ता माना जाता है, वह सुर-युवति तिलोत्तमा के सम्भोग-रस के आवेश से विभ्रान्त चित्तवाला हो गया। यह शम्भु जो कामजयी माने जाते थे, वे गिरिपति हिमालय की पुत्री पार्वती के

अपाङ्ग (कटाक्ष) लीला से अनुविद्ध होकर उसे ही अर्धाङ्ग मे लेकर बैठे हुए हैं। और जो विष्णु सुदर्शन चक्र के स्वामी माने जाते हैं, वे भी मोह से गोपालो के स्वामी की पुत्री राधा के पीछे पडे हुए है। एक अरहन्त देव ही ससार मे ऐसे दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्होने राग, द्वेष और मोह को विध्वस्त कर दिया है अर्थात् उन पर मोह का किसी भी प्रकार का प्रभाव नही है, और उन्होने समस्त भयो को जीत लिया है, इसलिए वे शस्त्रादि को अपने पास नही रखते हैं। अकलकदेव ससार के लोगो से पूछते हैं कि बताओ इन ब्रह्मा, विष्णु महेश और अरहन्त इन चारो मे से कौन सच्चा आप्तदेव कहलाने के योग्य है ? अर्थात् जगज्जयी कामदेव ने तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश को जीत लिया है। परन्तु वीतरागी अरहन्तदेव ने उस त्रिजगज्जयी कामदेव को भी जीत लिया है, अत सच्चे देवाधिदेव कहलाने का अधिकार अरहन्त देव को ही प्राप्त है।

इस विवेचन से आप लोगो की समझ मे आगया होगा कि आत्मा का सबसे सगीन-अति प्रबल शत्रु मोह कर्म ही है, क्योकि उसके प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे देवता भी अछूते नही बचे है। जितने भी तीन लोक मे प्राणी हैं, उन सबको इस मोह कर्म ने अपनी लपेट मे लिया हुआ है। इससे कोई भी नही बच सका है। इसी कारण ससार मे यह लोकोक्ति प्रचलित हो गई है कि इसका क्या कहना है ? इसने तो सबको मोह लिया है। कहा भी है कि 'मोह से अन्धी भईमरु देवी'। कहा जाता है कि मरुदेवी ने अपनी पैसठ हजार पीढिया देखी और खूब साता भोगी। परन्तु उसके भी मोह के वशीभूत होकर 'ऋषभ, ऋषभ' कहते रहने से आँखो मे जाला आ गया था। गौतम स्वामी ने भी जब तक मोहदशा रही, तब तक केवल ज्ञान नही पाया। कहा जाता है कि भ० महावीर के निर्वाण होने पर उनके वियोग मे उन्होने भी भारी विलाप किया। अरे, जब यह मोह ऐसे ऐसे महापुरुषो पर भी अपना प्रभाव डालने से नही चूका, तब औरो से तो क्या चूकेगा ? जब प्रद्युम्न का हरण हुआ तो उसके वियोग-जनित दुख से, और जब उसका सोलह वर्ष बाद मिलाप हुआ, तब सयोग-जनित हर्ष से श्रीकृष्ण

जी के भी आखो मे आसू आ गये। लव-कुश भी जब सोलह वर्ष के बाद राम से मिले, तो उनके भी आसू आ गये। मोह ने जब ऐसे महापुरुषो के भी ऊपर अपना प्रभाव दिखलाया तो अन्य साधारण जनो की तो बात ही क्या है ?

मोह की छतरी

भाई, आप इतना उपदेश सुनते हैं और सुनते हुए भी आप गुरु-वचनो का आदर नही करते है, तो इसमे आपका कोई दोष नही है। आप करे भी क्या करें ? मोह मे आप लोग बुरी तरह से जकडे हुए हैं और इसी के का ण आप अपनी भलाई की बातें सुनते हुए भी उन्हे भूल रहे हैं। जैसे वर्षा होने पर लोक बाहर निकलते हैं तो छाता लगा लेते हैं, अब जो पानी गिरेगा वह छाते पर ही गिरेगा कपडे नही भीगेंगे इसी प्रकार मन पर यह मोह कर्म का छाता लगा हुआ है, उपदेश आदि की वर्षा मन को नही भिगा रही है, वह पानी ऊपर ही ऊपर उतर जाता है क्योकि मन पर मोह की छतरी जो लगी हुई है।

आपसे कहा गया है कि दया करो,दया पालो। परन्तु बीडी पीने का ऐसा व्यसन लगा हुआ है कि रोटी के विना तो दो दिन रह जायेंगे, परन्तु बीडी के बिना दो घटे भी नही रहा जायगा। कितने ही लोग कहते हैं कि उपवास तो करें महाराज ! और भावना भी रहती है, तथा वह भी जानते हैं कि तपस्या किये बिना मुक्ति नही। परन्तु क्या करें ? भग के बिना हमसे रहा नही जाता। कितने ही लोग कहते है कि महाराज, कुछ भी फर्माओ, परन्तु शरीर लाचार हो जाने से हमसे दया नही पलती है। किसी किसी व्यक्ति के कोई व्यसन भी नही है, फिर भी कहते हैं कि महाराज, हमसे जमीन पर तो सोया नही जाता है और गादी-तकिया के बिना नीद नही आती है। कोई कहते हैं कि हमे तकिया नही चाहिए, किन्तु बिस्तर के बिना हम नही सो सकते है। कोई कहते हैं कि आठ दिन बाजार बन्द है तो हमको क्यो टूपा देते हो ? अरे, थोडी-बहुत उगाही तो करने दो। इन दिनो मे दो, चार, दस हजार इकट्ठा करेंगे तो आढतियो को जल्दी भेज देंगे, जिससे

जबतक मोहनीय कर्म का क्षय नही होता है, तब तक न तो शुद्ध सम्यक्त्व ही प्राप्त होता है और न शुद्ध सयम ही। और न चारित्र ही प्राप्त होता है। सम्यक्त्व और चारित्र के बिना ससार-सागर से जीव पार नहीं हो सकता। सबका आधार मोह को जीतने पर निर्भर है। एक मोह को जीत लिया, तो समझो कि सब कर्मों को जीत लिया दशाश्रुत स्कन्ध सूत्र (५) मे कहा है—

सेणावइम्मि निहते जहा सेणा पणस्सइ।
एव कम्माणि णस्सति मोहणिज्जे खय गते।

जैसे सेनापति के मर जाने पर बाकी सेना भाग जाती है, उसी प्रकार मोहनीय कर्म के नष्ट होने पर शेष कर्म भी स्वत नष्ट हो जाते है। भाई, सुनने की थोडी क्षमता रखो, तब सुधार हो सकता है। परन्तु अभी तक आपका धर्म के प्रति प्रेम नही जगा है।

मोह कर्म के दो भेद

जिस मोहनीय कर्म की अभी तक आपके सामने चर्चा की है, उसके मूल मे दो भेद है—दर्शनमोहनीय और चारित्र मोहनीय।

मोहणिज्जपि दुविह दंसणे चरणे तहा।
—उत्तराध्ययन ३३।८

दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतिया है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति। मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जीव को आत्म-हितकारी कार्य दुःख दायक प्रतीत होते हैं। वह अधर्म को धर्म मानता है, कुदेव को सच्चा देव मानता है और कुगुरु को सच्चा गुरु मानता है। इसी प्रकार उसे जिन-भाषित जीव-अजीवादि तत्त्वो पर भी श्रद्धान या विश्वास नही होता है। सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से देव-गुरु-धर्म पर भी श्रद्धा करता है और कुदेव-कुगुरु और कुधर्म पर भी श्रद्धा करता है। अर्थात् वह सभी धर्मो को सरसा मानता है, उसके हृदय मे विवेक नही होने से सत्य-असत्य का निर्णय नही होता है। सम्यक्त्व प्रकृति के उदय होने पर जीव के हृदय मे सम्यक्त्व तो बना रहता है। पर [illegible], मलिन और अगाढ दोष

उत्पन्न होते रहते है। जैसे—ये मेरे गुरु हैं, क्योकि इन्होने मुझे दीक्षा दी है और धर्म का स्वरूप वतलाया है। किन्तु अमुक मेरे गुरु नही, क्योकि उनसे मैंने दीक्षा नही ली है। सभी तीर्थंकरो मे समान सर्वज्ञता वीतरागता होते हुए भी यह मानना कि उपसर्ग दूर करने वाले तो पार्श्वप्रभु ही हैं और शान्ति के दाता तो शान्तिनाथ ही हैं। इस प्रकार तीर्थङ्करो मे भी भेद-भाव की वुद्धि इस सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से उत्पन्न होती है। ये मेरे सेठ हैं, इन्होंने मुझे अपने यहा आश्रय दिया है अत मेरी इनमे ममता है। माता-पिता ने मुझे पाल-पोस करके वडा किया है, मेरी सभी सुविधाए जुटाई हैं, इनसे भी मेरी ममता है। ये मेरे साधर्मी भाई है, इन्होंने मेरे वुरे दिनो मे मेरी वहुत सहायता की है, इन्होने मुझे धर्म से नही गिरने दिया है, इसलिए इनके ऊपर भी मेरा मोह है। भाई, समकिती व्यक्ति समकिती की कितनी सहायता करता है और उसके ऊपर कितना वात्सल्य भाव रखता है, यह भी सोचने-समझने की वात है।

साधार्मिक-वात्सल्य

राजा कुणिक का नाना चेटक था। परिस्थिति वश दोनो को आपस मे लडने का अवसर आ गया। हार और हाथी के निमित्त को लेकर। कुणिक के पास विशाल सेना थी। उसके पास तेतीस हजार हाथी, तेतीस हजार घोडे, तेतीस हजार रथ और तेतीस हजार ही पैदल सैनिक थे चेटक के पास केवल तीन-तीन हजार हाथी, घोडे, रथ और पैदल सैनिक थे। अर्थात् कुणिक की सेना का ग्यारहवा भाग ही उसके पास था। चेटक ने सोचा कि इतनी वडी सेना का मै मुकाविला कैसे कर सकता हू? तव उसने अपने समकिती साधर्मी भाई नौ मल्ली राजाओ को और नौ लिच्छवी राजाओ को याद किया। ये अठारह गणो के राजा लोग चेटक के परम मित्र थे। अत. समाचार मिलते ही वे सभी राजा लोग चेटक के पास आये और पूछा कि हम लोगो को कैसे याद किया है? तव चेटक ने कहा कि हल्ल और विहल को हिस्से मे हार और हाथी मिले थे। परन्तु उनके वडे भाई कुणिक को यह वात असह्य हुई। जव वह हार और हाथी को उन दोनो भाइयो

से लेने को तैयार हुआ, तब दोनो भाई हार और हाथी को लेकर मेरी शरण मे आये। अब कुणिक ने सन्देश भेजा है कि या तो हार और हाथी के साथ दोनो भाइयो को मेरे पास वापिस भेजो। अन्यथा लडने के लिए तैयार हो जाओ। अब मै क्या करू, इस बात पर परामर्श करने के लिए आप लोगों को याद किया है। यदि आप लोग कहे तो मै उन्हे अपनी शरण मे रखू और कुणिक के साथ लडाई करू ? और यदि आप लोग कहे तो उन दोनो भाइयो को हार और हाथी के साथ कुणिक के पास वापिस भेज दू ँ। यदि लडाई करता हू, तो हजारो-लाखो प्राणियो का सहार होगा। यदि शरण मे नही रखता हू तो हार और हाथी के साथ दोनो भाइयों को वापिस भेजना होगा। ऐसी दशा मे शरणागत की रक्षा का धर्म जाता है ?

राजा चेटक की यह वात सुनते ही अठारहो ही राजाओ ने कहा कि हम क्षत्रिय हैं, शरणागत की रक्षा करना हमारा परम धर्म है। अत दोनों भाइयो को हार और हाथी के साथ कैसे वापिस भेजा जा सकता है ? तब चेटक ने कहा—भाइयो, युद्ध होने पर तो अगणित जीवो की हिंसा होगी ? तव सव राजाओ ने कहा—हम गृह-त्यागी साधु नही है, किन्तु घरों मे रहने वाले श्रावक है। हम श्रावको का धर्म है कि निरपराध व्यक्तियो को नही मारे। किन्तु जो दूसरो से उनकी भूमि छीने, धन लूटे और वहू-वेटियो का अपहरण करे, या उनके साथ वलात्कार करे, वहा हमे उनकी आततायी से सर्व प्रकार रक्षा करनी चाहिए। यदि हम हिंसा के भय से उनकी रक्षा नही करे, तो यह वात हमारे धर्म के प्रतिकूल है। इसलिए इस का आप जरा भी विचार न करें। तव चेटक ने कहा – यदि आप लोगो का प्रस्ताव स्वीकार करके मैं युद्ध के लिए कुणिक को चुनौती भी दे दू, तो उसके साथ युद्ध मे विजय पाना कैसे सभव है ? क्योकि उसके पास मेरे से ग्यारह गुणी सेना है। तव सभी राजाओ ने एक स्वर से कहा महाराज, हम और आप अलग-अलग नही है। हमारे पास जो सेना है, वह सव आपकी ही है और हम अठारह ही राजा आपके छोटे भाई है। इसलिए हमारी सारी सेना को आप अपनी ही समझे। उन सव राजाओ के पास भी चेटक के समान तीन-तीन हजार

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक थे। इस प्रकार चेटक-सहित उन्नीस राजा, उन्नीस-तिया सत्तावन हजार हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक इस ओर हो गये। अब चेटक की सैन्य-शक्ति कुणिक से ड्योढी से भी ऊपर हो गई। चेटक की इतनी शक्ति कैसे हो गई? जबकि समकिती राजाओ का सहयोग मिला। तभी वे कुणिक से युद्ध करने को समर्थ हो सके। हार-जीत या जय-पराजय तो जिसके भाग्य मे जो लिखा होता है, उसे वही प्राप्त होता है। परन्तु यहा तो इस कथानक के कहने का आशय यह है कि समकिती भाई का समकिती भाई के साथ कैसा प्रेम होना चाहिए। यदि समकिती भाई विचार लेवें कि इसकी सहायता करके इसे ऊँचे चढाना है, तो वे चढा सकते हैं।

आपने सुना होगा कि पहिले पाली मे पल्लीवालो के एक लाख घर थे। यह एक स्वतत्र और व्यापारी जाति है। कोई कोई काश्तकारी भी करते है। उनमे जैन और वैष्णव भी हैं। हजारो पल्लीवाल जैन हैं। पल्लीवालो से ही पहले वसा हुआ 'पाटन' था। वह जब ध्वस्त हो गया, तब उसके बाद यह पाली नगर वसा। 'पालीवाल' इतना कौन कहे, इसलिए लोगो ने पाली-पाली कहना शुरु कर दिया और तभी से इसका नाम पाली प्रचलित हो गया। किसी समय वहा पर लाख घर पल्लीवालो के थे। उनकी जाति का यह नियम था कि कोई भी उनकी जाति का व्यक्ति—चाहे वह गरीब हो या मालदार—बाहिर से यदि वहा पहुचता, तो वे उसके स्थितीकरण के लिए घर पीछे एक-एक रुपया और एक एक ईट देते थे और इस प्रकार वे उसके रहने और व्यापार करने का प्रबन्ध करके अपने समान बना लेते थे। यह साधर्मीवात्सल्य का नमूना है।

अजमेर मे जो लाखनकोटडी है, वह कैसे बनी? भाई, मेडता से तीन हजार घर लखपति-करोडपतियो के भाग कर रातो-रात अजमेर आये और उन्होंने वहा पर लाखन कोटडी बनाई। मैं उदयपुर गया तो वहां ज्ञात हुआ कि यहा पर एक मालदारो की सेरी है। भाई, यदि आपस मे प्रेमभाव हो

तो मुहल्ले और गाव के गाव लखपति बन जाते हैं। किसी किसी स्थान पर जिस कुए-बावडी के जल से सिंचाई होकर लाख मन धान पैदा होता था, तो वह आज भी लाखीना वेरा कहलाता है।

नाम कैसे होता है ?

भाईयो, नाम भी दुनिया मे दो बातो से होता है काज व्यवहार से और गुणो से। पाली मे जहा पर पहिले घास विकता था, उसे आज भी घास मडी कहते हैं। उससे आगे बढ़े तो रुई का कटला आता है, क्योकि वहा पर रुई का ही व्यापार होता है,वहा रुई के सिवाय और कोई वस्तु नही मिलेगी। उससे आगे मिर्ची बाजार, तो वहा पर मिर्ची ही मिलती। इसी प्रकार गूद कटला, कपडा मडी आदि आदि। ये सब नाम एक एक वस्तु के लेन-देन के व्यवहार से पडे। यहा जोधपुर मे जो गुजराती कटला है, तो गुजराती भाइयो के एक स्थान पर शामिल रहने से यह नाम पडा। परन्तु आज के लोग एक साथ रहना नही चाहते है। अब तो लोग हवा और रोशनी वाले स्वतत्र बगलो और कोठियो मे रहना पसन्द करते है। आज आप सरदारपुरा मोहनपुरा और पृथ्वीपुर मे जाइये, एक एक मकान स्वतत्र मिलेगा। परन्तु पहिले मकान एक से एक मिले हुए बनाते थे। इसलिए कि सबके साथ रहने से हमारा चोरो और लुच्चो से बचाव हो सकेगा, रक्षा हो सकेगी। घर पास-पास थे तो अवसर पर इधर से उधर जल्दी आ जा सकते थे। आज की नई रोशनीवाले जो फैशनेबुल बगलो मे अकेले रहना चाहते है, उनके यहा पर रात मे यदि चोर बदमाश आ जाय तो उनके चिल्लाने पर भी कौन उनकी सुनेगा ? आज इन बंगलो मे किवाड जोडी कैसी लगती है कि यदि कोई तगडा आदमी लात मारे तो टूट जाय। मैंने देखा है कि जब मेरा चौमासा चाउडिया मे था, वहा पर जिसके भीतर से जाकर ऊपर चढते थे तो अकस्मात् वह आने का दरवाजा लग गया और सटकनी लग गई तो खुले कैसे ? अब भीतर जावे तो कैसे जावे,क्योकि कमरा बन्द होगया। इतने मे एक जाट आया। उसने पूछा कि क्या बात है ? लोगो ने बताया कि भीतर से सटकनी लग गई है, अब भीतर कैसे जावे ? उसने कहा कि खोल तो मैं दूगा, किन्तु

किवाड़ों का नुकसान होगा। लोगों ने कहा—कुछ भी हो, पर इन्हे खोल दो। उसने जोर से एक लात मारी तो किवाड जोडी दूर जाकर गिर पडी। भाई, आज ऐसी किवाड जोडी वाले स्वतन्त्र बगलो मे लोग मजा-मौज लेना चाहते हैं, परन्तु कभी-कभी उनमे चोरी डाके आदि के भयानक काण्ड भी हो सकते हैं, इसका आज ख्याल नही है।

भाइयो, हम साधु लोग भी एकान्त-प्रिय हैं और एकान्त-स्थानो मे रहना चाहते हैं। मगर किसलिए? इसलिए कि एकान्त मे हम स्वाध्याय और ध्यान निराकुलता पूर्वक कर सकें। एकत्व भावना भा सके और जन-सम्पर्क से होने वाले दोषो से बच सके। यदि इस भावना से आप लोग एकान्त और स्वतन्त्र बगलो मे रहना चाहते है, तब तो बहुत अच्छी बात है। परन्तु आप लोग तो ससार के सभी पचडो मे फसे रहकर भी अकेले रहना चाहते हैं, यह ठीक नही है। आप लोगो का तो मिले-हुए मकानो मे रहना ही ठीक है।

इस प्रकार जो समकिती-समकिती भाई की सेवा करता है, आपत्ति के आने पर उसकी सहायता करता है, तो यह समकिती का मोह है। आप कहेंगे कि यह मोह तो अच्छा है, इसमे क्या खराबी है? तो देखो कि खस खस के जो दाने हैं और जिनको घोट कर आप ठडाई मे पीते हैं, तो इनसे क्या किसी को नशा आता है? और इनके पीने से कोई मरता है क्या? परन्तु यह तो सोचो कि यह बीज किसका है? यह बीज है अमल का—अफीम का। अमल इन्ही से पैदा होता है। यद्यपि यह स्वय जहर नही है, तथापि जहर का बीज अवश्य है। इसी प्रकार सम्यक्त्व प्रकृति स्वय बुरी नही है, परन्तु बुराई का बीज अवश्य है। मिश्र प्रकृति और मिथ्यात्व प्रकृति तो साक्षात् ही विष तुल्य हैं, क्योकि इनसे जीव का श्रद्धान विपरीत होता है, और उसके फल स्वरूप वह ससार के दुखो को सहने के लिए विवश हो जाता है। अत इनसे बचे ही रहना चाहिए। धर्म मे भी मोह मत करो, परन्तु धर्म मे प्रेम रखो—उसके धारको मे वात्सल्य भाव रखो। यह सम्यक्त्व का गुण है।

कषाय मोह

मोहनीय कर्म का दूसरा भेद चारित्र मोह कर्म है। इसके भी दो भेद हैं—कषायमोहनीय और नोकषाय मोहनीय। कषाय मोहनीय के सोलह भेद है—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यानावरण क्रोध, माया, मान लोभ और सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। इनमे अनन्तानुबन्धी चौकडी सम्यक्त्व गुण को और स्वरूपाचरण चारित्र को प्रकट नही होने देती। अप्रत्याख्यानावरण-चौकडी देशसयम या श्रावकव्रतो को धारण नही करने देती है। प्रत्याख्यानावरण-चौकडी सकल सयम या मुनिव्रतो को धारण नही करने देती है और सज्वलन-चौकडी यथाख्यात-वीतरागचारित्र को प्राप्त नही होने देती है। नोकषाय मोहनीय के नौ भेद हैं—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुसक वेद। ये नवो ही नो कषाय जीव मे राग भाव और द्वेष भाव उत्पन्न करती हैं और निराकुलता की बाधक हैं। इस प्रकार सोलह कषाय और नौ नो कषाय इस प्रकार पच्चीस भेद चारित्र मोहनीय कर्म के है। तथा अभी पहिले बतलाये हुए दर्शन मोहनीय के तीन भेद मिलाने पर मोहनीय कर्म के अट्ठाईस भेद हो जाते हैं। जिन महापुरुषो ने इस सबसे प्रबल शत्रु और सब कर्मों के सिरताज मोहराजा को जीत लिया है, उन्होंने सारे जगत को जीत लिया। फिर उसके ऊपर किसी भी प्रकार की सासारिक गडबडी, या विघ्न-बाधा नही आ सकती है। मोह को जीतने के पश्चात् मनुष्य अन्तमुर्हूर्त मे ही शेष तीन घातिया कर्मों को जीत कर उनका क्षय करके सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग अरहन्त परमात्मा बन जाता है। और आयु के अन्त मे चारो अघाति कर्मों का क्षय करके सिद्ध पद को प्राप्त होता है।

जिन गृहस्थो ने दर्शन मोहनीय कर्म और अनन्तानुबन्धी एव अप्रत्याख्यानावरण चौकडी को भी जीता है, उन्हे देवता लोग भी अपने धर्म से नही डिगा सकते हैं, इतनी परिणामो मे स्थिरता और दृढता आ जाती है। आनन्द गाथापति, काम देव आदि श्रावको के सामने देवताओ ने उनकी स्त्री और पुत्रो के घात करने और ताडन-मारण के भी मायावी रूप दिखाये और उनकी माता

रोती हुई और यह कहती हुई कि 'बेटा, बचाओ'। फिर भी वे अपने व्रतो से डिगे नही। परन्तु उन्होंने यही कहा कि—

अरे, किसके मात-पिता सुत बंधव किसके परिवारा,
किसकी नारी किसके बच्चे झूठे ससारा
बिना मतलब सब खारा लागे मतलब से प्यारा,
ऐसे क्षणभगुर दुनिया से क्यो नहीं करते किनारा।

सब कहते है कि ये मेरे माता, पिता, स्त्री, भाई और बन्धु है। परन्तु यथार्थ मे देखा जाय, तो तेरा कौन है? क्या यहा पर कोई तेरा सगा-साथी है? यदि है तो मुझे दिखाओ। ये सारे स्वार्थ के साथी हैं। जहा पर जरा भी स्वार्थ मे कमी आती है तो फिर कोई किसी को सहारा देने वाला नही है।

स्वार्थ का खेल

एक सेठ जी की दिसावर मे अच्छी दुकान चल रही थी। उसने वहा पर खूब कमाई की। एक बार उसने सोचा कि अपने गाव तो हो आऊ? गाव से आये हुए बहुत समय बीत गया है अत अब तो सारे कुटुम्बियो से मिल तो आऊ? ऐसा विचार कर और खर्च के लिए आवश्यक रकम लेकर और घरवालो के लिए दो-तीन उत्तम आभूषण भी लेकर के वह परदेश से घर के लिये चला। कपडे साधारण ही पहिने और वेष भी वही पुराना मारवाडी। वह दिसावर मे भी अपने देश का ही वेष रखता था। आज जो लोग सिर उघाडा रखते हैं और पगडी नही बाधते हैं, वे कहते हैं कि हमे पगडीवाला देखकर के लोग लूट-खसोट लेंगे। इसलिए उन्होंने पगडी फेक दी। वे समझते है कि हमने पगडी फेक दी, तो अब हमारी पैठ जम जायगी?

एक बार एक नौ जवान आया और वन्दना की, फिर कहने लगा कि महाराज, मै बडा दुखी हू। अहमदाबाद से आ रहा था तो रास्ते मे मेरे हैंडबैग मे से किसी ने रुपयो का बटुआ निकाल लिया है। उसने यह सत्य कहा, या झूठ, यह तो वही जाने। पर उसकी लाज पगडीवालो ने रखदी और कुछ रुपया देकर उसे विदा किया। यदि बिना पगडीवाले ऐसो की सहायता करे, तो मै आपके भी गीत गादू गा। पगड़ीवाले जिस जमाने

मे थे, उस समय भी क्या आज के समान बेकारी थी ? आज तो बेकारी की चारो ओर भरमार है। किसी स्थान पर यदि एक व्यक्ति की आवश्यकता होती है तो हजारो आदमी पहुँचते हैं और कहते है कि मुझे ले लो – मुझे ले लो। भाई, यह बेकारी क्यो बढी ? क्योकि आपने देश और वेप की मर्यादा का ध्यान नही रखा। इसलिए बेकारी बढ गई।

हा, तो वह सेठ अपने गाव को चला जा रहा था। जब उसका गाव केवल तीन कोस ही रह गया और दूर से गाव दिखाई दिया तो वह मातृ भूमि के दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके आनन्द का पारावार नही रहा। किन्तु जैसे ही वह कुछ आगे बढा कि एक बब्बर शेर छलाग मारकर सामने आकर खडा हो गया। उसे देखते ही सेठ के पैरो के नीचे की जमीन ही खिसक गई। वह बडा भयभीत हुआ और सोचने लगा कि यह तो साक्षात् काल आगया है। हे भगवन्, अब मैं कैसे बचू ? यहा पर अब मुझे इससे बचाने वाला कोई नही है। केवल तू ही शरण-सहायी है। ऐसा-सोचकर उसने णमोक्कार मन्त्र का जपना शुरू कर दिया। इतने मे शेर ने उसके पास मे आकर उसे मारने के लिए अपना पजा उठाया। उसे देखते ही वह भय से विह्वल होकर भूमि पर गिर पडा। शेर ने कहा—अरे, तू रोता क्यो हैं ? तब सेठ बोला—मरते समय कौन हसता है ? शेर ने कहा—मैं तीन दिन का भूखा हूँ। यदि भूखा न होता, तो तुझे छोड देता। पर मैं भूखा हू, इसलिए खाये विना नही रहूँगा। सेठ सोचने लगा कि यह शेर मनुष्य की बोली बोल रहा है, तो इसे समझाऊ तो सही ? शायद यह मुझे छोड दे ? ऐसा विचार कर उसने कहा वनराज, केशरी, यदि तुम मुझे मारोगे तो तुम्हे चार हत्याए लगेगी। क्योकि जब मेरे मारे जाने का समाचार मेरे माता-पिता और स्त्री सुनेगे तो वे किसी भी हालत मे जीवित नही रहेगे। वे सब मेरे वियोग मे तडप-तडप करके मर जावेगे। तब सिह ने कहा—अरे पगले, वे किसी भी हालत मे नही मरेगे। जो किसी के पीछे मरते है, वे लोग और ही होते है। पर कुटुम्बी लोग तो स्वार्थी होते है, वे दूसरो के पीछे अपनी जान नही देते हैं। सेठ ने पूछा—क्या आपको इसका पक्का विश्वास

है ? शेर ने कहा—हां, मोहवश आने विश्वास है कि वे मेरे पीछे नही मरेंगे। सेठ शेर की बात सुन करके बोला एकबार मैं अपने माता-पिता और स्त्री से मिल करके इस बात की जांच करना चाहता हूं। आप इस समय मुझे छोड दीजिए। जांच करके मैं वापिस आऊंगा, तब तुम मुझे मारकर खा लेना और अपनी भूख को शान्त कर लेना। शेर ने कहा—अच्छी बात है, तू जाकर सबकी परीक्षा करले। मैं आज और भूखा रह जाऊंगा। पर तू परीक्षा करके जल्दी ही वापिस आजाना। पर देख, मेरे साथ बनिया बाजी मत करना। क्योंकि कहावत है कि 'तीसरिया और सब बीसरिया'। प्रायः सर्वत्र यही होता है कि जहा रोटी मिली कि वहां कही बात भूली। भाइयो, कोई भी काम आपके यहा होता है, तो उस समय जोश रहता है, करने की गर्मी रहती है और कहते है कि हमें यह करना मजूर है। मगर जहां जोश ठंडा पडा, तो कहने हो कि यह तो दुनिया है, ऐसा तो कहती ही रहती है। इसलिए तू सावधान रहना और आना भूलना नही। मैं औरो जैसा शेर नही हूं। मैं तेरे घर पर आ करके भी तुझे सम्भाल लूंगा। तुझे किसी प्रकार से छोडूंगा नही। सेठ ने कहा—वनराज, बनिया-बनिया मत कहो, मुझे साहूकार का लडका कहो। मैं अपने वचन को अन्यथा नही होने दूंगा। भाई, देखो उसके सामने मौत खडी है, फिर भी उसे इस बात का ख्याल है कि मैं सेठ का बेटा हूं। मैं जबान देने के बाद बदलने वाला नही हूं। तब शेर ने कहा—अच्छा, जा-चलाजा। और अपने वायदे के मुताबिक शीघ्र लौट करके आना।

अब वह सेठ शेर के पास से घर को जाते हुए मार्ग मे सोचने लगा—हे भगवान्, आज तो मैं मारा ही जाता, किन्तु तेरे नाम स्मरण से बच गया। पर अब आगे क्या होगा ? यह शेर मनुष्य की बोली मे बोला तो मुझे घर तक जाने की मोहलत मिल गई। अन्यथा अभी समाप्त हो जाता और मनके मनसूबे यही खतम हो जाते। थोडी देर मे वह घर पहुंचा और पिता को नमस्कार करके बोला—पिता जी, मैंने आपको धोखा दिया जो बिना कहे ही दिसावर चला गया। मैंने आपके हृदय को भारी आघात पहुंचाया। पिता ने

कहा— तू आगया, यही बहुत खुशी की बात है। तेरे विना तो मैं दिन-रात रोता ही रहा। लडके ने पिता से क्षमा मागी और जो अपने साथ एक लाख रुपये का कीमती कठा लाया था, वह उनके गले मे पहिना दिया। पिता ने कहा—बेटा, मेरे लिए इसकी क्या आवश्यकता थी। पिता ने जो लडके के मुख की ओर ध्यान से देखा,तो पूछा कि बेटा, तू उदासीन-सा क्यो दिख रहा है ? तेरे मन मे क्या चिन्ता है ? उसने कहा—पिताजी, आज से तीसरे दिन मेरी मौत हो जायगी, इसी से चित्त कुचित्त हो रहा है। पिता ने पूछा कि तूने कैसे जाना कि तीसरे दिन तेरी मौत हो जायगी ? लडके ने आते समय शेर के मिलने आदि का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसकी बात को सुनकर बाप बोला—अरे, तू तो महाजन का बेटा है। फिर भी तू कहता है कि वह मार खायेगा। वह अब यहा थोडे ही आ सकता है ? तव लडके ने कहा—पिताजी, मैं महाजन का बेटा हू। और जब मैंने शेर को वचन दिया है, तव मुझे वहा पहुचना ही पडेगा। यह सुनकर बाप बोला—अरे, गाडी का पहिया और महाजन की जबान तो बदलती-फिरती ही रहती है। लडका बोला—पिताजी, मैं महाजन और साहूकार का बेटा हू, अत दिये हुए वचन से मैं विमुख नही हो सकता हू। मुझे मरने की जितनी चिन्ता नही है, जितनी कि अपने दिये हुए वचन की चिन्ता है। यदि आपको मेरे मारे जाने की चिन्ता है और मेरे वचन को रखना है तो मेरे बदले आप शेर के पास जा सकते हैं। उसने कहा —

आप पधारो मेरी खातिर, एहसान आपका मानूंगा।
सच कहता हू ईश्वर तुल्य ही सदा आपको जानूंगा ॥

पिताजी, यदि आप मेरी खातिर मेरे प्राण बचाने के लिए पधार जायेगे तो मैं जीवन भर आपका एहसान मानूगा। मैं ईश्वर के समान आपके नाम की सदा माला फेरूंगा। आपके फूलो को गगाजी मे विसर्जित करूगा और चौरासी सारी कर दूगा। अतएव मेरे प्राण बचाने के लिए आप शेर के पास पधारे और एक मनुष्य की जीवन-रक्षा का अक्षय पुण्य उपार्जन करे। इतना सुनते ही पिता ने कहा—अरे, नालायक, क्या कहता

है ? तेरी मौत के बदले मैं मरूं ? क्या दुनिया मे मेरा ही अनूठा लडका मर रहा है ? सैकडो के प्रतिदिन मरते है, तो क्या उनके पीछे उनके बाप मरते है ? तू यह कंठा पहिना कर मुझे शेर के मुह मे भेजकर मरवाना चाहता है ? यह ले अपना कंठा। मुझे इसकी दरकार नही है। यह कहकर उसने कंठा गले से निकाल कर उसके आगे फेंक दिया।

अब लडका वहां से उठकर मां के पास गया और उनके चरण-वन्दन करके दोनो हाथो की जडाऊँ पोंचिए देते हुए कहा—मां सा० इन्हे पहनिये, मैं आपके लिए लाया हू। मा बोली- बेटा बुढापे मे ये मुझे क्या शोभा देगी। इन्हे लेजाकर अपनी बीदणी को देदे। लडका बोला– नही मां सा०, ये तो मैं तेरे ही लिए खास कर बनवा के लाया हू। ये तो तुम्हे ही पहिनना पडेगी। मां हर्षित होती हुई बोली—बेटा, तू बडा होशियार है। तू मेरे एक ही है, परन्तु लाखो से बढकर है। पर यह तो बता कि तेरा चेहरा उदास सा क्यो दिख रहा है ? तब उसने रास्ते के सर्व वृत्तान्त को सुनाकर कहा कि मुझे शेर के मुख मे वापिस जाना है, इसलिए उदास दिख रहा हू। मा बोली बेटा, यह तो तूने बहुत खोटी खबर सुनाई। पर यह तो बता कि क्या किसी प्रकार यह आपत्ति टाली जा सकती है ? तब लडका बोला—

'थे तो मोटा हो माजी सा म्हारेरा आप थानै किण विध वीसरू ?
मै तो जपू सदा तुम जाप उरिण म्हो कैसे रहूँ ?

अरे मा सा० आप तो बडी हो, आपके मेरे पर बहुत उपकार है। अब आपका ही भरोसा है। पिताजी ने तो ऊपरी परवरिश ही की है। परन्तु आपने तो मुझे जन्म दिया है। आपकी गोद भी हरी-भरी है और सिर भी हरा-भरा है। इसलिए इतना रहम आप ही ले लेवें कि मेरे बदले आप सिंह के पास चली जावे तो मैं बच सकता हू। यह सुनते ही वह डोकरी चिल्लाई और बोली—अरे कपूत, मैंने तुझे जन्म दिया और तू ही मुझसे कहता है कि तू जाकर मर जा। अरे दुष्ट, तू जब मरना था तो आज मर जा। पर मैं तेरे पीछे अपने प्राण नही दे सकती हू। यह कहकर उसने वे दोनो पोंचिया उनके

सामने फेंक दी। तब लडके ने कहा—मा सा०, नाराज मत हो, आपने पूछा, तब मैंने कहा। मैं तो सिंह को वचन देकर आया हू, सो मैं तो जाऊगा ही। परन्तु आप गालिया देकर क्यो अपनी हँसी कराती हैं।

अब वह मा के पास से उठा और सोचना लगा कि वाह रे शेर, तूने बात तो ठीक ही कही है। मुझे अभी तक यह पता नही था कि दुनिया की रगत क्या है ? मैं तो अभी तक बिलकुल भोला ही बना रहा। माँ और बाप का काम तो मेरे बिना क्या अटका है, जो वे मेरे लिए अपने प्राण देवे। परन्तु औरत के तो अटके है। वह तो अवश्य ही मेरी बाजी रखेंगी। उसने रात मे स्त्री के पास जाकर कहने का निश्चय किया।

रंग महल मे मालिया, आल्या वचन अनूप।

तू रक्षा कर मोहरी, पतिव्रता सदरूप।

अब वह रात को रगमहल मे गया। उसकी स्त्री सोलह शृगार किये हुए बैठी थी। अपने पति का इन्तजार कर रही थी। पति के वहा पहुचते ही वह उठ खडी हुई और इसके पैर पडे। उसने उसे हृदय से लगाकर उसके गले मे वह लक्खी हार पहिना दिया और दोनो हाथो मे वे दोनो पोचियाँ भी पहिना दी। तथा स्त्री के लिए खासबारके जो हीरे की अगूठी लाया था वह भी हाथ की अगुली मे पहिना दी। स्त्री आनन्द से गद्‌गद हो गई। आभूषणो मे जडे रत्नो से अन्धेरे मे प्रकाश जगमगा उठा। हर्षित होकर वह बोली—पति हो तो ऐसा हो।

भाइयो ये सब पैसे पर प्रसन्नता प्रकट करने वाले हैं। एक गरीब बेचारा दिन भर मे पाच कोस का चक्कर काट कर और मन भर का बोझा लाद कर हाफता हुआ घर आता है और पसीना सुखाता हुआ पीने को पानी मागता है तो स्त्री पानी की भरी चरी लेकर सामने पटकती है। और कहती है कि तुम्हारे जैसे अभागियो के पल्ले बधी तो न कभी अच्छा खाया, न पिया और न कभी कोई गहना पहिना न अच्छे कपड़े ही पहिनने को मिले। कहा है—

यदि पुण्यवानी पोते होवें तो वह दिसावर जावे और चचलापरी लेकर

देने वाली माता ने भी छेह (किनारा) दे दिया है। अब केवल तेरा ही विश्वास है। स्त्री बोली—आप ऐसी क्या बातें कर रहे हैं ? जो बात हो, वह साफ-साफ कहिये न ? पति बोला—यदि तू करने की कहे, तो कहू ? तब स्त्री बोली—मेरे स्वामी, मेरे राजा कहे और मैं नही करू, यह कभी हो सकता है ? स्त्री की ऐसी दृढतापूर्वक कही बात को सुनकर उसने जाते समय सिह के मिलने और उसे वचन देने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसने कहा कि मैं वचन देकर आया हू, तब उसने मुझे छोडा है। कल ही मुझे उसके पास वापिस जाना पडेगा। धणी की बात सुनकर स्त्री बोली—आपने महान्-बुद्धि का उपयोग नही किया ! आप इधर-उधर बहुत फिरे, किन्तु महाजनी कला नही सीख पाये। अब बताओ कि, मुझे क्या करना है ! तब उसने कहा—बस इतनी सी बात है कि मेरे बदले यदि तू शेर के पास चली जाय तो मेरे प्राण बच सकते है। तेरा नाम भी सतियो की गिनती मे हो जायगा और तू सदा के लिए यशस्विनी हो जायगी। लोग भी धन्य धन्य कहते हुए तेरे गुणो को गायेंगे। तेरी चूंदडी और चूडा अमर हो जायगा। पति के ये वचन सुनते ही उसने कहा—पति देव, रहने दो। मैं सब समझ गई ? मैंने अ.पके लक्षण देख लिये। मैं समझ गई हू कि आपने दिसावर मे दूसरा विवाह कर लिया है और उसके ऊपर अब आप का मोह हो गया है, इसलिए मुझे अपने रास्ते मे काटा समझ कर मुझे शेर के पास भेजकर मार देना चाहते हैं। परन्तु, आप किस ख्याल मे हैं। मैं ही राड नही होऊगी। दुनिया मे प्रतिदिन सैकडो राडे होती हैं और सभी के दिन निकल ही जाते हैं, मेरे भी निकल जायेगे। स्त्री के ये वचन सुनने पर उसके धनी ने कहा भली आदमिन, यह क्या कह रही है ? उसके इतना कहते ही स्त्री ने हार, पोचिये और अगूठी उतार करके धणी के आगे फेक दी और बोली—रखो ये अपने पास। मैं मरने को नही जा सकती हू। स्त्री के ये वचन सुनते ही वह वहा से निकल गया। बाहिर जाकर वह सोचने लगा—अहो, आज तक मैं बहुत बडे भ्रम मे था। सिह ने सच कहा था कि कोई तेरा नही है। इतने मे ही मित्र-मडली आ गई है। उसने पूछा -भाई साहब, कहा जा रहे हो। उसने सिह के मिलने से लेकर

माता, पिता और स्त्री का सब हाल मित्रों को सुना दिया और कहा कि अब मैं अपना वचनपालन करने के लिए सिंह के पास वापिस जा रहा हूँ। यदि आप लोगों का मेरे से स्नेह हो और बचाना चाहो तो कोई एकाद मेरे बदले को चला जावे। उनकी यह बात सुनते ही सब मित्र इधर-उधर चुपचाप खिसक गये। दुनिया का ढंग उसने अच्छी तरह देख लिया तो मन मे कहने लगा—

> शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एकहि तेते।
> पितु, मात, दार नहीं सीरी, सब स्वारथ के हैं सीरी॥

भाइयो, संसार के जीवों को जब तक विवेक प्रकट नहीं होता है, तभी तक वे मोह के प्रपंच में पड़े रहते हैं। किन्तु जब किसी सुयोग से आत्मा मे विवेक प्रकट होता है, तब उस मोह के टूटते भी देर नहीं लगती। यदि उस व्यक्ति के साथ उसके माता, पिता और स्त्री का मोह होता तो प्रभु के लिए पहिले मरे हैं और आज भी मरते हैं। परन्तु ऐसे मरने वाले भी लाखों-करोड़ों में दो चार ही निकलते हैं। अन्यथा संसार में सभी अपने-अपने स्वार्थ के सगे हैं, कोई किसी का सीरी नहीं है।

अपना बलिदान कौन करे ?

जोधपुर के पहिले वाले महाराज जसवन्त सिंह जी शहर में गश्त लगाने के लिए निकले। कोई देख न लेवे, इस विचार से वे बावड़ी में घुस गये। उसमें एक राक्षस रहता था। वह उनके शरीर में घुस गया। जब वे दूसरे दिन सवेरे महल में नहीं पहुंचे, तब उनकी तलाश कराई गई। बहुत खोज करने पर भी नहीं मिले। जब औरतें पानी भरने को बावड़ी पर गईं, तब बावड़ी के भीतर महाराज को देख कर दंग रह गईं और कहने लगीं कि दरबार तो राक्षस हो गये। राजमन्त्रियों तक खबर पहुंची। वे लोग मंत्र-वादियों को लेकर वहां पहुंचे। उस समय वहां पर धानचन्द जी गुरां के दादा गुरु थे, उनको भी बुलाया गया। आते ही उन्होंने मंत्र पढ़ना शुरू किया तो वह राक्षस बोला—अरे जतीड़ा, क्या मंत्र पढ़ता है? यदि तू मर भी जाय तो भी मैं इनके शरीर से नहीं निकलूंगा। मैं इनके प्राण लिये

बिना निकलने वाला नही हूँ। जतीजी ने देखा कि यह राक्षस है तो मजबूत। तब जतीजी भी अपनी मजबूती करने लगे। अपनी पूरी मजबूती करके उन्होने कहा—आप ब्रह्म राक्षस कहलाते हो ? पर तुम यह तो विचार करो कि ये नव कोटी लोगो के महाराज हैं। इसलिए आप इनकी जान बख्श देवें। तब राक्षस बोला--हा, एक इस शर्त पर की कि यदि इनके बदले कोई दूसरा प्राण देने वाला हो तो मैं उसके शरीर मे घुस जाऊगा। परन्तु इनके रिश्ते-दारो मे से कोई अपनी इच्छा से प्राण देने वाला हो। भाई, अब कौन जावे मौत के मुख मे। परन्तु कोई न कोई माई का लाल निकल ही आता है। उस समय आसोप के ठाकुर रायसिह जी ने कहा—कि छोड दो हमारे महाराज को और मेरे शरीर मे घुस जाओ। बस, उनके कहते ही वह राक्षस महाराज जसवन्तसिह जी के शरीर मे से निकल कर तत्काल इनके शरीर मे घुस गया। आज भी रायसिह जी का महल मौजूद है। जिसके टट्टी-पेशाब बन्द हो गये हो, उसके वहाँ जाते ही टट्टी-पेशाब चालू हो जाते है। भाई, बात यह है कि दूसरो के लिए प्राण देना तभी सभव हो सकता है जबकि उसके साथ असली प्रेम हो। दुनिया के खुदगर्ज लोग जो मोह के वशीभूत हैं और मतलब के यार है, उनसे नही दिया जा सकता।

हा, तो वह लडका गाव से बाहिर निकला और वन मे पहुंचा। वहा जाकर देखता है कि सिह तैयार बैठा है। इसे देखते ही सिह ने पूछा—अरे तू आ गया है। उसने कहा—हा वनराज, मैं आ गया, आ गया हू। सिह ने पहिले तो कहा—तू जबान का पक्का निकला है। अब यह बता कि मैंने जो बात कही थी, वह सच निकली,या नही ? इसने कहा—हा वनराज,आपने जो कहा था वह शत-प्रतिशत सच निकला। मेरा भ्रम दूर हो गया। मेरे माता, पिता, स्त्री और मित्र मडली मे से कोई भी मेरे बदले मे मरने को तैयार नही है। तब सिह बोला—हे भोले, अब तू मरने को तैयार हो जा। उसने कहा—मैं मरने का बिलकुल तैयार हू। सिह बोला—अरे, भगवान् का नाम स्मरण कर लिया। वह बोला—हा भगवान् का नाम स्मरण कर और प्रत्याख्यान करके ही आया हूँ। तब सिह बोला—अच्छा, आखें बन्द कर ले। उसने आखे बन्द करली। तब सिह ने कहा —यदि

तू संयम धारण करना स्वीकार करे तो मैं तुझे नहीं मारूंगा। तब उसने कहा — वनराज, आपका प्रस्ताव मुझे स्वीकार है। सिंह ने पूछा कि किस मन, या डर से इसे स्वीकार कर रहा है। तब उसने कहा कि रास्ते में आते हुए मैंने निश्चय किया था कि यदि कदाचित् किसी प्रकार मेरे प्राण बच जायेंगे तो मैं संयम को धारण करूंगा। परन्तु मुझे एक बात का बड़ा आश्चर्य है कि आप जानवर होकर मनुष्य की बोली में बोल कैसे रहे हैं? तब सिंह ने कहा — मैं सिंह नहीं हूं, किन्तु पूर्व भव का तेरा मित्र हूं। तू मोह में अन्धा बना हुआ था। तुझे दो-एक बार पहिले सचेत किया, पर तू नहीं समझा। अब तुझे सचेत करने के लिए ही मैंने सिंह का रूप बनाया है। अब तू ठिकाने आ गया है। यह कहकर उसने अपना देव स्वरूप प्रकट कर दिया। इस प्रकार उसका मोह देव के योग से दूर हो गया। उसने उसी समय पंच परमेष्ठी व गुरु की परोक्ष वन्दना करके केश लोच किया और स्वयं ही पंच महाव्रत धारण कर लिये। देव ने तत्काल साधु वेष के उचित वस्त्र और पात्र आदि दे दिये। वह इस प्रकार संयम धारण करके उनके उसी नगर के बगीचे में आकर ठहर गया। जैसे ही यह समाचार नगर में पहुंचा तो नगर-निवासी उनके दर्शन-वन्दन करने के लिए बगीचे में आये। उनका नाम यशोभद्र था। अब लोगों ने नगर में समाचार दिया। उनके मां, बाप भी आये और स्त्री भी आई। साधु महाराज ने सबको संसार का स्वरूप बतलाते हुए धर्म-साधन करने का उपदेश दिया।

संसारेऽस्मिन् दुरन्ते दुःखमयदे सारं नृजन्म क्वचि-
त्तत्रापि कल्पतरूपमं हि यदि चेत्तत् प्राप्य देशं कुलम्।
आरोग्यं सकलेन्द्रियं च सुगुरुं ज्ञानं विवेकं तदा,
संसाराम्बुधितारके सुखप्रदे धर्मे प्रमादं वृथा ॥

श्लोक का अर्थ — इस अनन्त दुरन्त दुःख और भय देने वाले संसार में यह कल्पवृक्ष के समान सारभूत मनुष्य जन्म, उत्तम देश, उत्तम कुल, आरोग्य, सकल इन्द्रियों की परिपूर्णता, सुगुरु, ज्ञान और विवेक तुम्हें हे प्राणियो, यदि भाग्य से प्राप्त हो गया, तो इसे व्यर्थ मत खोओ। किन्तु ..

सागर से पार करने वाले सुखकारक इस सयम धर्म के धारण करने मे प्रयत्न करो।

अब बाप सामने आकर कहता है—आपने यह क्या किया ? मेरा घर ऊजड कर दिया। तब इसने कहा—मैंने क्या किया ? आपने ही तो किया है। अब इस विषय मे आपको बोलने का कोई अधिकार नही है। माता और स्त्री भी इन्हें देखकर अपना माथा कूट कर रह गई। भाइयो, स्वार्थियो मे भी क्या प्राण दिये जा सकते है।

तत्पश्चात् ग्रामानुग्राम विचरते हुए उन मुनिराज ने शुद्ध रीति से सयम पाला और कठोर तपश्चरण किया। जिसके प्रताप से वे कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त हुये।

भाइयो, इस मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम की है। समता को जीतने वाले ही इसे ठिकाने लगा सकते हैं। यदि आपके भाव मोह को जीतने के है, तो ममता को छोडो और समता को धारण करो।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला १

जोधपुर

●●

५ | आशा, जीवन की डोर

सिरि रिसहनाह तुह पय नहकंतीओ जयंतु तिजयस्स ।
जंतीओ पज्जपंजरभाव माभारि भीयस्स ॥

बुद्धिमान् सद्-गृहस्थो हम आशावादी हैं और समस्त संसार के प्राणी आशा पर ही जीवित हैं। भविष्य में क्या होने वाला है, यह पता तो सर्वज्ञ को ही है। परन्तु यदि हम उद्योगी हैं, उद्यमी हैं और ठीक रीति से कार्य करते हैं तो हमें उसका फल अवश्य ही अच्छा मिलेगा।

आशा क्या है?

'आशा' नाम की निरुक्ति करते हुए वाचस्पत्य कोष में लिखा है—'आ समन्तात् अश्नुते इत्याशा। अशक्योपायार्थं विषयाणां तीव्राकाङ्क्षायाम्। अप्राप्तप्राप्तीच्छायां, तृष्णायां च'

अर्थात्—अलभ्य पदार्थ के पाने की तीव्र आकांक्षा में, अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा में और तृष्णा में आशा शब्द का व्यवहार होता है। इसके पश्चात् आशा के दिशा आदि अनेक अर्थों को बतलाते हुए लिखा है कि—

'स य आशां ब्रह्मेत्युपास्ते आशयाऽस्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा

—छां० उप० व्याख्यान ५।

अर्थात् आशा नाम ब्रह्मशक्ति का भी है। जो उस ब्रह्मशक्ति की उपासना करता है उसके सभी मनोरथ भली-भाति सम्पन्न होते है।

इस प्रकार आशा के दो अर्थ फलित होते है—एक तो सासारिक पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा तृष्णा, या तीव्र आकाक्षा का नाम आशा है और दूसरा अर्थ—ब्रह्मशक्ति का नाम आशा है। इनमे से सासारिक पदार्थों को पाने की तृष्णा रूप आशा बुरी है, क्योकि वह जगज्जजाल मे उलझाने वाली है, सुलझाने वाली नही है।

आशा की दासता

आशा—तृष्णा करने वाले की और उमसे रहित व्यक्ति की मनोदशा का वर्णन करते हुए एक कवि कहता हैं कि—

'आशाया ये दासास्ते दासा सर्व लोकस्य।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः॥

अर्थात् जो आशा-तृष्णा के दास हैं, वे सारे लोक के दास है। किन्तु जिन पुरुषो ने आशा को अपनी दासी बना लिया—अपने अधीन कर लिया, उनका सारा ससार दास बन जाता है। इसी भाव को प्रकट करते हुए आचार्य सकलकीर्त्ति कहते हैं—

आशा दुर्गतिदापनैक चतुरां स्वर्लोक मोक्षार्गला,
पापद्वेष कुशोक रोग भयदां सम्मानविध्वसिकाम्।
लोके सद्धनभक्षणैक कुशलां सद्धर्मनिर्नाशिका,
भ्रातस्त्व त्यज सर्पिणीमिव चलां स्वर्मुक्ति सम्प्राप्तये॥

अर्थात्—सासारिक पदार्थों को पाने की यह आशा-तृष्णा दुर्गतियों को देने मे चतुर है, स्वर्ग और मोक्ष के द्वारो को बन्द करने वाली दृढ अर्गला (साँकल) हैं, पाप, द्वेष, चिन्ता, शोक, रोग और भय को देने वाली है, ससार मे सन्मान का विध्वस करने वाली है, सच्चे आत्म-धन को भक्षण करने मे अतीव कुशल है और सद्धर्म को नाश करने वाली है, ऐसी नागिनी के समान आशा को हे भाई, तुम स्वर्ग और मुक्ति की प्राप्ति के लिए छोडो।

आगे वे और भी कहते हैं कि—

मन्ये स एव पुण्यात्मा यस्याशा निधनं गता।

इहामुत्र च निःसङ्गः इन्द्रचक्रधरैः स्तुतः॥

अर्थात्—मैं उसी को पुण्यात्मा मानता हूँ कि जिस व्यक्ति की आशा मरण को प्राप्त हो गई है। आशा के संग से रहित पुरुष इन्द्र और चक्रवर्ती जैसे पुरुषों से पूजा जाता है। इसी भाव को लक्ष्य में रख कर ही कहा गया है कि—

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।

अर्थात् आशा परम दुःख है और निराशा परम सुख है।

इस प्रकार सांसारिक भोगों को पाने की आशा-तृष्णा तो परम दुःख-दायिनी है और उसका परित्याग कर परम ब्रह्म की, शुद्ध आत्मा की अनन्त शक्ति रूप आशा परम सुख को देने वाली है। आज मैं इसी सच्ची आशा के विषय में कह रहा हूँ कि यदि हमारी भावना श्रेष्ठ है, सांसारिक स्वार्थ-साधन की नहीं, किन्तु परमार्थ साधन की है, जगत के उद्धार की है, तो हमें उसका अवश्य ही फल मिलेगा। आशा से हमारा अभिप्राय उत्तम कार्य के लिए उद्योग—उद्यम करने से, उत्साह बनाये रखने से और पुरुषार्थ में तत्पर रहने से है।

ध्येय प्राप्ति की अभिलाषा-आशा

किसी भाई ने आम के वृक्ष का बीज भूमि में डाला—गुठली को बो दिया। अब क्या उसके बोते ही फल लग जायगा? क्या आज ही आम का वृक्ष फलों से लदा हुआ खड़ा हो जायगा? नहीं। उस व्यक्ति को आम का फल पाने के लिए समय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। सबसे पहिले तो उसके पौधे को सींचेगा, उसका संरक्षण करेगा, कीड़े और प्रतिकूल वातावरण आदि से बचायेगा। फिर कहीं चार-चार वर्ष तक इसी आशा पर आश्रित रहने के पश्चात् उसको उसके मीठे और रसीले आम-फलों की प्राप्ति होगी। भाई, इतनी प्रतीक्षा के पश्चात् वह बीज फल देने के योग्य होता है। आज जो बीज भूमि में बोया हो, उसका चार दिन के बाद अंकुर सामने आता है।

आज आपने कुआ खोदना प्रारम्भ किया तो दो-तीन मास के पश्चात् वह पानी पीने के योग्य बनता है। अभी चक्की से गेहू पिसवाकर मगवाया तो क्या आटा आते ही रोटी हाथ मे आ जाती है ? नही। मकान के बनवाने मे भी देरी लगती है। और इसी प्रकार अन्य कार्यों मे भी देरी लगती है और समय की प्रतीक्षा करनी पडती है। भाई, इन सासारिक कार्यों मे भी आशा-निहित है। इसीलिए कहा गया है कि आशा अमर धन है।

आशा जीवन की डोर

भाई, प्रत्येक प्राणी का जीवन आशा की डोरी पर चलता है। एक कवि ने कहा है कि भगवन्, मेरे जितने दुष्कर्म है, उनका फल मुझे ब-खुशी मिले। चूँकि मैंने पाप किये हैं तो उनका फल तो मुझे मिलेगा ही और मुझे सहर्ष भोगना भी चाहिए। परन्तु मुझे ऐसा फल नही मिलना चाहिए कि जिससे मेरी आशा का ही भग हो जाय। आशा समाप्त न हो। मुझे आशावादी बनाये रखना। आशा के भग हो जाने पर मनुष्य को दिन बिताना कठिन हो जाता है। इसलिए हे प्रभो, मुझे आशा को सबल बनाने की प्रेरणा दो, आशा को पल्लवित और वृद्धि गत होने का अवसर दो। परन्तु किसी की आशा पर तुषारापात करना और कुठाराघात करना यह ठीक नही है।

आज हम धर्म ध्यान कर रहे है, पर्युषण पर्व के दिन चल रहे हैं, जैनधर्मावलम्बी प्रत्येक मानव के मानस मे धर्म-साधना करने की भावना प्रस्फुटित हो रही है, और प्रत्येक भाई अपनी शक्ति के अनुसार अपने अनुकूल वातावरण मे नवकारसी, पौरुषी, एकासन, आयम्बिल, नीवी और उपवास आदि व्रत-प्रत्याख्यान करता है। यदि किसी की विशेष अन्तराय टूटी हो तो वह लम्बी तपस्या भी करता है। यदि किसी की तपस्या करने की शक्ति नही है तो वह व्याख्यान ही सुनता है और साधु-सन्तो एव साधर्मी भाइयो की सेवा ही करता है। जिसके पास धन है, वह धन के द्वारा ही लाभ लेता है। परन्तु इन सब कार्यों के पीछे सब को आशा है। वह आशा क्या है ? यही कि हम अपने जीवन को पवित्र बनायें, आत्मा को कर्म-रोग से निरोग करें। जैसे शरीर को निरोग बनाने के लिए एक ही दवा तो नही है, अनेक

इलाज हैं और देने के तरीके भी अनेक प्रकार के हैं। अब जिस व्यक्ति की प्रकृति के साथ जिस औषधि या उपचार मिल जाता है, वह व्यक्ति शीघ्र स्वस्थ एवं निरोग हो जाता है। परन्तु रोगी किसी भयंकर रोग से ग्रस्त है और आप सोचें कि क्या डाक्टर को लायें, क्यों वैद्य को दिखायें क्यों दवा-दारू में इतना रुपया खर्च करें, क्योंकि यह तो मरने ही वाला है, तो क्या यह आपकी समझदारी कहलायेगी ? नहीं। क्योंकि कहावत है कि जब तक श्वासा, तब तक आशा। भले ही डाक्टर-वैद्यों ने कह दिया हो कि अब यह नहीं बच सकता है फिर भी सब कोशिश तो यही करते हैं कि शायद दवा लग जाय और यह अच्छा हो जाय। पर दवा लगती है उसी हालत में जबकि उसका आयुष्य बाकी हो, बलवान् हो।

ब्यावर में बाबू पन्नालाल जी जैनी वकील थे। वे एक बार इतने अधिक बीमार हुए कि ब्यावर और अजमेर के डाक्टरों ने कह दिया कि इसे अस्पताल से घर ले जाओ—अब ये बच नहीं सकते हैं। इनका घर पहुँचना भी मुश्किल है। पर लोग उन्हें अस्पताल से घर ले आये। उनके मित्रों ने उनके बड़े भाई से कहा—कैसे भी हो जयपुर इन्हें ले चलना चाहिए और वहां जो रिटायर्ड जर्मन डाक्टर है, उसे एक बार दिखाना चाहिए। यदि आयुष्य होगा तो दवा कारगर हो जायगी और ये बच जायेंगे। अन्यथा जो यहां होना है, वह वहीं भी हो जायगा। ऐसा निश्चय करके उनका बड़ा भाई डाक्टर और मित्रों को साथ लेकर कार-द्वारा जयपुर गये। जर्मन डाक्टर को दिखाया और उसका इलाज चालू किया। वे कुछ दिनों में बिल्कुल निरोग होकर घर आये और यहां के डाक्टरों से मिले—तो वे लोग इन्हें देखकर आश्चर्य से चकित होकर बोले—अरे, आप कैसे बच गये। हम लोग तो समझते थे कि तुम उस दिन घर तक भी जीवित नहीं पहुँच पाओगे। भाई, ऐसी एक नहीं अनेक घटनाएँ होती हैं। वे स्वस्थ होने के बाद कई वर्ष जीवित रहे। यह सब क्या हुआ, जबकि उनका आयुष्य शेष था और भाग्य प्रबल था। इसलिए हमको मरते दम तक भी बीमार की दवा दारू और परिचर्या करते रहना चाहिए। क्योंकि हम नहीं जानते हैं कि इसका आयुष्य शेष है, या

समाप्त हो रहा है। वे ही वकील साहब जब आयुष्य समाप्त होने को आया तो अभी पिछले दिनो प्रात.काल उठे और अपनी पत्नी से बोले—पैरो मे कुछ दर्द सा मालूम होता है। पत्नी जैसे ही उनके पेर सहलाने को हुई कि उनके प्राण-पखेरू उड गये। इनके यह जीवन की ये दोनो घटनाए कालमृत्यु और अकाल-मृत्यु का खुलासा रूप प्रकट करती है कि यदि पहिलीबार डाक्टरो के कहने पर हताश होकर इलाज कराने जयपुर न जाते और उनकी मृत्यु हो जाती, तो वह अकालमृत्यु कही जाती। और पीछे जो मृत्यु हुई है, वह तो कालमृत्यु है ही। इसलिए किसी के असाध्य बीमार होने पर भी ऐसा कभी मत कहो कि इसे दवा देना बेकार है। ऐसा कहना ही गलत है। आशा बहुत बडी वस्तु है। आशा के ऊपर ही स्त्री अपने बच्चे को देखते ही प्रसन्न होती है कि मेरे घर का दीपक आगया। हालाकि अभी वह जन्मा ही है और जरासी प्रतिकूल हवा के लगते ही उसकी ज्योति बुझ सकती है। परन्तु आशा बडी बलवती है और उसके ऊपर ही वह अनेक आपत्तियो और बीमारियो से बचाती हुई वह अपने लाल को पालती है और वह एक दिन उसे बडा देखकर निहाल हो जाती है, तब कही जाकर वह घर का दीपक कहलाता है।

भाइयो, इतना विवेचन करने के पश्चात् अब तो आप लोग यह जान ही गये कि आशा ही सब कार्यों मे प्रधान है। अपनी भी आशा यही है कि हमे वीतराग जिनेन्द्र देवता प्ररूपित यह परम पवित्र जैन धर्म मिला है और उनकी पवित्र वाणी को सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ है, तो भले ही कैसे क्यो न हो, परन्तु इतना तो निश्चित समझे कि हमारी पुण्यवानी जबर्दस्त है। इसीसे हमे वह समय प्राप्त हुआ है। अब हम यदि अच्छी करनी करेंगे, व्रत, नियम, जप, तप करेंगे और धर्म पर दृढ श्रद्धा रखेंगे तो एक न एक दिन संसार-सागर से अवश्य ही पार हो जावेंगे।

हम कहते हैं कि भाई, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष और मोह आदि को छोड दो, तो क्या दुनिया एक दम से छोड देती है? नही छोडती है। अब आप कहे कि महाराज, फिर आप उपदेश क्यो देते हो? जबकि

बन्द करो। यदि आपको किसी से ईर्ष्या है तो मन मे यही भावना रहती है कि यह इससे क्यो बोलता है । परन्तु भाई, आप अपनी ईर्ष्या को अपने ही पास रहने दो। यदि कोई समाज मे नवीनता लाने की—नया काम करने की प्रेरणा देता है तो उसको करने दो, उसे प्रेरणा देने दो । हा, यह बात अवश्य है कि कार्यकर्ताओ को दूरदर्शी होना चाहिए। और कार्य भी दूरदर्शिता के साथ करना चाहिए । फिर प्रारम्भ किये कार्य मे सफलता अवश्य ही मिलेगी।

हम एक बार देवगढ पहुचे । देवगढ मदारिया परगना दो सौ दस गावो का है । मेरे पास वहा के राव और उनके कामदार आये और उनके आग्रह-पूर्वक विनती करने पर हम वहाँ गये। वहा पर लोगो ने अर्ज की—महाराज! अपनी जाति मे सुधार होना चाहिए। मैंने भी कहा कि आपका प्रस्ताव उचित है और समय को देखते हुए जाति मे सुधार होने की नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती है । तब कितने ही लोगो ने कहा—महाराज सा०, आप भी क्या बात कर रहे हैं ? यह मतीरो (तरबूजो) का भार उठाना कठिन है । मैंने कहा—भाई, मैं जब आपसे सलाह लू, तब आप सलाह देना । मेरा तो अच्छे कार्य मे योगदान देने का काम है। अब सफलता चार आना, आठ आना या सोलह आना मिलती है, यह भविष्य के गर्भ मे है। परन्तु मैं इन छोटे विचारो को सुनकर और आपकी निराशा भरी—बातो से कभी भी कार्य को छोडने वाला नही हू। अब क्या था, सब जगह के मुखिया इकट्ठे हो गये । उन दोसौ दस गाव मे चार गाव ताकत वाले थे और वे ही गाव प्रमुख थे । जब कभी न्यात-बिरादरी मे काम होता है, तब चारो गावो के प्रमुख लोगो का दस्तखती परवाना जाता है और सब लोग इकट्ठे हो जाते है । पहिले चारो गावो के मुखिया भाइयो को बुलावा गया। चार बजते-बजते चारो गावो के आठ-आठ प्रमुख व्यक्ति आ गये। कुल बत्तीस आदमी आये और उन्होने आपस मे सलाह की। फिर उन्होने मेरे पास आकर कहा—गुरुदेव, यदि आपकी राय हो तो आने वाली पौषवदी तेरस के दिन सभी गावो के लोगों को बुला लिया जाय ? आखिर परवाने

महाराज सा० की प्रेरणा बडी जोरो से होती है। परन्तु पीछे वे ही लोग कहने लगे कि चौमासा अच्छा हुआ और यश मिल गया। पहिले कहते थे कि 'सिंह-सभा' करके यहा का यश गवाना है क्या ? परन्तु मैंने कहा कि जिसको गवाना होगा, वह गवाएगा। मेरी तो भावना वढाने की थी तो वावन गाव वाले इकट्ठे हुए। और जिसकी आशा भी नही थी तो वीटी जैसी चीज को भी लोगो ने ठोकर मार दी और फौरन वह काम हो गया। भाई, हम तो काम करते रहे और आगे बढते रहे। जब आगे बढते हैं तब उसमें झोके और झगडे तो आते ही हैं। मगर उनसे हमे जूझना चाहिए, हताश होकर पीछे नही हटना चाहिए, वल्कि हिम्मत और पूर्ण आशा और विश्वास के साथ आगे बढते रहना चाहिए। आज जैसी भावना है, फिर क्या वही भावना बनी रहती है ? अरे, एक घडी के भीतर ही भावना बदल सकती है। इसलिए जिस समय जो भावना अच्छे काम करने की हो, वह काम तुरन्त कर लेना चाहिए। क्योकि कहावत है कि 'Strike while the iron is hot' अर्थात् जब लोहा गर्म हो, तब उस पर चोट देकर तुम कुछ भी बना सकते हो। ठडा होने के पश्चात् कुछ भी नही बन सकेगा। इसीलिए समझदार लोग सदा सावधान रहते हुए समय की प्रतीक्षा करते हैं और अवसर पाते ही तुरन्त काम कर लेते है।

अभी आप इतने लोग बैठे हुए हैं और कोई कहे कि महाराज साहब, आप क्यो व्यर्थ मे इतनी माथा पच्ची करते है। क्या कोई दीक्षा लेने वाला है ? परन्तु भाई, क्या मालूम है कि कल किसके भाव दीक्षा लेने के हो जाये। जोधपुर मे बाहिर से आकर किसी ने दुकान खोली। अब कोई सोचे कि इसको माल कौन देगा और यह यहा क्या कमायगा ? इसे कह दो कि अपने घर चला जाय और चुपचाप बैठ जाय। परन्तु जब वह हिम्मत करके बैठता है तो माल देने वाले साहूकार और माल लेने वाले ग्राहक मिल ही जाते है। जितने भी दुकानदार हैं, वे सब पहिले से ही लखपति और करोडपति नही थे। परन्तु हिम्मत के साथ आशा के भरोसे कार्य करते करते आज लखपति और करोड़पति बन गये।

गये हो और मार्ग से भटक गये हो। परन्तु सुपात्र को सुधारते देर नही लगती है और उसे सुधरते भी देर नही लगती है। कई सुधरे हैं और कई बिगडे हुए सुधरेंगे। यह भगवान् का वचन सत्य है।

कितने ही भाई विचार करते हैं और कभी-कभी आकर मेरे से भी कहते हैं कि महाराज, आप व्याख्यान मे जाति सुधार की बाते क्यो करते हैं ? क्या यह जाति सुधरे, ऐसी है ? वहा तो हाथी के दात खाने के और हैं और दिखाने के और हैं। पर भाई, हमे ऐसा ज्ञान नही है कि आपके मन मे विचार क्या है ? यदि ऐसे मिल जायेंगे तो उनसे कह देंगे कि बोलने की हिम्मत मत करो। परन्तु यदि कोई बोलना चाहता है तो उसकी बोली बन्द नही की जा सकती है। मौका है—काम बन भी जावे और नहीं भी बने ? परन्तु हमारा काम तो सेवा करने का है। अब रहा गाने का सवाल ? तो आप सन्तो के गुण गाइये। भगवान के गुण गाइये। जिन्होने अपने आराध्य भगवान् के गुण गाये, वे तभी स्वय भगवान् बने। भगवान के लिए अपनी श्रद्धा के दो फूल अवश्य चढाये जावें। यदि सन्तो के गुण-ग्राम गाये जावेंगे तो आप लोग ही कह देंगे कि यह प्रतिदिन क्या हो रहा है ? परन्तु ये हमारे बच्चे, ये नवयुवक, यदि यहा पर गाने के लिए सीना खोलेंगे तो एक दिन हजारो की सभा मे भी स्टेज पर बोलने के लिए खडे हो जायेंगे। अरे भाई, यह तो इनको प्रोत्साहन देना है। लोगो ने छोटी-छोटी बातो पर ऐसे विचार रखकर ही जाति का सत्यानाश कर दिया है।

आज विधान सभाओ मे कितने मिनिस्टर हैं ? उन्होंने सब कुछ तो कर लिया और ऊचा पद भी पा लिया। किन्तु यदि आज उन्हे स्टेज पर खड़े करके बोलने के लिए कहा जाय तो उनके पैर थर्र-थर्र कापने लगते हैं, क्योकि अभी तक उनकी हिम्मत खुली ही नही, बोलने के लिये सीना खुला ही नही। आज इन नौजवानो का सीना खुलेगा तो आगे ये खुलकर बोल सकेंगे और उचित बात समझेंगे उसे निर्भय होकर जनता—जनार्दन के समुख कह सकेंगे। इसलिए हमारा काम तो इन लोगो के उत्साह को बढ़ाने का होना चाहिए। उनके उत्साह को भग करने का काम नही होना चाहिए।

सकता है। घरधणी के जिमाने वाले के जो जो चीजें बनी होगी, वह तो उन सब को परोसने के लिए भेजेगा ही। यह जीमने वालों का काम है कि जो चीज उनकी प्रकृति के अनुकूल हो, उसे लेवे। और जो चीज प्रतिकूल हो, उसे नही लेवें। पर किसी एक के पीछे सबको तो परोसने से तो कोई मना नही कर सकता है। इसी प्रकार व्याख्यान मे भी एक ही प्रकार की बात नही आती है। यहा तो न्याय-नीति, देश-समाज और धर्म, सभी की बातें आती हैं। अब जिस श्रोता को जो बात पसन्द हो, वह उसे ग्रहण कर लेवे। उससे उसे लाभ ही पहुँचेगा। यह तो दुनिया हैं। यहा पर तो आलोचना-प्रत्यालोचना होती ही रहती है। आप दुनिया की क्या बात पूछते हो? अभी तो लिखा जा रहा है कि स्वर्ग और नरक कहा हैं। आप जैन घर मे जन्मे हुए हैं, तो ये प्रश्न पूछे ही जायेंगे। यदि आपको इनका ज्ञान है तो आप इनका उत्तर दे देगे। अब सुनने वाला माने तो ठीक है और नही माने तो उसकी इच्छा है। परन्तु हम भगवान् के वचनो को झूठा मानने को तैयार नही हैं। अरे, जो भगवान के वचनो की प्ररूपणा करते हैं, आप उन्हे सुनने के लिए भी तैयार नही हैं।

आशा के सहारे कष्ट भी गुजर जाते हैं

हा, तो आज मैं कह रहा हू कि आशा के ऊपर यह संसार टिका हुआ है। पवनजय अजना के साथ विवाह करके अपने महल मे आये और उसे उसी समय अपनी दृष्टि से उतार दिया। अब सती होने के नाते क्या उसे सथारा कर लेना चाहिए था? परन्तु नही किया, क्योकि उसे आशा थी कि एक दिन मेरे पति मुझे अवश्य स्वीकार करेंगे। अब बताओ उसकी आशा फलीभूत हुई या नही? बाईस वर्ष के पश्चात् उसे उसके पति मिले। किन्तु फिर भी दुर्दैव का योग जुडा और फिर उसे घर से बाहिर निकाल दिया गया। उस समय तो वह घबरा कर मर सकती थी। परन्तु उस समय भी उसने यही कहा कि नही मुझे पूर्ण विश्वास है कि एक दिन मेरा कलक अवश्य धुलेगा और मैं कुन्दन के समान चमकूगी।

सती चन्दनवाला भोयरे मे—तलघर मे बधी हुई पडी रही। जैसे

गये हैं, आज हम उनका आश्रय लेंगे तो इनसे हमारा अवश्य ही कल्याण होगा। यदि हम आशा छोड दें और श्रावकपना और साधुपना छोड दें तो कोई सिद्धि होने वाली नहीं हैं। यदि आप लोग अपने-अपने व्रत मे दृढ़ रहेंगे तो एक दिन सिद्धि अवश्य होगी।

आशा बनाम विश्वास

आशा के ऊपर विचार करते हुए मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है। एक समय की बात है कि एक नगर के राजा का राजकुमार और प्रधान का लडका ये दोनो बालसाथी थे अत दोनो मे घनिष्ट मित्रता थी। वे दोनों एक दिन हवाखोरी के लिए बगीचे मे गये। वहा खेलते हुए एक वृक्ष पर चढ गये। उन्हें एक घोसले मे मोरनी के दो अडे दिखाई दिये। राजकुमार ने कहा—मित्र, ये कितने अच्छे अण्डे हैं? अपन इन्हें ले लेवें तो अच्छा रहेगा। जब ये फूटेंगे तो इनमे से मोर के बच्चे निकलेंगे। जब वे बडे हो जावेंगे, तब हम इन्हे नृत्यकला सिखावेंगे। इनसे हमारा दिल-बहलाव होता रहेगा। वे उस घोसले से अडे उठा लाये और एक-एक अडा लेकर अपने-अपने घर चले आये। घर पर आकर प्रधान के लडके ने तो उसे जिस तरीके से रखना चाहिए, उसी तरीके से रखकर उसे बढाने लगा। राजकुमार ने महल मे जाकर उसे हिला-डुला करके देखा कि इसमे बच्चा है कि नही? जब उसमे से कोई आवाज नहीं सुनाई दी, सब उसे खाली समझ कर एक आले मे रख दिया, इससे उस अडे को पोषण नही मिला और वह सूख गया। प्रधान के लडके ने उसका यथा विधि पोषण किया, उसे जब जितनी गर्मी की आवश्यकता थी तब बराबर उसे दी। परिपाक होने पर अडा फूटा और उसमे से मोरनी का बच्चा निकल आया। उसका भी उसने यथाविधि पालन-पोषण किया। जब वह बडा हो गया, तब उसने उसे नृत्य कला सिखाई। धीरे-धीरे कुछ दिनो मे वह नृत्य कला मे प्रवीण हो गया। प्रधान का पुत्र उसे नाचते हुए देखकर बहुत प्रसन्न होता था। नृत्य शास्त्र मे भी कहा है कि मोर के समान दूसरा कोई सुन्दर नृत्य नही है। मोर के नृत्य को देखकर लोग मुग्ध हो जाते हैं।

अपने कर्तव्य का पालन करते रहो तो सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी। दृढ प्रतिज्ञा वाले पुरुष जिम काम को पकड लेते है, उससे पीछे नही हटते। नीतिकार ने कहा भी है—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

भाई, नीति-निपुण धीर-वीर पुरुष अपने न्याय-सगत मार्ग से कभी भी विचलित नही होते है। भले ही उस पर चलते हुए लोग उनकी निन्दा करें, या स्तुति करें! लक्ष्मी आवे, या जावे! मरण चाहे आज ही हो जाय, अथवा युग-युग तक जीवन बना रहे। परन्तु वे अपने मार्ग पर दृढता से कदम बढाते हुए आगे बढते चले जाते है। और एक दिन अपने अभीष्ट को प्राप्त करके ही विश्राम लेते हैं।

आज के व्याख्यान का सार यह है कि हमे दृढ आशावादी होना चाहिए और आशा के अनुरूप अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर आगे बढते रहना चाहिए। देखो आशा पर चलने वाला मनुष्य पर्वत को भी लाघ जाता है और दुर्गम वनो को भी पार कर लेता है। यदि आशा छोड दी, तो सारा मामला ही बिगड जाता है। इसलिए आप लोगो को आशावादी बनना चाहिए।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला २
जोधपुर

●●

अपने कर्तव्य का पालन करते रहो तो सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी। दृढ प्रतिज्ञा वाले पुरुष जिस काम को पकड लेते है, उससे पीछे नही हटते। नीतिकार ने कहा भी है—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

भाई, नीति-निपुण धीर-वीर पुरुष अपने न्याय-सगत मार्ग से कभी भी विचलित नही होते है। भले ही उस पर चलते हुए लोग उनकी निन्दा करें, या स्तुति करे! लक्ष्मी आवे, या जावे! मरण चाहे आज ही हो जाय, अथवा युग-युग तक जीवन बना रहे। परन्तु वे अपने मार्ग पर दृढता से कदम बढाते हुए आगे बढते चले जाते हैं। और एक दिन अपने अभीष्ट को प्राप्त करके ही विश्राम लेते हैं।

आज के व्याख्यान का सार यह है कि हमे दृढ आशावादी होना चाहिए और आशा के अनुरूप अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर आगे बढते रहना चाहिए। देखो आशा पर चलने वाला मनुष्य पर्वत को भी लाघ जाता है और दुर्गम वनो को भी पार कर लेता है। यदि आशा छोड दी, तो सारा मामला ही बिगड जाता है। इसलिए आप लोगो को आशावादी बनना चाहिए।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला २
जोधपुर

●●

समान, किसी की सामानिक के समान, किसी की चारण और भाटके समान किसी की गन्धर्वों के समान इस प्रकार देवलोक मे भी देवो की प्रकृति अनेक प्रकार की होती है। अब प्रश्न होता है कि देवो मे यह प्रकृति कहा से आई ? उत्तर है कि जहा से—जिस पूर्व पर्याय से वे देवगति मे उत्पन्न हुए हैं और देव बने हैं, उस मनुष्य पर्याय मे उनके जिस प्रकार के विचार थे, जैसे सस्कार थे, वे सस्कार देव पर्याय मे भी चले आये और वहा पर उसी प्रकार के सस्कारो वाला देव बना। भाई, जिस गति से जो जीव जहाँ पर भी जाता है · जन्म लेता है, वहा पर भी वे सस्कार और विचार उसके मस्तिष्क मे बने रहते हैं। यहा पर भी आप लोग देखते हैं कि अच्छे कुलीन घराने का कोई लडका किसी के यहा गोद गया। परन्तु जहा गोद गया, वह घराना उसके पैतृक घराने के जोड का (बराबरी का) नही है, तो क्या वह अपने खानदान की प्रकृति को भूल जायगा ? नही भूलेगा। वह तो वहा जाकर के भी अपने स्वभाव का परिचय देगा हो। इसी प्रकार यदि कोई नीच घराने का लडका उच्च घराने मे गोद चला जाता है, तो वह वहा पर भी अपने घराने की प्रकृति का परिचय देता ही है। आप लोग भी कहा करते हैं कि यदि कोई कीडी सोने के ऊपर चले तो वह सोने की नही बन जाती है। यदि नीच कुल का, या नीच घराने का कोई लडका किसी पुण्य-योग से किसी भले घराने मे गोद पहुँच भी गया, परन्तु उसके लक्षण तो वे ही रहेगे। पूर्व के सस्कार सहसा दूर नही होते है, किन्तु धीरे-धीरे उनमे परिवर्तन होता है और पुरानी प्रकृति बदल जाती है।

कोई जीव देव बन गया, अच्छी ऋद्धि, समृद्धि, शक्ति और ज्ञान की भी प्राप्ति हो गई, परन्तु फिर भी उसकी परिणति नही बदली, तो समझना चाहिए कि वह देवलोक मे उच्च प्रकृति लेकर नही आया है, उसके पूर्व भव के सस्कार नीच हैं। ऐसे नीच सस्कार वाला देव स्वर्ग मे भी चोरी करता है, और दूसरे देवो की देविया उठाकर ले जाता है। वह पकडा जाता है और इन्द्र के सामने लाया जाता है। वे उसकी वज्र से ताडना करते हैं और वह छह-छह मास तक हाय-हाय करता रहता है। यद्यपि आयु के पूर्ण हुए

कहा है। भाई, साधु-साध्वी को भगवान् की उपमा भगवान् ही देकर के गये हैं। घर-वार का त्याग करने से ही साधु-साध्वी भगवान् बने और पाच समिति, तीन गुप्ति और पाच आचार के पालन करने से ही वे भगवान् कहलाते हैं। जो साधु-साध्वी बराबर दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप की आराधना कर रहे हैं और आत्म-साधन मे सलग्न है तो वे भी भगवान् हैं। उनमे भी कोई कमी नही है। भेद केवल इतना ही है कि वे कर्मों से अलग हो गये है और ये कर्मों से युक्त हैं। इसीलिए कहा जाता है कि—

अन्तर यही ऊपरी जान,
वे विराग यहां राग-वितान।

अर्थात् अरहन्त और सिद्ध भगवन्त तो राग-द्वेष से रहित होकर के वीत-रागी वन चुके हैं और आचार्य, उपाध्याय एव साधुजनो मे राग का मिलान है, सद्भाव है, अभी उनके कारण भूत कषायो का क्षय नही हुआ है। परन्तु वे उनका क्षय करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। इसी कारण उनको परमेष्ठी कहा गया है और अरहन्त-सिद्ध के साथ उनकी पच परमेष्ठी मे गणना की गई है; तथा उनको प्रतिदिन नमस्कार करने का विधान किया गया है और उसे सर्व पापो का नाश करने वाला प्रथम या मुख्य, मगल माना गया है। भाई, जो निरन्तर अपने साध्य की साधना मे सलग्न है, उनके कर्मों को दूर होने मे देर भी नही लगती है।

एक व्यापारी ने दुकान जमाई और खूव व्यापार कर रहा है अब उस पर लोग कर्ज भी मागते हैं, तो दूसरे लोग कह देते है कि आपकी रकम तिरती है, डूवने वाली नही है। व्यापार जोरदार चलता देखकर लोग अपने आप ही कह देते हैं। इसी प्रकार साधु-साध्वी की करनी, उनके विचार और आचार-व्यवहार को देखकर लोग कह देते हैं कि ये भगवान् की जोड मे जाने के योग्य हैं, अव ये पीछे रहने वाले नही है। यह सम्भव है कि किसी के कर्म गति की विचित्रता से वह वैसा न वन पावे। परन्तु जो वर्तमान मे उसके भीतर ज्ञान और ध्यान के भाव आये हैं, तो वह अपने स्थान से पडते-पड़ते भी सभल जाता है। जैसे एक आदमी को तैरना आता है और एक को

कहा है। भाई, साधु-साध्वी को भगवान् की उपमा भगवान् ही देकर के गये हैं। घर-बार का त्याग करने से ही साधु-साध्वी भगवान् बने और पाच समिति, तीन गुप्ति और पाच आचार के पालन करने से ही वे भगवान् कहलाते हैं। जो साधु-साध्वी बराबर दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप की आराधना कर रहे हैं और आत्म-साधन मे सलग्न हैं तो वे भी भगवान् हैं। उनमे भी कोई कमी नही है। भेद केवल इतना ही है कि वे कर्मों से अलग हो गये है और ये कर्मों से युक्त हैं। इसीलिए कहा जाता है कि—

अन्तर यही ऊपरी जान,
वे विराग यहा राग-वितान।

अर्थात् अरहन्त और सिद्ध भगवन्त तो राग-द्वेष से रहित होकर के वीत-रागी बन चुके हैं और आचार्य, उपाध्याय एव साधुजनो मे राग का मिलान है, सद्भाव है, अभी उनके कारण भूत कषायो का क्षय नही हुआ है। परन्तु वे उनका क्षय करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। इसी कारण उनको परमेष्ठी कहा गया है और अरहन्त-सिद्ध के साथ उनकी पच परमेष्ठी मे गणना की गई है, तथा उनको प्रतिदिन नमस्कार करने का विधान किया गया है और उसे सर्व पापो का नाश करने वाला प्रथम या मुख्य, मगल माना गया है। भाई, जो निरन्तर अपने साध्य की साधना मे सलग्न हैं, उनके कर्मों को दूर होने मे देर भी नही लगती है।

एक व्यापारी ने दुकान जमाई और खूब व्यापार कर रहा है अब उस पर लोग कर्ज भी मागते है, तो दूसरे लोग कह देते है कि आपकी रकम तिरती है, डूबने वाली नही है। व्यापार जोरदार चलता देखकर लोग अपने आप ही कह देते हैं। इसी प्रकार साधु-साध्वी की करनी, उनके विचार और आचार-व्यवहार को देखकर लोग कह देते है कि ये भगवान् की जोड मे जाने के योग्य हैं, अब ये पीछे रहने वाले नही हैं। यह सम्भव है कि किसी के कर्म गति की विचित्रता से वह वैसा न बन पावे। परन्तु जो वर्तमान मे उसके भीतर ज्ञान और ध्यान के भाव आये हैं, तो वह अपने स्थान से पडते-पड़ते भी सभल जाता है। जैसे एक आदमी को तैरना आता है और एक को

नही आता है। यदि दोनो अकस्मात् पानी मे पड़जाते हैं, उनमे से तैरना जानने वाला तो तैर कर पानी से वाहिर आ जायगा। परन्तु जिसे तैरना नही आता है तो उसे डूवना ही पड़ेगा। इसी प्रकार जो लोग ससार मे पापो मे पच रहे हैं और जिनमे विवेक बुद्धि नही है, तो उनके लिए क्या निर्णय कर सकते है कि ये मरकर कहा जायेंगे ?

नरक के चार कारण

भगवान् अपने उपदेशो मे कह कर गये हैं और हम आगमो मे देखते हैं कि जीव चार प्रकार से देव, मनुष्य, तिर्यच और नरक गति मे जाते हैं। भगवान् तो हर वात का निर्णय करके कह गये हैं। परन्तु हम निर्णय करने के वाद उन वातो पर ध्यान देवें तो हमको भी निर्णय हो जायगा कि—

महारंभयाए महापरिग्गहयाए, पचेंदिय वहेण, कुणिमाहारेण।

—स्थानाग ४।४

आरभ करतो रे जीव शके नहीं, धन मेलन तृष्णा अपारोरे।
घात करे पचेंद्री जीवनो, वलि मद्य मासनो आहारोरे ।। १ ।।
ऐ चउबोले रे जीव जावे नरक मे।

अर्थात् चार कारणो से जीव नरकगति मे जाता है। उनमे प्रथम कारण है—महान् आरम्भ। जिसको आरम्भ समारम्भ के सिवाय कोई अन्य कार्य अच्छा नही लगता, जो इधर एक मकान गिराता है और उधर दूसरा वनाता है, यहा वाग लगवाता है और वहा कुआ खुदवाता है। जिसका विचार रात-दिन छह काय के जीवो का आरम्भ करने मे ही रहता है। जिसे यह ध्यान ही नही कि मेरे आरम्भ के लिए यह एक मकान ही वहुत है। जिसे एक से सन्तोष नही, इसीलिए दूसरे और तीसरे मकान को वनवाने मे लग रहा है और आरम्भ-समारम्भ मे निमग्न है, ऐसा जीव नरक गति का आयुष्य उपार्जन करता है। इसी प्रकार धन की प्राप्ति हो जाने पर चलती दुकान या कारोवार के अतिरिक्त नेता नये-नये कारखाने खोलने मे ही लगा रहता है और उनमे मरने वाले असख्य जीवो की हिंसा की ओर जिसका लक्ष्य ही नही है, महारम्भ के कार्यो से मुड़ने की जिसकी

भावना ही नही है, वह महारम्भी कहलाता है। तथा जो महापरिग्रही है जिसे लाखो की पूजी हो जाने पर करोडो को जोडने की और करोडो को जोड लेने पर अरबो को जोडने की तृष्णा बनी रहती है और आग मे ईधन के डालने के समान जिसकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढती ही जाती है, उसी प्रकार जिसकी तृष्णा का कोई आर-पार ही नही है जो सदा धन-धान्यादि के परिग्रह-सचय करने मे ही मस्त हो रहा है, वह महापरिग्रही कहलाता है। इस प्रकार महा आरम्भ और महापरिग्रह मे आसक्त व्यक्ति धर्म को भूल जाता है। उसे अपने स्वार्थ-साधन मे बाधक प्रतीत होने वाले पचेन्द्रिय प्राणियो की हिंसा करते भी देर नही लगती है और जिस किसी को अपना बाधक या विरोधी देखकर उसकी हत्या करने से भी नही चूकता है। फिर उसके हृदय से दया का भाव बिल्कुल निकल जाता है। फिर पचेन्द्रिय जीवो को मारते हुए भी उसको रोमाच नही होता। इस धन के नशे में मस्त होने पर उसे मास खाने और शराब पीने से भी परहेज नही रहता है और सब कुछ खाने-पीने लगता है फिर उसे इन कामो को करने के लिए किसी ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाने की भी आवश्यकता नही रहती है। इस प्रकार महारम्भी, महापरिग्रही, पचेन्द्रिय जीवो का घातक और मद्य-मास का भक्षक पुरुष नरकायु का उपार्जन करके मरकर सीधा नरक मे जाता है।

तिर्यंच गति के चार कारण

दूसरी बात तिर्यंच गति की है। उसके विषय मे कहा गया है कि—

मायिल्लयाए, नियड्डील्लयाए कूड तोले-कूड माणे कूडलेहे ण।

—जो मायावी है, कपट करने वाला है और कपटाई मे भी कपटाई करता है, अर्थात् एक छल-कपट से बचने के लिए दूसरा कपट करता है और उससे बचने के लिए तीसरा करता है कि मेरा कपट प्रकट न हो जाय, भेद न खुल जाय, कोई असली बात को न जान जाय, यह दूसरे पर पड जाय, इसलिए वह अपना पाप दूसरे पर थोपने का प्रयत्न करता रहता है और स्वय बच जाने के लिए नाना प्रकार की खटपट करता है। अपना दोष औरो

के ऊपर आरोपण करता है और दूसरो से कहता है कि मैंने इसे वहुत समझाया, परन्तु यह स्वीकार ही नही करता है। ऐसा कपट करने वाला, कूट नाप-तोल करने वाला, झूठे लेख लिखने वाला, जाली दस्तावेज वनाने वाला, झूठी गवाही देने वाला और छल-कपट से धन कमाने वाला पुरुप तिर्यंचगति मे उत्पन्न होता है।

मनुष्य व देवगति के कारण

तीसरी मनुष्यगति के कारण वताते हुए कहा है कि—

पगइ भद्दयाए विणयाए साणुक्कोसयाए अमच्छरियाए।

जिनकी प्रकृति वडी सीधी है, स्वभाव अति सरल है, हृदय कोमल है, विनय, नम्रता और दयालुता जिनके रोम-रोम मे भरी हुई है, दूसरो की वढोतरी और उन्नति को देखकर जिनके हृदय मे ईर्ष्याभाव उत्पन्न नही होता है। वल्कि जो निरन्तर गिरने वालो के उत्थान की, उन्हे सहायता देने की भावना रखते हैं और अहर्निश यह विचार करते रहते हैं कि—

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सन्तु सर्वे निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग्भवेत्॥

ससार के सभी प्राणी सुखी हो, सभी नीरोग रहे, सभी कल्याण को देखें। किन्तु कोई भी दुख को न प्राप्त हो। इस प्रकार से जिनकी परिणति अच्छी रहती है, किन्तु चारित्र मोह कर्म के उदय से जो व्रत, शील, सयमादि का पालन नही कर पाते हैं, ऐसे जीव मरकर मनुष्यगति मे उत्पन्न होते हैं।

चौथी देवगति को प्राप्त करने के कारण वताते हुए कहा है कि—

सरागसजमेण सजमासजमेण वालतवोकम्मेण अकामणिज्जराए।

इन चार कारणो से जीव देवगति को पाता है। इनमे पहिला कारण है सराग सयम—सयम पालता है, परन्तु रागभाव नही छूटा है, श्रावक के व्रत पालता है, तपस्या भी करता है, परन्तु वाल तप करता है, अज्ञानी या मिथ्यादृष्टि के तप को वाल तप कहते हैं। ज्ञानी वनकर ज्ञान दृष्टि से सम्यक्त्वी वन करके तपस्या नही कर रहा है और अकाम निर्जरा कर

है। बिना इच्छा के परवश या पराधीन होकर जो कर्मों की निर्जरा की जाती है, उसे अकामनिर्जरा कहते हैं। सासारिक सुखो को भोगने की इच्छा होते हुए भी कर्मोदय से उनकी प्राप्ति के अभाव मे उनके नही भोग पाने से जो निर्जरा होती है, जेलखाने मे जाने पर विवश होकर जो रूखा-सूखा खाना पडता है और ब्रह्मचर्य का पालन, भूमि-शयन आदि करना पडता है, इत्यादि प्रकार के कार्यों से होने वाली कर्म निर्जरा को अकाम निर्जरा ही जानना चाहिये। इन चार कारणो से जीव मरकर देवगति मे उत्पन्न होता है। इनमे से प्रारम्भ के दो कारण सम्यग्दृष्टि के होते हैं, अत वे कल्पवासी देवो मे उत्पन्न होते हैं। किन्तु अन्तिम दो कारण मिथ्यादृष्टि जीवो के ही होते हैं अत वे जीव मरकर भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवो मे उत्पन्न होते है।

जैसी मति . वैसी गति

जो जीव निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप को धारण करते है, यदि वे उत्तम सहनन वाले और चरमशरीरी हैं तो उसी भव से मोक्ष को प्राप्त करते हैं। अन्यथा देव और मनुष्य के सात भव पा करके आठवे भव मे तो नियम से मोक्ष प्राप्त कर ही लेते हैं।

गति-सम्बन्धी आयु के सम्बन्ध से कुछ विशेष बात जानने के योग्य है। वह यह है कि ऊपर बतलाये गये चारो गति के बन्ध-कारणो मे से जिस जीव के जिस समय जैसे परिणाम होते हैं, उसके अनुसार प्रति समय किसी न किसी गति नामकर्म का बन्ध होता ही रहता है। कल्पना कीजिए कि किसी जीव के परिणाम इस समय महारम्भ और महापरिग्रह रूप हो रहे हैं, तो वह इस समय नरकगति का बन्ध कर रहा है। अब एक घडी के पश्चात् यदि उसके मायाचाररूप प्रवृत्ति की अधिकता है, तो उसके तिर्यंच गति का बन्ध होगा। यदि उसके पश्चात् स्वभाव मे शान्ति है, कोमलता और दयालुता रूप प्रवृत्ति हो रही है तो उसके उस समय मनुष्य गति का बन्ध होगा। उसके पश्चात् यदि उसकी प्रवृत्ति व्रत-शील-सयमादि के पालनरूप हो रही है तो उस समय देवगति का बन्ध होगा। इस प्रकार से एक जीव के भावो

के परिवर्तन के अनुसार प्रतिदिन चारों ही गतियों का वन्ध सभव है। किन्तु आयुष्य कर्म का वन्ध प्रतिसमय प्रतिदिन नही होता है। उसका वन्ध त्रिभाग मे होता है। इस त्रिभाग का अर्थ यह है कि जिस जीव की जितनी वर्तमान भव की आयु है, उसके दो भाग वीत जाने पर और तीसरा भाग शेष रहने पर एक अन्तमुंहूर्तकाल के भीतर जीव के जिस जाति के ऊँच या नीच भाव होगे, तदनुसार ही ऊच या नीच गति सम्वन्धी आयुष्य का वन्ध हो जायगा। यदि किसी कारणवश इस प्रथम त्रिभाग के समय आयुष्य वन्ध नही हो सका तो शेष रही आयुष्य के भी दो भाग वीतने और एक भाग शेष रहने पर दूसरी वार आयुष्य वन्ध का एक अन्तमूहूर्त के लिए अवसर आयगा। यदि कदाचित् इस दूसरे त्रिभाग मे भी आयुकर्म का वन्ध नहीं हो सका तो जितनी आयु शेष वची है उस के भी दो भाग वीतने पर एक अन्तर्मुहूर्त के लिए आयुवन्ध का अवसर आयगा। इस प्रकार जीव के जीवन भर मे आठ अवसर आते हैं। यदि ये सभी खाली चले जावें और किसी मे भी आयु का वन्धन हो सके तो मरण होने के कुछ क्षण पूर्व तो आयुकर्म का वन्ध नियम से ही हो जाता है। इस आयुवन्ध के त्रिभाग-नियम को समझने के लिए आप कल्पना कीजिए कि अमुक व्यक्ति की वर्तमान भव सम्बन्धी आयु ८१ वर्ष की है। तो इसके दो भाग वीतने और तीसरा भाग प्रारम्भ होने पर अर्थात् $(३ + \frac{८१}{२७} \times २ = ५४)$ चौपन वर्ष वीतने पर तथा पचपनवां वर्ष प्रारम्भ होने पर एक अन्तमुहूर्त के लिए आयुवन्ध का प्रथम अवसर आयगा। पुन शेष रहे २७ के दो भाग अर्थात् अठारह वर्ष वीतने पर (५४ + १८ = ७२) बहत्तर वर्ष के पूरे होने और तिहत्तरवें वर्ष के प्रारम्भ होने पर दूसरा अवसर आयगा। इसी क्रम से तीसरा अवसर अठहत्तर वर्ष वीतने पर चौथा अवसर अस्सी वर्ष वीतने पर, पाचवा अवसर अस्सी वर्ष आठ मास वीतने पर छठा अवसर अस्सी वर्ष दस मास और वीस दिन वीतने पर, सातवा अवसर अस्सी वर्ष ग्यारह मास १६ दिन और १६ घंटे के वीतने पर तथा आठवा अवसर अस्सी वर्ष, ग्यारह मास, पच्चीस दिन, और तेरह घंटे वीतने पर आयगा।

साढ़े चार दिन की आयु के शेष रहने पर आयगा। यदि यह अवसर भी खाली चला जाय तो मरण से कुछ समय पूर्व तो आयु का बन्ध नियम से होगा ही।

इस सारे विवेचन का साराश यह है कि आयुबन्ध होने के पूर्व मनुष्य चारो ही गति का बन्ध करता रहता है। किन्तु आयुबन्ध के समय उसके परिणाम जैसे होगे वैसा ही उसके आयु कर्म का बन्ध हो जायगा और इसके पूर्व बन्धी गतियो के कर्म का परिवर्तन उसी आयुबन्ध के समान हो जायगा। आयुबन्ध के समय यदि अच्छे विचार हो गये तो अच्छी आयु का बन्ध हो जायगा और बुरे विचार हो गये तो बुरी आयु का बन्ध हो जायगा। जिसके भाव अधिकतर जिस गति के बन्ध रूप रहते हैं, प्राय उसके उसी गति सम्बन्धी आयु का बन्ध होता है। इसलिए मनुष्य को सदा ही उत्तम विचार और उत्तम आचरण रखना चाहिए। जिसका आचार-विचार जाग्रत दशा मे अच्छा रहता है, उसके सोते मे भी अच्छे विचार बने रहते हैं और यदि स्वप्न भी देखेगा तो अच्छे ही स्वप्न देखेगा। इसी प्रकार जिसका आचार-विचार दिन भर बुरा रहता है, उसके भाव सोते मे भी बुरे रहते हैं और उसको स्वप्न भी बुरे ही आते है। इस नियम से जिसके भाव सदा अच्छे होगे, वह त्रिभाग मे अच्छी ही आयु को बाधेगा। और जिसके सदा बुरे भाव रहेगे, वह बुरी ही आयु को बाधेगा।

भावो पर दारमदार

यदि कोई जीव त्रिभाग मे देवायुष्य को बाध करके देव भी बन गया, तो वहा पर भी अलग अलग पदविया हैं और उनकी परिणाम-धारा निरन्तर बदलती रहती है। इसी प्रकार मनुष्यो की भी विचार-धारा बदलती ही रहती है। इस विचार-धारा के परिवर्तन का शास्त्रो मे कितना विचार किया गया है कि एक जीवन के भीतर एक ही पर्याय मे ९०० बार साधुपना आ जावे और चला भी जावे। इसी प्रकार गृहस्थ के भी ९००० बार श्रावक पना आजाय और चला जाय। भावो के परिवर्तन की बडी विचित्रता है। मन की चचल प्रवृत्तियो का और कर्म की उदय मे आने वाली हीनाधिक

रस वाली असख्य जाति की प्रकृतियो का हम क्या माप कर सकते है। काल की अपेक्षा एक सामायिक का हम घडी के द्वारा माप-दण्ड कर सकते है। परन्तु भावों की अपेक्षा उसका मापदण्ड करना हम छद्मस्थों के लिए असभव है। सामायिक करते करते उल्टे भाव कब, कैसे और कितने शीघ्र आजाते हैं कि हम ज्ञान-ध्यान का मार्ग भूलकर अन्यत्र भटक जाते हैं। हम उस समय भटकें नही और अपने लक्ष्य-बिन्दु पर स्थिर रहे, इसके लिए भावो को दृढ करना आवश्यक है। भावों को दृढ करने के लिए बताया है कि—

ज्ञानालम्बनदृढ़ग्रही, निरालम्बता भाव।
चिदानन्द नित कीजिए, ये ही मोक्ष उपाय ॥

मोक्ष-प्राप्ति का उपाय क्या है ? हाथी बहुत ही बलवान है, पर उसे थम्भे से बाध दिया। घोडा बहुत तेज है, पर हण्टर या चाबुक पडते ही काबू मे आ जाता है। बैल बहुत चचल है, परन्तु नाथ से वश मे हो जाता है। इसी प्रकार मन को वश मे करने के लिए ज्ञान का आलम्बन ले लो, वह वश मे हो जायगा। तथा निरालम्बनता की भावना करो कि मैं किसी के अधीन नहीं हू, स्वतत्र हू। पर पदार्थ मेरा कुछ नही विगाड सकते हैं। मैं सबसे इसी प्रकार भिन्न हूं जैसे जल मे उत्पन्न होकर और उसी मे रह कर भी कमल उससे भिन्न ही रहता है। इस प्रकार के निरालम्बी भावो के द्वारा आत्मा की चचल मनोवृत्ति भी शान्त एवं स्थिर हो जाती है। इसलिए हे आत्मन्, तू ऐसे उपाय कर, जिससे कि तेरी प्रकृतिया अपने आप वश मे हो जावेंगी।

विकारी स्वभाव बदलो

भाइयो, विचार तो करो कि आप अपनी प्रकृतियो को तो कावू मे करना ही नहीं चाहते हैं और कहते हैं कि प्रकृति ठीक हो जाय। पर ऐसा कहने मात्र से वह ठीक नही होगी। अपनी प्रकृति मे जो टेडापन है, कुटिलता है, उसका मोडना किसके हाथ मे है ? अपने स्वय के हाथ मे है। दूसरे व्यक्ति से तो केवल प्रेरणा मिलती है। जो क्रोध करता है, वह यदि प्रकृति को मोड दे तो दूसरे के क्रोध का निमित्त मिलने पर भी उसे क्रोध नही आयगा। यदि दूसरे के क्रोध का निमित्त मिला और स्वय ने मोड नही दाई तो [illegible]

मे नही होगा। स्वय तो चलता नही, सदाचरण करता नही, और कहता है कि मैं दूसरे को उपदेश दे रहा हूं, शिक्षा दे रहा हू तो इस प्रकार से प्रकृति नही बदल सकती है। दूसरे के कुछ भी कहने पर हम यदि यह सोचें कि यह व्यक्ति कैसा भी हो, परन्तु हमारे लिए तो हितकारी बात ही कह रहा है, हम यदि उसे मानेंगे और उस पर चलेंगे तो हमारा जीवन जगमगा उठेगा। इस लिए हमे उसकी शिक्षा मानने मे 'ननु-न च' नही करना चाहिए और अपनी प्रकृति को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्राय लोग कहा करते है कि '**स्वभावो नहि वार्यते** अर्थात् जिस व्यक्ति का जैसा स्वभाव पड जाता है, वह बदला नही जा सकता है। एक लोकोक्ति भी प्रचलित है कि—

जाको जोन स्वभाव, जाय नहि बदलो तीसों।
नीम न मीठा होय खाओ चाहे गुड़ घीसो।

यद्यपि जन्म-जात स्वभाव बदल नही सकता है। नीम का जन्म जात स्वभाव कटुक है और ईख का जन्म जात स्वभाव मिष्ट है, अतः ऐसा जन्म-जात स्वभाव तो बदला नही जा सकता है। परन्तु मनुष्य का जन्मजात स्वभाव कटुक नही है, मधुर है। एव विचारशीलता उसकी जन्म जात प्रकृति है। उसमे पर ससर्ग से यदि विकृति आ जाती है, वह बदली जा सकती है। जैसे जल का जन्म-जात स्वभाव शीतलता है। अब यदि उसमे अग्नि के सयोग से उष्णता आ जाती है, तो उस सयोग के दूर करते ही वह वापिस अपने शीतल-स्वभाव मे आ जाता है। इसी प्रकार यदि विकार पैदा करने वाले पर-सयोगो को दूर किया जाय तो मनुष्य की प्रकृति सहज मे ही बदल सकती है। यदि वह बदलना ही न चाहे और बदलने का प्रयत्न ही न करे तो कैसे बदल सकती है? नही बदल सकती है।

पुरुषार्थ प्रकृति को बदल देता है

भाइयो, देखो—किसी रेतीली भूमि पर पानी नही दिखाई देता है। वहा पर किसी मनुष्य ने दृढ सकल्प कर लिया कि मैं यहा पर पानी निकाल करके ही रहूगा, तो अन्त मे उस भूमि को खोदते-खोदते पानी निकाल ही

लेता है। एक मनुष्य पत्थर को पत्थर मानकर रह जाय तो वह उससे कुछ प्राप्त नही कर सकता है। परन्तु दूसरा मनुष्य यदि यह सोचले कि मैं तो इस पत्थर से ही द्रव्योपार्जन करूगा और उसे जगत्पूज्य बनाऊंगा तो वह हथौडा और टाकी हाथ मे लेकर उस पत्थर को तराश कर और उसे घड कर देवमूर्त्ति बना देता है और उससे ऐसा सुन्दर भाव प्रदर्शित कर देता है कि लोग देखते ही रह जाते हैं और उसे हजारो रुपये देकर खरीद लेते हैं, तो भाई यह उसकी सतत साधना का ही सुफल है। आज एक-एक प्राचीन पाषाण मूर्त्ति का मूल्य हजारो और लाखो रुपया मिल रहा है, या नही ? यदि मनुष्य विचार ले कि मैं इस वस्तु को ऐसी सुन्दर बनाऊगा कि मुझे इसका इतना मूल्य मिले तो उसे वह मिलता है, या नही ? मिलता ही है। आप लोग ऊनके व्यापारी हैं। हजारो मन ऊन बाजार मे आती है और आप उसे खरीदते हैं दो चार रुपये या दस रुपये सेर के भाव पर। परन्तु उसे तो जब आप साफ करके और अनेक जाति के रासायनिक द्रव्यो से प्रयत्न करके अच्छी मुलायम बना लेते हैं, तब वह पाच रुपये सेर की ऊन पाच रुपये तोले बिकती है, या नही ? इसे इतनी मूल्य वाली किसने बनाया ? मनुष्य ने या किसी देवता ने ? लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति कभी ठीक रास्ते पर नही आ सकता, कभी नही सुधर सकता। परन्तु यह बात मैं नही मानता हू। यदि वह सच्चे मानव के पास पहुंच जाय, तो कुछ ही दिनो मे वह ऐसा बन जाता है कि लोग उसे देखकर दग रह जाते हैं और कहने लगते है कि क्या वह यही व्यक्ति है ? उसकी चारो ओर प्रशसा होने लगती है कि यह कितना भला आदमी बन गया है। परन्तु उसे बनाने वाला भी व्यक्ति महान् पुरुष होना चाहिये, जो मनुष्य का मूल्य आकने वाला और दोषो को छुडाने वाला हो, वही व्यक्ति ऐसा काम कर सकता है। उसे दृढ़ निश्चयी होना चाहिये। देखो—आदमी के दिमाग से बढकर चारो गतियो मे किसी भी जीव का दिमाग तेज नही है। देवलोक के इन्द्र का पद बहुत ऊचा है, परन्तु मनुष्य का दिमाग उससे भी बढ करके हैं। यही कारण है कि मनुष्य अपने पुरुषार्थ से इन्द्रो को भी अपने चरणो मे नम्रीभूत कर देता है और वे उसकी सेवा मे हर घडी उपस्थित रहा करते हैं।

लगा। आत्म-शुद्धि बढने लगी और उसके साथ ही वह समवसरण के समीप पहुँचा। उसने वहा की स्थिति देखी कि—

प्रथम सुरासुर क्रोड रचित मोटे मडाणे,
समवसरण गढ़ तीन देख भविजन सुख माने।
चउदिस चार प्रतोल, चार पुष्करिणी शीतल,
चार चार वनखड, भार अठारे लक्ष फल ॥
वारणे स्थम्भ तोरण घणा, कंचन गढ़ मणि में लजा।
वाजित्र कोटि बाजे घणा, दंड कलश ऊपर ध्वजा ॥१॥

भगवान् का समवसरण भूमि से लगता हुआ नही होता है। उसमे बीस हजार सीढिया लगती है, इतनी ऊचाई पर वह रचा जाता है। सर्व प्रथम चादी का कोट और उस पर सोने के कगूरे होते हैं। इसके आगे तेरह सौ धनुष छोडकर दूसरा सोने का कोट और उस पर रत्नो के कगूरे थे। फिर तीसरा गढ, उसमे रत्नो का कोट और मणियो के कंगूरे थे। यहा पर चारो दिशाओ मे चार चार वापिकाए थी। उनमे देवताओ के नाटक हो रहे थे। इस प्रकार समवसरण की अद्भुत रचना थी। ज्यो ही राजा दशार्णभद्र समवसरण के पास पहुचा और पहिला कोट आया, त्यो ही वह हाथी से नीचे उतरा। हाथी से नीचे क्यो उतरा? कारण कि ससार की जो भौतिक कार्यवाही थी, वह यही पर छोडनी पडती है। अब उसके मन मे यह विचार पैदा हुआ कि मुझे आते समय जो अहभाव जगा था, सो मेरे से तो लाखो गुणी विभूति के साथ इन्द्र भगवान् की वन्दना के लिए आया है। ससार के सामने मेरा छोटापना प्रकट हुआ? अब इन्द्र से मैं कैसे बढू आगे? इन्द्र से मुझे वैर भाव से प्रतिस्पर्धा नही करनी है। किन्तु धर्म भाव से आगे वढना है और उसे वतलाना है कि मैं तेरे से वढकर हूं। और तू मेरे से छोटा है। अव मैं कौन सा कार्य ऐसा करू जिससे कि मैं उससे वडा सिद्ध हो सकू? अव एक ही वात ध्यान मे आ रही है कि मैं ससार को छोडकर साधुपना ले लू? इस वात मे इन्द्र मेरी वरावरी नही कर सकेगा। अव मुझे एक समय का भी विलम्ब नही करना चाहिए। उसने न रानियो से पूछा, न पुत्रो से

और न सरदारों से ही पूछा कि मैं यह सब राजपाट और तुम लोगों को छोड़-कर साधु बनने जा रहा हूं। न किसी से साधु बनने का उपदेश ही लिया। अरे, उपदेश तो हृदय मे भरा हुआ है। यदि मनुष्य के हृदय मे उन्नत विचार आ जायें तो उत्थान हो जाय। और यदि नीचे विचार आ गये तो नीचे गिरते भी देर नही लगती है। अपना उपदेश ही, अपने विचार ही अपने को ऊंच अथवा नीच बनाते हैं। इन विचारों के साथ राजा दूसरे गढ़पर चढ़ा। वहां पहुंचने पर उसने छत्र, चवर और खड्ग आदि राजचिह्नो को अलग रख दिया। क्योकि समवसरण का यह कायदा है, कि अपने वैभव के सर्व चिह्न यहां उतार दिये जावे। अब राजा तीसरे गढ़पर चढा, जहां पर कि भगवान् विराज रहे थे। वहां पर पहुचते ही विचार आया कि अब मुझे इन वस्त्राभूषणो को धारण करने की आवश्यकता नही है। यह विचार आते ही राजा एक-एक करके उन्हे उतार कर फेंकने लगा। भाई, जिसके हृदय से भौतिक पदार्थों के प्रति रहने वाला ममत्व भाव दूर हो जाता है, वह फिर उनकी परवाह करेगा क्या ? नही करेगा। अब सरदार और साथ के अन्य लोग देख कर विचारते हैं कि राजा यह क्या कर रहा है ? राजा के हाथ अब सिर के केशो पर पडे जो तेल से सुगंधित हो रहे थे और [illegible] जिनके ऊपर मडरा रही थी। राजा ने एक-एक करके केश [illegible] कर दिया। साथी लोगों ने कहा—महाराज, यह क्या कर रहे हैं ? राजा बोला—मेरी आत्मा मुझे जो प्रेरणा दे रही है, वही कर रहा हूं। सरदारों ने कहा—स्वामिन्, अभी आपके लिए इसका अवसर नहीं है। राजा ने कहा—आप लोगो के लिए नहीं है किन्तु मेरे लिए तो यही अवसर है। मेरे पीछे निरन्तर काल लगा हुआ है, [illegible] रहा है और बुढापा आ रहा है। अब मैं इन सबसे निर्भय होना चाहता हूं। अब मुझे न तो भवों के बीच में और न [illegible] के बीच में ही रहने की इच्छा है। अब तो मुझे निर्भय बनना है। [illegible]। [illegible] राजा ने एक की भी बात नहीं मानी। [illegible] कहते हैं कि जिनको [illegible] वैराग्य [illegible] [illegible] मान नहीं होते हैं।

वैराग्य के प्रकार

भाइयो वैराग्य भी कई प्रकार का होता है। जैसे—चटक-वैराग्य, मटक वैराग्य, मसाणिया वैराग्य और खीचड़िया वैराग्य। चारो वैराग्यो को तो खर्च खाते माडो, जैसे ही हैं। इनको बटा-खाते मे नही ले जा सकते हैं। अब चटक वैराग्य क्या है, यह सुनिये—घर मे स्त्री पुत्रादि से जरा सी भी अनवन हुई कि बोले—आप अपना घर संभालो, मैं तो साधु बनता हू। यह कह कर साधु बनने के लिए घर से बाहिर निकले। मार्ग मे कोई साथी मिला और उसने कहा कि भाई, घर-गृहस्थी मे तो ऐसी खट-पट होती ही रहती है। दुनिया तो निसड्डी है, यहा पर नकटाई किये बिना काम नही चलता है। चलो भाई, घर चलो। इस प्रकार साथी के कहने पर पीछा घर चला आया और उधर वैराग्य भी चला गया।

अब मटक वैराग्य को सुनिये। कही किसी स्थान पर पाच-सात लोग वैठे है और बाते चलते-चलते वैराग्य की बाते चलने लगी। किसी ने कहा कि देखते क्या हो ? आप यदि दीक्षा लो तो मैं भी तैयार हू। सामने वाला कहता है कि आप यदि दीक्षा लेवे-तो मैं भी तैयार हू। यह उनकी खाली मटक है, दीक्षा लेने वाला कोई नही है।

तीसरा है मसाणिया वैराग्य। अल्प आयु मे किसी का मरण हो गया। उसे लेकर मसाण मे गये। वहा पर लोग आपस मे कहते है कि भाई, बडी अनहोनी वात हो गई ? देखो—जरासी उम्र मे यह वेचारा चला गया। ससार का कुछ भी सुख नही देख सका ? यह संसार असार है। इसे धूल दो और दीक्षा ले लो। इस प्रकार परस्पर मे कुछ देर तक वैराग्य की वातें करते हैं। इतने मे वह जलकर खाक हो गया। वहा से रवाना हुये, स्नान किये, कपडे सूखे और उनके साथ ही वह वैराग्य भी सूख गया। अब कहने लगे कि अरे, लोग तो इस प्रकार मरते ही आये हैं सो क्या घर-वार थोडे ही छोडा जा सकता है और साधुपना भी क्या लिया जा सकता है ? यह मसा-णिया वैराग्य है।

चौथा है खीचडिया वैराग्य ! कोई मुनिराज तपस्वी थे। जोधपुर जैसा

शातावकारी क्षेत्र और दाता भी उत्तम उदार हृदय वाला मिल गया। मुनि-राज गोचरी में ताजे घी में बने पकवान, घृत-पूरित खीचड़ी और इसी प्रकार की भिक्षा लेकर स्थानक में आये। उन्होंने अनजाने में गोचरी के पात्रों को खुला रख दिया। अन्यथा वस्त्र से ढककर रखना चाहिए। वहां पर एक मन चला भूखा व्यक्ति बैठा हुआ था। उसकी दृष्टि पात्रों पर पड़ गई। वह विचारने लगा कि साधुपना तो बहुत आराम का है। न कहीं जाना पड़े, न आना पड़े और न कुछ परिश्रम या काम ही करना पड़े। और बढ़िया-बढ़िया माल खाने को मिले। हम भी अब साधु बन जाते हैं, ऐसा उसने मन में विचार किया और उसी समय मुनिराज के पास जाकर अपनी भावना व्यक्त कर दी। मुनिराज ने कहा—भाई, साधुपना कष्टदा बहुत है, यह खांडे की धार पर चलने के समान है। यदि तेरे भाव साधु बनने के हैं, तो आ जा। व्याख्यान का समय था, इसलिए स्त्री-पुरुष आने लगे। महाराज भी पाट पर बैठकर व्याख्यान देने लगे। उस खीचड़िया वैरागी ने भी व्याख्यान में बहुत सिर हिलाया और कहने लगा कि महाराज का उपदेश बहुत ठीक है। इसे सुनकर तो मेरा मन संसार से उदास हो गया है, यह संसार तो बिलकुल असार है, आदि। व्याख्यान में उसकी मां और स्त्री भी आई हुई थी। लोग कहने लगे कि आज यह क्या कह रहा है? ऐसी वैराग्य की बात तो आज तक इसके मुख से कभी नहीं सुनी है? व्याख्यान के समाप्त होते ही उसने अपनी मां के पास जाकर कहा—मां सा०, अब तो मैं साधुपना लूंगा। मां ने उसके मुख से जब यह बात सुनी तो सोचने लगी कि यह क्या साधुपना लेगा? यह तो खाऊ नर है। उसने बीदणी को घर जाकर बढ़िया भोजन बनाने का इशारा कर दिया। फिर वह विचारने लगी कि आज अचानक इसे यह वैराग्य कहां से पैदा हो गया है? कहीं इसने मुनिराज के पात्रे में माल-मसाला तो नहीं देख लिया है? जिसे देखकर इसके भाव साधु बनने के हो गये हैं? मां ने कहा—बेटा, साधुपना सरल नहीं है। फिर भी यदि तुझे लेना है तो खुशी से लेना। मैं तुझे रोकने वाली नहीं हूं। परन्तु एक बार घर चल और मेरे हाथ से भोजन तो कर ले। फिर पीछे आगे की बात

करना । उसने कहा अच्छी बात है मा सा० ! घर को चलिये । उसे लेकर मा घर गई । घर पर बीदणी ने पहिले से ही बढिया रसोई बनाकर तैयार करली थी । इसके घर पहुचते ही बाजोटिया, थाली कटोरिया रख दी । लच्छेदार फुलके और बढिया चटपटे चार-छह प्रकार के साग परोसे, मीठा और नमकीन भी परोसा ! मा पास मे बैठकर पखे से हवा करने लगी । ये सव ठाठ-वाट देखकर उसके विचार बदल गये और विचारने लगा कि इतना आराम साधुओ को कहा रखा है ? वहा तो यह है कि कभी राजाशाही भोजन मिल जाय और कभी कडका भी करना पडे । हमे तो साधु नही बनना है । अब उसका वैराग्य कपूर के समान उड गया । अव वह खा-पीकर सीधा दुकान पर चला गया । अव आज्ञा मागने की बात समाप्त हो गई, उसकी आवश्यकता ही नही रही । पहिले तो वह खूब सामायिक करता था, प्रतिदिन नियम से व्याख्यान सुनने को जाता था । अब वह सब छोड दिया । दो-चार दिन के बाद उसकी गली से वे ही मुनिराज आ रहे थे और यह भी घर पर जा रहा था, तो दोनो का आमना-सामना हो गया । उसे देखते ही मुनिराज ने कहा—भाई, तुम तो साधुपना लेने वाले थे और अब तो सामायिक करना और व्याख्यान मे आना भी छोड दिया है ? वह बोला—महाराज, हम तो ऐसे ही हैं । वैराग्य आकर के चला गया ।

ये चार प्रकार के वैराग्य तो ऊचे रखने जैसे हैं, किसी काम के नही हैं । अब पाचवा वैराग्य है किरमिची रग का । यदि एक बार पक्का रंग चढ गया तो फिर धोने से भी उतरता नही है । ऐसा ही वैराग्य दशार्णभद्र राजा को आया । तो क्या किया कि—

आया अजब उन्हे वैराग्य, राजाजी तैयारी कर डाली ।
जाना भौतिक सुख भयखान,स्वार्थ की दुनिया है सारी ।

भाई, सच्चा वैराग्य यदि आ जाय तो वह किसी को रोका हुआ रुकता नही है । मा-वाप, भाई-वहिन, पुत्र, या मित्र कोई भी क्यो न रोके, पर वह रुकता नही है । वह तो अगला मार्ग पार करके ही रहेगा । राजा दशार्णभद्र का वैराग्य वढा और उन्होने केशो का लुचन

कर लिया और आगे बढ़ा। अब इधर एक ओर से तो दशार्णभद्र राजा जा रहा है और दूसरी ओर इन्द्र जा रहा है। राजा ने इन्द्र का हाथ पकड़ लिया और कहने लगा कि—

सुनो सुर राजजी, होड़ करी तो पक्की आप निभावना।
पीछे पग तो नाही देना, कथन किया तिस पर ही रहना।
जन्म सफल जग मे जहेना ॥ सुनो सुर राज जी० ॥१॥
स्वाभिमान रखना अब आगे, जिससे कलंक नहीं लागे।
अंतर की सद्ज्योति जागे ॥ सुनो सुर राज जी० ॥२॥

हे सुरराज, हे इन्द्र महाराज, आपने जो मेरे साथ होड कर ली है, तो उसे अब बराबर निभाना। कहीं ऐसा न हो कि पैर पीछे दे देवें? आप हाथियो को सजा करके आ गये और बराबरी कर ली! परन्तु मैं कहता हूँ कि या तो पहिले बराबरी करनी नहीं। और यदि बराबरी करनी, तो फिर पीछे पैर नहीं देना चाहिए। अब तो आपको मेरे साथ ही रहना चाहिए। राजा दशार्णभद्र कहते हैं कि

आओ इन्द्र, सयम लेस्या, प्रभु भक्ति मे चित्त देस्यां।
अब भौतिकता मे नहीं येस्या, कर्मों ने बाली रेस्या ॥

× × ×

प्रभु भक्ति भारी करन हित त्यारी नृप करी,
सवारी को भारी जनपति मदान्धी बन गया।
बिडौजा राजा को भ्रमित कर डारा उस घड़ी,
तभी दीक्षा लेके सचीपति लगाया निज पगे ॥

अब आप भी मेरे साथ आ जाओ। मैं भी साधुपना लूंगा और आप भी लेवें। फिर अपन दोनों भगवान की भक्ति मे रहेंगे, जीवन को सफल करेंगे और आत्म कल्याण करेंगे। राजा दशार्णभद्र के इन वचनो का चाबुक लगते ही इन्द्र की आंखे खुल गईं। उसने सोचा कि अरे, यह तो साधु बनने को ही तैयार हो गया है, परन्तु मैं कैसे साधुपना लेऊं? मुझसे तो इसका लेना भारी है। इसने तो गजब का काम किया है? अब मैं इसको क्या उत्तर दूं? यह कह रहा है कि पीछे पैर मत रखना और मा का दूध मत

लजाना। तो मा के दूध की लाज रहे, चाहे न रहे। पर इस साधुपने का धारण करना तो मेरे से नही हो सकता। इन्द्र बोला—

हा, साधुरूप करू एता, जम्बू द्वीप भरे जेता।
पण सजम तो नहीं ले सकता ॥१॥
अहो म्हाराजा, थे जीता सौबार चरण बलिहारी ॥

हे राजन् मै साधु के इतने रूप बना दूँ कि सारे जम्बू द्वीप को भर दूँ। पर एक समय का भी सयम लेकर मै साधु बन जाऊ, यह सभव नही है। मैं सयम को धारण करने की सामर्थ्य नही रखता हू। राजा बोला --बस, इन्द्र महाराज, इतनी ही सामर्थ्य है ? इन्द्र ने कहा—राजन्, आप मुझे भला कहे, चाहे कुछ भी कहे। यहा पर आकर आप जीते और मैं हारा। आखिर इन्द्र को कहना पडा कि तेरी मा को ही धन्य है। इस प्रकार इन्द्र को जीत कर राजा भगवान के पास गये और तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान से कहा—भगवन, तारो, तारो, मुझे तारो। भाइयो, देखो -राजा की भावना वन्दना करने को चलते समय कैसी थी ? वे भगवान के दर्शन करने और उपदेश श्रवण करने को घर से निकले थे। उस समय साधुपने के भाव नही थे। परन्तु समवसरण तक पहुँचते-पहुचते क्या भाव बढे कि साधुपना ही धारण कर लिया। आप लोग भी यहा पर उपदेश सुनने के भाव लेकर ही घर से आये है। परन्तु आपने अपने भाव पीछे किसी को समझाये हैं क्या ?

राजा दशार्णभद्र की उस प्रेरक घटना के विषय मे कहा है--

[illegible] कि मनुष्य के मस्तिष्क मे क्या क्या बाते भरी हुई है ? उसमे कितनी शक्ति है और वह क्या क्या काम कर सकता है ? मनुष्य वह काम कर सकता है, जिसे इन्द्र भी नही कर सकता है। इन्द्र तो भगवान के चरणो मे सदा पडता ही है, किन्तु आज वह दशार्णभद्र राजा के चरणो मे भी पड गया। आज के मानव मे कमजोरी भी ऐसी आ गई है कि कायरता की बाते उसके दिमाग मे दूर नही निकलती है। और इसी कारण वह अपना मानवपना व्यर्थ गवा देता है। तथा कभी कभी तो वह मानवता से भी पतित हो जाता है। आप लोग स्वय अपने को ही देखे कि आपने

हिम्मत की तो मारवाड छोडकर दिसावर मे गये । वहा पर कितने ही लोगो की पगचपी की, रसोई बनाई और अनेक प्रकार के काम किये तो आज लखपति बन गये, या नही ? यदि यही बैठे बैठे कहते रहते कि जायेगे जायेंगे तो लखपति बन जाते ? जब गये, तब लाखो-करोडो रुपये कमा लिये । और दूसरे देश मे गये तो क्या ? मार्ग मे ही मृत्यु आ जाय तो वही के वही रह गये ? यह सब रात्रि मे आनेवाले स्वप्न के समान है । स्वप्न आया और अनेक प्रकार की तैयारिया देखी राग-रग आए । परन्तु आखे खुली तो क्या है ? कुछ नही है । ससार का यह सब कारोबार भी एक स्वप्न ही है । आख मिचौनी के बाद यहा भी कुछ नही है । वह रात का स्वप्न पाच दस मिनिट का आता है । और यह स्वप्न दस, पचास या सौ वर्ष का होता है । हमारा कितना बडा शरीर है, कितनी बडी बुद्धि है । परन्तु मरने के बाद भी कुछ है क्या ? नही, कुछ नही है । फिर तो सारा मामला ही सुनसान हो जाता है । यह शरीर एक मिट्टी के पुतले के समान है । स्वप्न यह भी है और वह भी है । किन्तु फिर भी स्वप्नवत इस ससार मे सार लिया जा सकता है । यदि सार लेने वाला चतुर हो तो प्रत्येक स्थान मे प्रत्येक वस्तु मे से ले सकता है । अरे, नेहरूजी को जेल मे बन्द कर दिया ब्रिटिश सरकार ने, तो उन्होने वहा पर भी सार निकाला और एक पुस्तक लिख दी—'मेरी जेल यात्रा' । और वहा भी साहित्य का सर्जन किया, जहा मूर्खों का कुराग था, और उनकी अनेक बाते ही सदा सुनने को मिलती थी । भाई, यह तो कुछ लोगो के लिए कुछ समय की जेल है । और यह सारा ससार सभी का जेल खाना है । कहा है कि—

एक रयनि अंधेरी बिजली चमकेजी एक फंदो फंद मे रहते थे,
सफील गिरी पहरायत सूते, बंदीवान् छूप पहते थे ।
सब ही निकसे पर हूँ सानन जी यह अवसर नहीं आने का,
बहुत अच्छा, पण जरा लेटूं, है इरादा जाने का ॥
जे निकस्या ते घर को पहुंचे जी, सूताते उजीर रह्या ।
सब ही मार्ग, बच बहु निकसे, इस रीते जगदासी रह्या ।

मत जानो जग सच्चा, है यह कच्चे से कच्चा।
वीर तणी है वाचा, आता नहिं अवसर फेरी।
तुम भाग चलो तो कहो जी प्यारे, आगे नहीं मिलती सेरी ॥

एक बडा भारी शहर है। उसमे जेल भी है और महल भी हैं। सपूतो के लिए महल है और कपूतो के लिए जेल है। दोनो पर ही पहरा लगता है। उस जेल मे सैकडों कैदी सड रहे है, दु ख पा रहे हैं, उनकी स्वतन्त्रता छिन चुकी है और परतन्त्रता मे पडे हैं। प्रकृति ने साथ दिया, मेघ-घटा आई और जल बरसा। इससे जेल की एक ओर की सफील गिर गई। इधर पहरेदार नीद मे बेखबर सो रहे है। ऐसे समय मे एक वृद्ध कैदी ने हित भावना से प्रेरित हो कर कहा—भाइयो, जागो, चेतो और भाग जाओ। इस समय तुम्हारे जीवन का यह सबसे सुन्दर और सुनहरी अवसर आया है। इससे लाभ उठा लो। सौभाग्य से प्रकृति ने यह स्वर्ण अवसर दिया है। इस समय जिधर से निकलना चाहो उधर से निकल जाओ। यदि एक वार इस जेल से निकल गये तो फिर पहरेदारो के हाथ मे नही आओगे। वृद्ध की यह हितकारी बात सुन करके भी वे सोते हुए कैदी बोले—बाबा, तेरी बात तो सही है। परन्तु हम लोग कितने ही दिनो से गर्मी मे तप रहे हैं। प्रकृति ने यह वर्षा बरसाई है तो ठडी ठडी हवा की लहरे आ रही है। अभी तो रात बहुत बाकी है। अत. अभी घटे-दो घटे सुख की नीद सो लेने दो, जरा आराम कर लेने दो। बाद हम लोग बाहिर निकल जायेंगे। वयोवृद्ध कैदी ने फिर कहा कि आराम मतकरो और यहा से निकल जाओ। यहा से बाहिर निकल जाने के बाद जीवन भर खूब आराम करना। परन्तु उन कैदियो ने कहा—बुड्ढे, हम लोग तेरी बात मानने को तैयार नही है। हम तो पहिले आराम करेंगे और फिर यहा से जायेगे। उन कैदियो मे जो समझदार थे, उन्होने बुड्ढे की बात मान ली और तुरन्त निकल भागे। जो निकल गये, वे तो स्वतन्त्र हो गये। परन्तु कुछ ने बुड्ढे की बात नही मानी और आराम मे पडे रहे। वे जब सो ही रहे थे तब पहरेदारो की नीद खुल गई। उन्होने देखा कि जेल की सफील गिर गई है, तो एक दम विसिल दी—सीटी बजाई

कि खतरा है। विसिल के सुनते ही फौज आगई और उसने जेल के चारो ओर घेरा डाल दिया। अब आप बतावें कि उन आराम करने वाले कैदियो को अब कब तो मौका मिलेगा और कब वे वहा से भागेंगे ? समझाने वाला क्या मूर्ख था ? और आप लोग क्या हैं ? यह नरक रूपी जेल है और पुण्य-वानी रूपी सफील गिरी और मनुष्य का भव मिल गया। अब बुड्ढे कैदी के समान गुरु महाराज कहने लगे कि 'बुज्झ बुज्झ' जाग, जाग, बोध को प्राप्त कर। फिर यह अवसर नही आने वाला है। अब आप कहते हैं कि महाराज, सच कहते हो। परन्तु अभी तो बालपना है, खेलने का समय है। मुनिराज ने कहा कि ठीक है। अब आगई जवानी, तो गुरुदेव ने फिर चेताया कि अब तो चेत जाओ। सुनकर आप कहने लगे कि भोले हुए हो महाराज, अभी तो हमे कुछ भी नहीं सूझता है कहा है कि—

पगड़ी झुकाय प्यारो टेडो-टेड़ो चाले।
जवानी का जोर माहे मूंछो वल घाले।
ते तो हाय जवानी दगो दे दियो रे।
नर भव निकम्मो गमाय दियो रे।
प्रभु भजवे को लाहो नहीं लियो रे॥

भाई, जवानी आई तो हड्डियो मे करार, खून मे जोश, बोली मे जोश, कपड़े पहिने वे भी चुस्त वे भी जोश के। और पग रखियें भी चड़चू-चडचू बोलें, तो वह फिर क्यों नहीं कडक बोले ? जवानी मे आखें चढ गई सातवें आसमान पर कि बस, मैं ही हू, मेरे सामने कोई दूसरा नही है। पर भाई, इतना अहंकारी मत बन। यदि बुढापे की लपेट मे आ गया, तो सब जल जायगा। कहा है कि—

ओ चटको चार दिनों को, चेतन लटको छोड़ परोनीरे।
खटको काल तणो है खोटो सटके धर्म करोनीरे।

देख, यह चटक और मटक, यह नखरा और मिजाज केवल चार दिनो का है। वह भी पुण्यवानी पोते होवे तो चलता ही है। भाई, जवानी गई और बुढापा आ गया। यदि फिर भी नहीं मानेगा, तो पहिले आया बुढापा,

फिर आया कुढापा, फिर आया अधापा और फिर आ गया भु ढापा । लोकोक्ति भी है कि 'साठा बुद्धि नाठा' । बुढापा आते ही और साठ वर्ष का होते ही बुद्धि निकल जाती है और अक्ल मारी जाती है । फिर तो आप लोग ही अपने बडेरो से कहने लगेगे कि चुपचाप क्यो नही पडे रहते ? दिन भर क्या कट-कट किया करते हैं ? भाई, फिर तो बुढापे मे सारी बाते आ जायेगी । फिर भगवान् की वाणी सुनने का मौका मिलेगा क्या ? जैसे जेल मे कैदी पडे हुए सडते रहते हैं, वैसे ही तेरी भी बुढापे की जेल मे पडे पडे जिन्दगी पूरी हो जायगी ? इसलिए कवि कहता है कि इस जेल से निकलना होवे तो निकल जा, अभी निकल भागने का अवसर है । नही तो फिर चौरासी लाख योनियो की जेल बडी लम्बी है । फिर वहा से निकलना बहुत कठिन है और मनुष्य भव पाना तो और कठिन है । परम सवेगी प० दौलतराम जी कहते हैं कि—

दौलत समझ, सुन, चेत, सयाने, काल वृथा मत खोवे ।
यह नर-भव फिर मिलन कठिन है, जो समकित नहि होवे ।।

अरे प्राणी, अब भी इस बुढापे मे भी समझ जा, चेत जा । हे सयाने, चतुर मनुष्य, तू समय को वृथा मत खो । यदि तूने समकित प्राप्त नही किया, तो फिर इस मनुष्य भव का पाना बहुत कठिन है । वे आगे आप लोगो को सम्बोधन करते हुए फिर भी सावधान करते है कि—

यह मानुष पर्याय, सुकुल, सुनिवौ जिनवानी ।
इह विध गये न मिलें सुमणि ज्यो उदधि-समानी ।।

अरे भाई, जैसे कोई हाथ आई हुई उत्तम चिन्तामणि यदि असावधानी से समुद्र के बीच मे गिर जाय और पानी मे समा जाय, तो जैसे उसका मिलना अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार हाथ मे आई यह मनुष्य पर्याय, यह परम पवित्र जिनवाणी का सुनने का अवसर मिलना भी वैसा ही कठिन है ।

भाइयो, यदि आप लोगो को पर भव का कुछ भी खटका होवे तो तैयार हो जाओ और धर्म के लिए केसरिया वाना पहिन लो । देख लो दशार्णभद्र

ने लिया केसरिया बाना तो साधुपना लेकर के भी बैठे नही रहे। खूब जोरदार कमाई ऐसी की कि फिर पीछे लौटने का काम ही नही रहा। काम करने का यही आनन्द है। प० दौलत रामजी आप जैसे भव्य जीवो को सम्बोधते हुए और भी कहते हैं कि—

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये,
चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निजपद वेइये।
कहा रच्यो पर पदमे, न तेरो पद यहै क्यो दुःख सहै।
अब दौल होहु सुखी स्व पद रचि,दाव मत चूको यहै॥

हे भव्य प्राणी, संसार मे रहते हुए यह पचेन्द्रियो के विषयो की पान की रागरूपी आग सदा जल रही है, उसे शान्त करने के लिए तो समता-भावरूपी अमृत का ही तू सेवन कर। अनादिकाल से तूने इन विषय और कषायो का सेवन किया और उनका सेवन करते हुए तूने अनन्तकाल बिता दिया है। अरे, अब तो इन विषय-कषायो को छोड़, इनका त्याग कर और अपने निजपद मोक्ष को प्राप्त करने का प्रयत्न कर। संसार के इन पर पदो मे तू क्यो रच रहा है ये तेरे नही है। फिर क्यो इनके पीछे पड़कर के दुःख को सह रहा है। दौलतराम जी, अपने आपको सम्बोधित करने के बहाने सब लोगो को सम्बोधित करते है कि इन सब झझटो को छोड़कर और अपने आत्मपद मे रमकर सुखी बन जा। इस दाव को, मौके को मत चूक।

भाइयो आज भादवा वदी बारस है स्त्रियो के दस्ठ धारण है और कल तेरस है। कहा है कि 'अनपूछ्या मुहूर्त भला, कै तेरस कै तीज'। यह तो बिना पूछा हुआ मुहूर्त है। यह विवाह-शादी का नहीं मकान, गोठ और घूघरी का नही है। परन्तु यह आत्म-कल्याण का मुहूर्त है। कल से पर्युषण-पर्वाधिराज के आठ दिन है, अब उनके आठ विभाग कर लेना चाहिए। एक दिन सामायिक का करो, एक दिन दया-पालन का करो, एक दिन पौषध का, एक दिन क्षमा का, एक दिन अहिंसा का, एक दिन परोपकार का, एक दिन समता लाने का। और आठवा दिन है सम्वत्सरी का, साल भर का लेखा-जोखा मिलाने का दिन है। मेरा तो आप सब लोगो से आग्रह

पूर्वक यही कहना है कि इन दिनों मे खूब धर्म की अभिवृद्धि करना, और खूब सेवा करना। जनता भी इन दिनो विशेप रूप से आयगी। इसलिए उसकी सेवा मे तैयार रहना, जिससे कि व्याख्यान मे किसी प्रकार की गड-बडी नही होने पावे। उस समय सवर करके काम करना। व्यवस्था ठीक रखने से सबको व्याख्यान सुनने का मौका मिलेगा। भाई कल से धर्म का मेला है तो हल्ला-गुल्ला भी होगा। फिर आप लोग कहेगे कि महाराज, लाउडस्पीकर पर बोलो। पर मैं तो न पहिले वोला हूं और न आगे वोलूंगा। इसलिए सब भाई-बहिने अत्यन्त शान्ति के साथ सुनें, जिससे सबको सुनने का अवसर प्राप्त हो। तथा व्याख्यान के समय से पूर्व ही जल्दी आना और सकडाई मे बैठना, ताकि सभी आने वाले वैठ सके। और आपस मे वातचीत मत करना, सब मौन धारण कर लेना, तभी निराकुलतापूर्वक आपकी सामायिक भी सधेगी और व्याख्यान सुनने का आनन्द भी प्राप्त होगा।

वि० सं० २०२७ भाद्रपद कृष्णा १२

जोधपुर

●●

७ | धर्म, यह वीरो का है

सज्जनो, अभी आपके सामने मुनि रूपचन्द जी ने अर्जुन माली का अधिकार सुनाया। यदि इस आख्यान पर आप लोग गहराई से विचार करें तो ज्ञात होगा कि भगवान महावीर का हृदय कितना विशाल था जैन धर्म की यह उदारता रही है कि उसने यह कभी नही कहा कि जैन धर्म किसी व्यक्ति विशेष का ही धर्म है, या किसी जाति विशेष का, या किसी प्रमुख कुल का धर्म है। अथवा किसी की धरोहर ही है। परन्तु भगवान् ने सबके सामने यही कहा कि जो भी व्यक्ति शुद्ध हृदय से इसे स्वीकार करना और धारण करना चाहे, वह स्वीकार कर सकता है और इसे धारण कर अपना उद्धार कर सकता है।

आप लोग देखिये—भगवान् ने हृदय की इसी विशालता से क्षत्रिय जाति के अनेक मुनि बनाये, ब्राह्मण जाति के, वैश्य जाति के और शूद्र जाति से भी अनेक शिष्य बनाये। इनमे सबसे निकृष्ट समझे जाने वाले अर्थात् कुत्ते का मास खाने वाले चाण्डाल कुल मे जन्मे व्यक्ति को भी जैन धर्म स्वीकार करने से इनकार नही किया। किन्तु कहा कि तुम्हे भी धर्म धारण करने का अधिकार है।

धर्म मे भेद की दीवारें क्यों ?

इधर हम देखते है भगवान् महावीर के समय से ही ब्राह्मणो का स्वयं

अधिक बोलबाला था। उनका उस समय धर्म के ऊपर एक छत्र शासन था। उस समय ब्राह्मणो ने यहा तक कानून बना दिये थे कि—

> न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविस्कृतम्।
> न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥
> यश्चास्योपदिशेद्धर्मं यश्चास्य व्रतमादिशेत्।
> सोऽसवृत तमो घोरं सह तेन प्रपद्यते ॥[1]

अर्थात्—शूद्र के लिए ज्ञान नही देना चाहिए, न यज्ञ का उच्छिष्ट और हवन से बचा हुआ भाग, और न उसे धर्म का उपदेश ही देना चाहिए। यदि कोइ शूद्र को धर्मोपदेश और व्रत का आदेश देता है, तो वह शूद्र के साथ असवृत नामक घोर अन्धकारमय नरक मे जाता है।

शूद्रो के लिए तथा स्त्रियो के लिए वेद पढने का स्पष्ट निषेध था—**'स्त्री शूद्रौ वेद नाधीयेताम्'**। किन्तु शूद्रो के लिए तो ब्राह्मणो ने यहा तक व्यवस्था कर रखी थी कि जिस गाव मे शूद्र निवास करता हो, वहा पर वेद का पाठ भी न किया जावे। यदि धोका देकर, वेप-बदलकर कोई शूद्र वेद-ध्वनि को सुनले तो उसके कानो मे गर्म शीशा और लाख भर दी जावे। और यदि वह वेद-वाक्य उच्चारण करे तो उसकी जिह्वा का छेद न कर दिया जाय। तथा वेद-मत्र याद कर लेने पर उसके शरीर के दो टुकडे कर दिये जावे।[2]

---

१ वशिष्टस्मृति १८।११-१३

२ **अथ ही अस्य वेदमुपश्रृण्वतम्त्रपु-जतुभ्यां श्रोत्र-प्रतिपूरण-मुदाहरणे जिह्वा-च्छेदो धारणे शरीरभेद।** (गौ० सू० १।४)

टीका—अथ हेति वाक्यालङ्कारे। उपश्रुत्य बुद्धिपूर्वकामक्षर ग्रहण मुपश्रवणम्। अस्य शूद्रस्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपु-जतुभ्या त्रपुणा शीसकेन जतुना च द्रवीकृतेन श्रोते प्रतिपूरयि तव्ये। स चेद् द्विजातिभि: सह वेदाक्षराण्युदाहरे दुच्चरत्, तस्य जिह्वाछेद्या। धारणे सति यदाऽन्यत्र गतोऽपि स्वय- मुच्चारयितु शक्नोति, ततः परश्वादिना शरीर मस्य भेद्यम्।

(गौतम धर्म सूत्र, अ० २ सू० ४ टीका। पृष्ठ ८९-९०। पूना सस्करण वर्ष १९३१)

इस प्रकार धर्म के ठेकेदार लोगों ने मानव-मानव के बीच धर्म के नाम पर भेद की दीवारें खड़ी कर दी थी। उस समय मे अन्याय और अत्याचार की पराकाष्ठा थी। इसी अन्याय और अत्याचार को मिटाने के लिए और धर्म के मामले मे सबको समान अधिकार दिलाने की दृष्टि से भगवान ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि जैन धर्म को किसी भी जाति का कोई भी व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक स्वीकार कर सकता है। धर्म के विषय मे सबको समान रूप से अधिकार है। कहो भाइयो, क्या अधिकार नही है ? है। जो करना चाहे, उसको ही अधिकार है। ऐसा तो वे लोग ही कह सकते है कि इसको अधिकार है और इसको नही है—जो कि जाति और कुल के मद से उन्मत्त हो रहे हो। जो सत्ता के लोलुपी हो, और दूसरो को नीचा बताना चाहते हो। किन्तु जिनका हृदय विशाल है, जो समस्त संसार को अपना कुटुम्ब मानते हो, उनके मुख से ये शब्द नही निकल सकते कि अमुक को धर्म-सेवन का अधिकार नही है। कहा भी है—

अय निज परोवेति गणनालघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह मेरा है और यह पराया है, ऐसी गणना तो क्षुद्रहृदय वाले मनुष्य ही करते है। जिनका हृदय उदार है, चरित उदार है, उनके लिए तो सारी पृथिवी ही एक कुटुम्ब के समान है।

क्या गुड़ खाने मे जाति का भेद चलता है ?

भाइयो, जो तलवार जमीन पर पड़ी हुई है, उसे उठाने का तो अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है। परन्तु उसे उठा वही सकता है कि जिसके हाथ भी मजबूत हो, जिसके सीने मे शक्ति हो और जिसे शत्रु पर प्रहार करने की कला आती हो। मै आपसे पूछता हू कि गुड़ और शक्कर खाने का अधिकार क्या क्षत्रिय को ही है ? क्या ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र को उनके खाने का अधिकार नही है ? नही, सबको समान रूप से खाने का अधिकार है। गुड़, खांड, शक्कर, मिश्री और अमृत ये सभी मीठे पदार्थ है। इनमे हलके हलके

खाओ—तव भी ये मीठे है और रोने-रोते खाओ—तब भी ये मीठे ही प्रतीत होगे क्योकि उनका स्वभाव मीठा है, वह उनमे से कैसे जा सकता है ? इसीप्रकार इस धर्म को जो भी धारण करेगा, वह तो सभी देशो मे और सभी कालो मे मीठा अर्थात् सुख का देने वाला ही रहेगा। क्योकि सुख को देना उसका स्वभाव है। इसीलिए तो महापुरुषो ने कहा है कि **'धर्म सर्व सुखाकर'** अर्थात् धर्म सर्व सुखों का भडार है और सभी को सुख का दातार है, भले ही उसे धारण करने वाला किसी भी जाति का और किसी भी देश का क्यो न हो ? इसलिए इस जैनधर्म को जो भी स्वीकार करना चाहे, वह नि सकोच भाव से स्वीकार कर सकता है। परन्तु आश्चर्य की वात यह है कि ऐसा प्राणिमात्र का हितकारी सुखकारी और प्रेय (स्वर्ग) श्रेय (मोक्ष) का देने वाला विश्व-धर्म पाकर के भी कितने ही लोग इधर-उधर भटकते नजर आ रहे है ?

सत्य धर्म को पाकर भी....

भाइयो, जरा विचार तो करो कि कोई मनुष्य हाथी के हौदे पर बैठा है, छत्र लग रहा है, दोनो ओर से चवर ढोले जा रहे हैं और उसकी सवारी बाजार मे से होकर निकल रही है। उसने रास्ते में उस समय एक गधा देखा। उसे देखकर वह व्यक्ति विचार करे कि गधे कि सवारी कैसी होती है ? यह तो करनी चाहिए ? क्या उसका ऐसा सोचना उचित है ? और क्या लज्जा-जनक नही है ? घृणास्पद और निन्द्य नही है ? अरे भले आदमी, जव तुझे हाथी की सवारी मिल गई, तव फिर गधे की सवारी की क्या आवश्यकता है, उसकी क्या महत्ता है ? यह तो उसकी निरी मूर्खता है। इसी प्रकार जिसको मखमल और रेशम के कपड़े पहिनने को मिल गये, तो फिर वह टाट और जूट के कपडे पहिनने की भावना क्यो लाता है ? जिसको हलुआ-पूडी खाने को मिल रही है उसे ज्वार और वाजरे की रोटी खाने की क्या दरकार है ? इसी प्रकार जव आप लोगो को ऐसा उत्तम से उत्तम वीतराग देव का सर्व-हितैपी विश्व धर्म अनन्त पुण्यवानी से मिल गया, तो फिर इधर-उधर कुदेवो मे भटकने की ओर उनसे याचना करने की क्या

खुली रखते तो वे लोग हमारी दुकानो मे धूल डालते, तोड-फोड करते और माल का नुकसान कर देते। इसलिए बन्द करनी पडी। परन्तु भाई, यह भी कोई बन्द रखना है? जबर्दस्ती से बन्द कराई गई हैं। पर मैं तो यही कहूँगा कि अपनी इच्छा से त्याग किया जाता है, वही सच्चा त्याग है। बलात्कार से किया गया त्याग, त्याग नही कहलाता है।

भाइयो, किसी से लडना-झगडना नही और अपने गन्तव्य पथ पर स्वतत्र रूप से चलते रहना ही हमारे लिए सुखद और हितकारी है। दूसरे की इच्छा पर निर्भर रहकर जो कार्य करते हैं, वह ठीक नही। क्यो जब उसकी इच्छा नही होगी, तब नही करने देगा। इसलिए हमे स्वय विवेक-पूर्वक अपने करने योग्य कार्यों का निर्णय करना चाहिए और तदनुसार चलना चाहिए। यदि हम सत्य मार्ग पर चलें तो हमे कोई रोक नही सकता है। जब भी कोई समाज, देश, धर्म, या अपना निजी कार्य आवे, तब हिम्मत रखना चाहिए। विना हिम्मत के न कीमत रहती है और न गौरव ही रहता है।

शक्ति से ही गौरव मिलता है

जोधपुर नरेश महाराज भीमसिह जी को बादशाह ने दिल्ली के दरबार मे वुलाया गया। उस समय वादशाह ने इनकी हिम्मत की जाच करने के लिए पूछा—महाराज भीमसिह, आपको यह 'कमधज' की पदवी किसने दी है? उन्होने उत्तर दिया—वादशाह सलामत, यह पदवी किसी और ने नही दी है। इसे तो हमारे पूर्वजो ने, हमारी हिम्मत ने और हमारी शूर वीरता ने दी है। भाईयो, आप लोग इसका अर्थ भी जानते हैं? इसका अर्थ है कि रणक्षेत्र मे लडते हुए जिसका शिर शत्रु के प्रहार से कट जाय, फिर भी जो धड से लडता रहे,उसको कहते हैं—'कमधज, या (कवन्ध') वादशाह ने फिर पूछा—भीमसिह, क्या आज भी कोई इस प्रकार से लडने वाला है? यदि है तो ऐसे वीर पुरुप को मेरे सामने लाकर हाजिर करो! अन्यथा तुम्हारी यह पदवी समाप्त कर दी जायगी। तव भीमसिह ने कहा—हुजूर, आप समाप्त कैसे करेंगे—जवकि मैं वैसे वीर पुरुप को लाकर खिदमत मे पेश करूगा।

सरदारो ने रात भर मे सोच ही लिया होगा ? अब इस 'कमधज' की पदवी को कायम रखने के लिए कौन तैयार है ? महाराज की यह बात सुनते ही दरबार मे फिर सन्नाटा छा गया। तब महाराज ने कहा—क्या सभी की शेखी निकल गई ? क्या हमारे दरबार मे अब कोई हिम्मत वाला नही है ? अब क्या इस पदवी को रखने के लिए मुझे ही सिर देना पडेगा ? जब आप लोगो मे से कोई भी तैयार नही है, तब इस पदवी की आन रखने के लिए मुझे तो सिर देना ही पडेगा। मैं अपने जीते जी इस पदवी को खत्म नही होने दू गा।

ज्योही महाराज के मुख से यह ललकार सुनी तो कु वर सुमेरसिह से नही रहा गया। उसका खून खौल उठा। उसने खडे होकर पूछा—महाराज, क्या बात है ? उन्होने बताया कि कोई अपना सिर उडाकर लडने के लिए तैयार हो तो 'कमधज' की पदवी कायम रह सकती है अन्यथा नही यहा पर तो कोई तैयार नही दिखता है। सारा दरबार सिर लटका करके बैठा हुआ है। मालूम होता है कि कोई राठौड नही रहा है। जब राठौड ही खत्म हो गये तब राजपूतो का गौरव ही खत्म हो गया। वह मेडतिया चादावत इस बात को सुन सकता था ? कभी नही। वह तत्काल खडा हो गया और बोला—क्या यह ताबेदार आपकी चुनौती को स्वीकार कर सकता है ? यदि इस तुच्छ सेवक को आज्ञा हो तो मैं अपने सिर को उडा करके लडने के लिए तैयार हू। यह सुनते ही सब पूछने लगे कि यह कौन है ? उन्हे बताया गया कि यह कुडकी का राजकुमार है। महाराज ने उसकी वीरता और हिम्मत की सराहना की और कहा—नौजवान, तुम अभी शादी करके मुजरा करने के लिए आये हो। अभी तुम्हारे ओठो का दूध भी नही सूखा है। फिर तुमने इतने भारी काम को करने की हिम्मत कैसे कर ली ? तुम अपनी बात पर सोच-विचार कर लो। तब उसने उत्तर दिया कि—

सोचे सो क्षत्रिय नहीं, करे वखत पै काम।

महाराज, क्षत्रिय सोचता नही है, बल्कि वह कर गुजरता है। सोचने वाले तो महाजन लोग होते है। यदि क्षत्रिय सोचने बैठेगा तो फिर भूमि

बढाये और चरण-स्पर्श करके उन्हे आदर के साथ सुख-शैय्या पर बैठाया। कुछ प्रारभिक बातो के पश्चात उसने उत्सुकतापूर्वक पूछा—पतिदेव, आज आपके मुख-मण्डल पर यह अद्भुत रूपश्री कैसे दृष्टि गोचर हो रही है। इतना उल्लास तो मैंने परणते समय भी नही देखा था। तब कुमार ने बडे प्रेम से कहा—राजदुलारी, मैं राज-दरबार के सामने यह प्रतिज्ञा लेकर आया हू। मैंने महाराज की चुनौती को स्वीकार करते हुए यह बीडा उठाया है। कहो रानी, मेरी इस प्रतिज्ञा से तुम्हे खुशी हुई, या नही ? कुवरानी ने मुस्कराते और लजाते हुए कहा—धन्य है आपकी वीर-प्रतिज्ञा को। आपने राठौड वश का नाम उज्ज्वल कर दिया। सारे क्षत्रियवश की शान रख ली। आपने बहुत उत्तम कार्य किया है। अपनी पत्नी के ये वीरता भरे वचन सुनकर कुमार आनन्द से गदगद हो गया और हर्ष से उसका हाथ पकड कर दबाते हुए बोला मगर मुझे कुल पन्द्रह दिन की मुहलत मिली है। यह सुनकर कुवरानी ने कहा—नाथ, मुहलत तो कायरो के लिए होती है जिनके हृदय मे वीरता की सरिता प्रवाहित हो रही हो,उन्हे तो एक दिन की भी मुद्दत बर्दाश्त नही होती है। 'कमधज' की पदवी को कायम रखने के लिए आप सहर्ष अपनी प्रतिज्ञा को पूरी कीजिए और आपके आशीर्वाद से आपके पीछे मैं सती होने के लिए तैयार हू। भाइयो, भारत की वीरागनाए भी वीरो से कभी पीछे नही रही, बल्कि शूरवीरता मे आगे ही रही है।

ओ मारवाड के भोले चेलो, टेडी पगडी बाधने-वालो, क्या कही ऐसा वीर मिलेगा ? और उस मरुधरा के वीर को धर्मपत्नी भी कैसी वीरागना मिली ? जिसने कह दिया कि हम को मुद्दत की जरूरत नही है। दूसरे ही दिन कुमार के लिए घोडे की और कुंवरानी के लिए रथ की तैयारी हो गई। यथा समय माता-पिता को नमस्कार करके वे दोनो चलने के लिए उद्यत हुए। तब माता-पिता ने कहा मेरे लाडले वीर कुवर, हम भी तेरी वीरता को देखने के लिए साथ चल रहे है। तब कुवर ने कहा—मेरे पूज्य माता-पिताजी, आप कृपा करके यही विराजे। क्योकि उस समय यदि मेरा मन आप मे और आपका मन मुझ मे रह गया तो इस पुनीत कार्य मे विघ्न

लगा—जहापनाह, हमे मारने वाला कौन है ? मैं स्वय ही अपनी आन, बान और शान लिए मरने को हाजिर हुआ हू। तब बादशाह ने कहा—ओ शेर दिल, आज ही तुम्हारा इम्तिहान ले लिया जाय क्या ? सुमेरसिंह बोला—हा, आज ही ले लिया जाय। यह सुनते ही सारे दरबार मे सन्नाटा छा गया। सब लोग आपस मे काना फूसी करने लगे कि यह कैसा क्रूर-हृदय बादशाह है जो ऐसे बहादुर बच्चे को मरवाने के लिए तैयार हो रहा है ?

अब क्या था ? बादशाह की ओर से सारी तैयारी करा दी गई। मैदान मे तम्बू-रावटिए लगा दिये गये ? शमशीरो का पहरा लगवा दिया गया। सबके बीच मे उस कुवरानी का रथ जाकर खडा हो गया और उसके पास ही सुमेरसिंह हाथ मे तलवार लेकर जा खडा हो गया। यह दृश्य देखने के लिए दिल्ली नगर-निवासी उमड पडे। सब इस लोम-हर्षक दृश्य की चर्चा कर रहे थे।

निश्चित समय पर बादशाह सलामत वहा पहुचे और कहा—अरे सरदारो, जाओ और इस लडके का शिर धड से जुदा कर दो। सरदार लोग धीरे-धीरे एक-एक करके वहा पहुचे जहा पर कि सुमेरसिंह खडा था। उसने सिंह के समान गर्जना करके कहा—हे उपस्थित सरदारो, जब मेरा शिर उड जाय, उस समय आप लोग एक स्वर मे कह देना कि (वाह राजपूती ! वाह राजपूती, वाह राजपूती ! इस प्रकार तीन आवाजे मेरे कानो मे आनी चाहिए। वे सभी सरदार उस नर-सिंह के पास पहुँचे। तब सुमेरसिंह ने वीरता भरे शब्दो मे कहा— मेरा सिर उडा दो। इतना सुनते ही उन सरदारो के हाथो से तलवारें नीचे गिर गई। तब वे सरदार कहने लगे कि इस वीर को कैसे मारे, इस नौजवान को हम कैसे मारे। अरे पेट पापी, हमे भी कैसा नीच काम करना पड रहा है ? तलवारे हमारे हाथो छूट-छूट जा रही है, फिर भी हम इस नृशस कार्य को करने के लिए मजबूर किये जा रहे है।

लोगो की तलवारे नीचे गिरते देखकर सुमेरसिंह ने कहा—सरदारो, यह काम आप लोगो मे नही होगा ! यह अब मुझे ही करना होगा। तब उसने 'जय भवानी' कहकर इतने जोर मे तलवार अपनी गर्दन पर मारी कि

झाकता है, किन्तु सिह के समान तुरन्त सबसे आगे छलाग मारता है। सुमेर सिह! तुम वास्तव मे अपने कर्तव्य के निर्वाह करने मे सुमेरु पर्वत के समान अचल सिह की तरह निकले और तुम्हारी इस गुण-गाथा को जब तक ससार रहेगा, तव तक वीर-पुरुष गाते रहेगे। उसी दिन ७० खा ७० उमराव थे सो ७० खा ७२ उमराव कहलाए।

कायर धर्म को नहीं पाल सकता

धर्म-प्रेमियो, तुम्हे धर्म की साधना करने से कौन रोकता है? दुनिया कहती है कि 'आटा गीला और मिया ढीला'। अर्थात् कोई कहने वाला मिल जाय तो कायर व्यक्ति कह देता है कि 'अच्छा साहब' मैं नही करूंगा। जिन्हे धर्म की लगन नही है, वे ही दूसरो के मना करने पर धारण किये हुए धर्म को छोडते हैं। किन्तु जो वीर वाका होते है वे किसी के कहने पर भी अपने धर्म को नही छोडते है और स्वीकृत व्रत-नियमादि को यथाविधि पालन करते है। घर के काम मे तो भौतिक स्वार्थ भरा हुआ है, उसे तो मन से, या बिना मन से भी करना पडता है। परन्तु धर्म की तो अलूनी शिला है। इसके तो फल भविष्य मे मिलेंगे। आज दुनिया कहती है कि 'यहा मीठा तो आगे कुण दीठा।' अरे भाई, यहा मजा ले लो। आगे क्या होगा, क्या नही होगा, यह किसने देखा है। ऐसा कहने वाले और मानने वाले कायर पुरुष अपनी प्रतिज्ञा को नही पालन कर सकते हैं।

सेठ सुदर्शन ने अपनी ली हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण रूप से पालन किया। इसका परिणाम क्या हुआ कि सुदर्शन के उपदेश से अर्जुनमाली भी धर्मात्मा और प्रतिज्ञाशील वन गया। यद्यपि वह ११४१ मनुष्यो को मार चुका था, तथापि सुदर्शन सेठ के योग से ऐसे हत्यारे को भी तिरने का अवसर मिल गया। सुदर्शन सेठ की सत्सगति ने उसे धर्मात्मा वना दिया। कहा भी है---

लाखो पापी तिर गये सत्सग के प्रताप से,
लोहे ने सगति करी, पारस से कंचन हो गया
विघ्न विपदाएं सभी गुरु भक्ति से सव खोगया,

यदि पारम पापाण से लोहे का स्पर्श हो जाय, तो वह सोना वन जाता

का सशय करने की आवश्यकता नही है। इस कर्म सिद्धान्त के अटल नियम के अनुसार भले कार्य का भला फल अवश्य ही मिलेगा। अतएव आप लोग धर्म-साधना के लिए तैयार हो जावें। ऐसा न हो कि यहा मेरे सामने तो कह दिया कि हा महाराज, तैयार हैं और पोल से बाहिर निकलते ही जोश ठडा पड जाय। यदि यहा से बाहिर निकलते ही जोश ठडा पड जाता है तो वह जोश नही है वह तो गैस है। जैसे ऍजिन रेल्वे स्टेशन से रवाना होते हुए धुआ छोडता है, वह अग्नि से बनी गैस के रूप मे है। उस गैस के समाप्त होते ही ऐंजिन भी ठप्प हो जाता है। आप लोगो के पेट मे भी गैस की बीमारी हो जाती है, जिससे भोजन पचता नही है और खून भी नही बनता है। अत गैस को हटाओ और जोश को अपने हृदय मे भरो। गैस के हटने और जोश के आने पर सब काम यथाशीघ्र सम्पन्न होने लगेंगे। इसलिए धर्म पर आप लोग पूर्ण श्रद्धा करें। श्रद्धा भी अनुपम फल देती है। जैसा कि कहा है—

कीजे शक्ति-प्रमाण, शक्ति बिना श्रद्धा करे।
दीपत श्रद्धावान्, अजर अमर पद भोगवै॥

आप लोग धर्म पर श्रद्धा रखेंगे तो एक दिन आप भी अजर अमर शिव पद के सुख भोगेंगे।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला ३
जोधपुर

●●

बिना काम नही चल सकता है। बस, जैसे आपका काम प्रतिदिन खाये बिना नही चल सकता, इसी प्रकार ये बाते सुनाये बिना भी नही चल सकता।

समय समय की राग

आत्मसिद्धि के लिए त्याग ही अमोघ साधन है और जिन-जिन महापुरुषो ने त्याग किया है, उनका ही नाम-निर्देश करके सुनाया जाता है। समय पर ही प्रत्येक वस्तु अच्छी लगती है। चैत्र के मास मे उसी प्रकार का गाना और फागुन मे फागुन का गाना अच्छा लगता है। विवाह के समय विवाह के रस-गीत और युद्ध के समय वीर गीत का गाना शोभता है। अब है तो विवाह, और गाना गाया जाय जन्म-समय का तो क्या अच्छा लगता है ? लडाई तो चेत गई, वीरो के सिर उड रहे है, घमासान मार-काट मची है और खून की नदिया बह रही हैं और गाना गाया जाय "बाधव म्हारा आविया" तो क्या गाना शोभा देगा ? नही देगा, क्योकि वहा तो खून की होली खेली जा रही है। वहा पर तो भुजाओ को फडकाने वाले, प्रोत्साहन और जोश भरे गानो की आवश्यकता है कि वाहे रे जवानो, वाह रे सेनानियो, वाहरे बहादुर योद्धाओ ! खूब दिल खोल कर लडना और शत्रु को परास्त करके विजय प्राप्त करना। पीछे पैर मत हटाना, देश की आन, वान और शान रखना, आदि इस प्रकार के वीर रस भरे गीत ही गाना शोभा देता है। भाई समय-समय का गाना, समय-समय की वस्तु और समय-समय की बात अच्छी लगती है। सिर पर टोपी, पगडी और साफा शोभा देता है। पैरो मे जूते और बूट ही अच्छे लगते है। सर्दी मे शेरवानी, उनेवर कोट, मफलर और स्वेटर अच्छे लगते हैं, जबकि गर्मी मे वारीक धोती और मलमल का कुर्ता ही शोभता है। इसके अतिरिक्त जिस देश मे जैसी ऋतु और जैसा रिवाज खाने-पीने और पहिनने का हो उसके अनुकूल आचरण करने पर ही लाभ-दायक और शोभा-जनक प्रतीत होता है। तथा उससे विपरीत आचरण करना हानि-कारक एव अशोभनीय सिद्ध होता है। यदि सिर पर धारण करने की वस्तु पैरो मे और पैरो मे पहिनने की वस्तु सिर पर धारण की जायगी तो दुनिया हसेगी और आप का मजाक उडायेगी। तथा कहेगी

समागम भी मिल रहा है और भगवान की वाणी भी सुनने को मिल रही है। त्यागी महापुरुष भी कैसे मिले ? कहा भी है—

एक-एक मुनिवर रसना-रा त्यागी, एक-एक ज्ञान-भंडार रे प्राणी।
एक-एक मुनिवर व्यावचिया वैरागी, ज्यांरा गुणों रो नहीं पार रे प्राणी।१०।
साधु जी ने वन्दना नित नित कीजे।

कोई मुनि तो तपस्वी हैं जो कढाव के समान तपस्या करके काले पड गये है। नाना प्रकार का तपश्चरण कर जिन्होने अपने शरीर को काला और कृश बना लिया है। देखो-जब कढाव अग्नि पर चढकर काला पडता है, तभी उसमे नाना प्रकार के व्यजन पकवान और मिष्ठान्न बनते हैं। इसी प्रकार से उन्होने तपस्या की आग मे शरीर को सुखा दिया रक्त और मास की भी परवाह नही की और भारी कर्मों के भेदन करने के लिए सलग्न हो रहे हैं। कोई मुनिराज ज्ञान मे, ध्यान मे और स्वाध्याय मे निरत हैं। भाइयो, सारी समाज की जोखम और उत्तरदायित्व ज्ञानी मुनि के कन्धो पर ही होती है। समाज की सारी बागडोर उनके ही हाथो मे रहती है। कोई मुनि वैयावृत्त्य मे ही लीन हैं। यो तो मुनियो का मार्ग एक है, परन्तु सबकी लहरें और प्रवृत्तिया भिन्न-भिन्न हैं। जिसकी जैसी रुचि है, वे वैसा कार्य कर रहे हैं।

साधु कैसे होते है ? सुनिये—

साधु बैठ्या सावधान, घर में न राखे पाव धान।
लाये जैसो देवे चुकाय, वासी रहे न कोई कुत्ता खाय।।१।।
साधु होकर साधे काया, कोडी एक न राखे माया।
लेना एक न देना दोय, ऐसा पथ सुध साधु का होय।।२।।

साधुजन अपने शरीर को साधते हैं, इससे उनकी आत्मा निर्मल होती है। वे अपने पास एक कोडी भी नही रखते है, उन्हे माया की आवश्यकता ही नही है। वे कनक और कामिनी के त्यागी होते हैं जो कि ससार मे दोनो ही विकट घाटिया है और जिनका पार करना कठिन होता हैं। वे विहार करते हुए सूने मकान मे, वृक्ष नीचे, तालाब की पाल पर, महल मे और झोपडी मे भी ठहर जाते है। इन स्थानो मे ठहरते हुए उनके मन मे कोई राग या द्वेष

मिलती है तो वे वापिस चले जाते हैं। इसीप्रकार ठहर कर जब यहा से जाते हैं, तब भी वे वापिस सभलाते हैं। अब आप लोग बतलावे कि साधु के भाव मिले हुए कैसे हैं ? और यदि ऐसे ठन के साधु जी हो, तो मैं पूछता हूं कि ये पात्र किसके लिए बनाये जाते है ? क्यो भाई, क्या कभी आपने अपने घर में इन पात्रो मे दही जमाया, पानी रखा या कभी खाया है ? आपकी ओर से इन सभी प्रश्नो का नकारात्मक ही उत्तर मिलेगा। इसके अतिरिक्त आप इन पात्रो को खरीदते हैं तो किसके लिए खरीदते हैं ? स्पष्ट बात है कि साधुओ के लिए ही खरीदते हैं। जब आप खरीदने के लिए दुकान पर जाते है, तब वह पूछता है कि आपको कैसे पात्र चाहिए ? क्या मन्दिर-मार्गियो के लिए चाहिए, या बाईस सम्प्रदाय वालो के लिए ? देशी पात्र चाहिए या परदेशी पात्र चाहिए ? जैसे कपडो का व्यापारी अपने ग्राहक से कपडो के नाम डिजाइन आदि पूछता है, उसी प्रकार वह भी आपसे पूछता है। अब आप जिस प्रकार के पात्र चाहते हैं, वैसे ही जोड के पात्र उससे आप खरीद लेते है। और ये पात्र खरीद कर क्यो लाते हैं ? शुद्ध हृदय से आपको यही कहना पडेगा कि साधुओ के लिए ही लाते हैं। हा, यदि आप निरवद्य पात्र चाहते हैं, तव तो कुम्हार के यहा ठीकरे पडे हैं, उन्हे ले आइये। पर उनके लिए आप और साधु लोग भी कहेगे कि वे अच्छे नही लगते है। इनको रखने मे हमे लाज आती है। यदि कुम्हार के यहा के ठीकरे अच्छे नही लगते हैं तो काष्ठ-पात्र मे टटा (दोष) लगे बिना नही रहता है। हा, आहार मे टटा नही लगता है, यह निर्दोष मिल सकता है। परन्तु पानी के विषय मे विचार करें तो इसमे टटा लगे बिना रहता है क्या ? जैसे—साधु विहार करते हुए किसी गाव मे पहुचते-पहुँचते दस-बारह तो बज ही जाते हैं। तव वे सबसे पहिले धोवन लाने के लिए आप लोगो के घरो मे जाते हैं। सब जगह सभी लोग विवेकशील नही होते हैं, दो-एक घर ही विवेकवान् होते हैं। उनके यहा पर भले ही निर्दोप जल मिल जाय। अन्यथा घटे-दो घटे पीछे पुन जाते हैं और पात्र भरकर ले आते हैं। अव कहिये, एक घटे पहिले तो पानी निर्दोप नही था और अव दो घटे वाद इतना धोवन कहा से आ गया ? वस,

गुलो से परहेज करना, यह बात नही हो सकती । श्री मन्नालाल जी महाराज से जब पाली मे चौमासा करने के लिए आग्रह किया गया, तब उन्होने कहा कि चौमासे भर मे पाच सौ पौषध होना चाहिए । यदि आप लोगों को यह बात स्वीकार हो तो हा भरो । अन्यथा मैं यहा चातुर्मास नही कर सकता । जब श्रावको का विचार कम देखा तो साफ कह दिया कि मैं शहर मे चौमासा नही करूगा । तब उन्होने श्री राम-नानक रामजी की छतरी मे ही शहर से वाहिर चौमासा किया । और चातुर्मास-पर्यन्त अशन, खादिम और सादिम का त्याग कर चार मास की तपस्या की ।

भाइयो, जो साधु निर्मल आचार के पालने वाले होते हैं, वे क्या गृहस्थो का सहारा लेते है ? नही लेते । यह तो एक ज्ञानशाला है । जैसे कही पाठ-शाला है और कोई आकर पूछे कि क्या काम हो रहा है ? तो पाठशाला का नाम लेने से ही ज्ञात हो जाता है कि यहा पर पढाई होती है । फिर पूछने की क्या बात रह जाती है ? परन्तु स्थानक के नाम की बात यो नही हुई । बात-बात मे अन्तर है । जब शिष्य गुरु से अलग हो गया और उसे ठहरने के लिए मकान हाथ नही आया, तब उसने क्रोधित होकर कह दिया कि स्थानक मे नही उतरना । जैसे यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'जब लोमडी के हाथ अगूर नही लगे तब उसने कह दिया कि '(दी ग्रेप्स आर शावर) अगूर खट्टे हैं ।' भाई, प्रत्येक स्थान का परिचय उसके नाम से ही मिल जाता है । जैसे—'उपासरा'—यतियो के उतरने-ठहरने का स्थान, 'राम-द्वारा' महन्त या राम-सनेही साधुओ के ठहरने का स्थान, 'मठ' गुसाइयो के ठहरने का स्थान, 'तकिया' साईबावा का स्थान, और 'गुरुद्वारा' सिक्खो के गुरुओ के ठहरने का स्थान । इसी प्रकार स्थानक है, जिसमे साधु ठहरते हैं । साधुओ के ठहरने के स्थान को स्थानक कहते हैं । सतीदासजी की हवेली नवावास मे है । उसमे सत्तर वर्ष तक साधु-सन्त ठहरे । इसलिए वह भी स्थानक कहलाता है । परन्तु वात इतनी सी है कि 'स्थानक' इस नाम से क्यो लाज आती है ? जवकि आपकी समाज का नाम स्थानकवासी है । आज हम देख रहे है कि कुछ लोगो ने स्थानकवासी पना छोड़कर 'साधुमार्गी' नाम रख

इतने लोग सामायिक किये हुए यहा पर बैठे हैं, परन्तु एक सरीखी मुहपत्ती नजर नही आरही है। आप मन्दिरमार्गी समाज मे जायेगे तो सबके हाथ मे एक सरीखी मुहपत्ती दिखाई देगी। किन्तु आपकी समाज के भीतर न्यारे-न्यारे सम्प्रदाय और न्यारे-न्यारे कहने वाले है। तेरापन्थियो मे आचार्य की ओर से जो आदेश निकलता है, उसका उनके समस्त अनुयायी पालन करते है। जबकि आपके श्रमण सघ के प्रधानाचार्य की ओर से कोई आदेश निकलता है तो वह आपके होठो तक ही सीमित रह जाता है। किन्तु उसका पूर्णतया पालन नही होता है। इसका एक मात्र कारण यह है कि आपकी समाचारी एक नही, और आवाज भी एक नही है। अत: आपको और हमे ऐसे पवित्र दिनो मे सोचना-विचारना है कि समाज की स्थिति कैसे दृढ हो सकती है? इसके लिए आप लोगो को दो बातें करनी है—एक तो समाज की जड मजबूत करो और दूसरी आत्मा की उन्नति करो। इनके अतिरिक्त आप लोग अन्य प्रपचो मे क्यो पडते हैं? अरे, जैसा भी जहा पर स्थान मिल गया, उसमे ठहर गये और धर्म का प्रचार करते रहे।

यदि किसी स्थान पर यहा के स्थानक मे श्रावक-श्राविका समुदाय को स्थान की कमी पडती है तो इस विषय मे साधु तो यही कहेगा कि तुम तुम्हारी जानो। और जो लोग यह कहते है कि इस कार्य मे प्रेरणा नही देनी चाहिए, तो मैं भी कहूगा कि यह बिल्कुल ठीक कहना है। साधु को आरम्भ-समारम्भ के कार्य मे प्रेरणा नही देनी चाहिए। परन्तु एक बात मे आपसे पूछू कि आपके पास मे कोई वैरागी है और उसे दीक्षा देनी है, तो क्या प्रेरणा नही दी जाती है? और यह प्रेरणा नही है क्या? दीक्षा मे भी फिर क्या क्या काम होते है, यह भी आप लोगो से छिपा हुआ नही है। भाई, जो जो शादी के समय बीदराजा के रीति-रिवाज हैं, वे सब दीक्षार्थी के होते है। बस, भेद केवल इतना ही है कि बीदराजा तो विवाहित होने के लिए लडकी वाले के तोरण द्वार पर जाता है और यह दीक्षार्थी बीद साधु-चरणो के पास दीक्षा लेने को जाता है। और जब धूम-धाम होती है, तब बिना प्रेरणा के ही प्रेरणा मिल जाती है। वे लोग अपने अलग अलग बैंक कायम किये हुए

अभी तेरहपन्थियो के पास जाइये, तो कहते है कि 'तेरापन्थ' अर्थात् तेरा ही पन्थ है। मन्दिरमार्गियो के पास जाइये तो वे कहते है कि ये स्थानकवासी मुह पत्ती वाले पीछे हुए हैं। हम तो सबसे पहिले के हैं। और मुक्ति की कुजी तो हमारे ही पास है। भाई, सब अपनी-अपनी तान रहे हैं और कह रहे है कि हम ही सच्चे साधु हैं, हमको ही नमस्कार करो। परन्तु नवकार मत्र मे अन्तिम—पाचवा पद है—'**णमोलोए सव्वसाहूण**' अर्थात् लोक मे—इस समस्त विश्व मे जितने भी साधु हैं, उन सबको मेरा नमस्कार है। वहा न तो मन्दिरमार्गी, न दिगम्बर मुनि, न तेरहपन्थी और न स्थानक वासी सन्त को नमस्कार करने के लिए कहा गया है। किन्तु सर्व साधुओ को नमस्कार किया गया है। और फिर यह नवकार मत्र दस-बीस हजार वर्ष पहिले का नही है, परन्तु अनादिकाल से चला आया मत्र है। और जब यह अनादि है तब हम भी अनादि है। और यदि नवकार मत्र बनावटी है तो हम भी बनावटी हैं। फिर मन्दिरमार्गी या दिगम्बर कैसे कहते है कि मुक्ति की कुजी तो हमारे ही पास है। और स्थानकवासी या तेरापन्थी भी यह दावा कैसे कर सकते है कि मुक्ति की कुजी हमारे ही पास है? परन्तु भद्रबाहु स्वामी ने तो स्पष्ट रूप से कह दिया है कि—

'चाद देखा तुम चालणी जैसा, तीसरे सुपना के माई,
अलग-अलग समाचारी होयगी, बात फर्क कछु दर्शाई।
अलग होयगा संयमवन्ता, होगा बहुत कालिमा धारी,
सब अपनी-अपनी गावें, मारग सच्चा कौन बतावे॥

आप जिस-जिस दुकान पर जायेंगे, सब अपनी जमाते है। परन्तु सही बात का प्रचार नही करते हैं।

आनन्दघन जी महाराज सवत् सोलहसौ मे हो गये हैं। वे सोलहवे शान्ति नाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं—

गच्छना भेद बहु नयन निहालता तत्त्वनी बात करता न लाजे।
उदर-भरनादि निज काज कर्ता थका, मोह नडिया कलिकल राजे
धार तरवारनी सोह लीजे।

पूर्व के समान ही बना दें। बस कहना हमारे हाथ मे है और करना आपके हाथ की बात है। परन्तु भाइयो, याद रखना, एक दिन यह करना अवश्य पडेगा। अब आगे वह जमाना आने वाला है, जबकि 'बाबा वाक्य सत्य' जो हमारे बाबा ने कहा—वही सत्य है, यह कहावत नही चलने वाली है। इस-लिए मेरा तो आप लोगो से बार-बार यही अनुरोध और आग्रह है कि आप लोग एक सगठन मे आवें। इसी से आपका नाम इतिहास मे अमर हो जायेगा। संसार भी याद करेगा कि एक जैन समाज था, जिसने कि ऐसा सुन्दर काम करके दिखाया। जो बात लाभ की हो, उसे ग्रहण करना हमारा परम कर्त्तव्य है। यहा पर तो भगवान की वाणी सुनाई जाती है। इस भग वद् वाणी की दुकान मे नाना प्रकार का उत्तमोत्तम माल भरा हुआ है। आप यहा से अपने मन-पसन्द की वस्तु खरीद सकते है। किसी कवि ने कहा है—

अरे, तुम माल खरीदो, त्रिशलानन्दन की खुली दुकान रे।

भाई, यह महावीर स्वामी की दुकान है और माल भी इसमे अनुपम भरा है। यहा की वस्तु लेने मे नुकसान का काम नही है। बस, केवल माल खरीदने वालो की आवश्यकता है। इस महावीर की दुकान का माल मुनि-राज रूपी मुनियो को सँभलाया हुआ है। क्योकि इसके भगवान रूपी मालिक तो बहुत दूरी पर हैं। सारा काम उन्होंने मुनीमो को सभलाया हुआ है। यदि मुनीम होशियार और चतुर होगे तो सेठ का नाम चमका देंगे, एव पेढी को अच्छी मजबूत बना देंगे। यदि मुनीम लोग गफलत मे रह गये और साव धानी नही बरती तो पेढी को समाप्त होते देर नही लगेगी।

सुयोग्य मुनीम

देखो—दीवान बहादुर लोढाजी की और चादमल घनश्यामदास की भी भागलपुर मे दुकान थी। एक समय सेठ जी की दुकान पर कोई मेहमान आये तो मुनीम सा० देवकरण जी मूथा साग खरीदने के लिए सब्जी मडी मे गये। उस दिन बाजार मे एक ही दुकान पर एक ही तोरू आई हुई थी। चूंकि मौसम का नया साग था, अतः उसे ही लेने का विचार हो गया। इसी समय लोढा जी के मुनीम सा० भी साग खरीदने के लिए पहुंचे। उस

डलवादी और तेरह हजार रुपया और भी उन्हे इनाम मे दिया।'

भाइयो, यह दुकान तो फिर त्रिलोकीनाथ भगवान महावीर स्वामी की है और हम सन्त लोग उनके मुनीम के रूप मे कार्य कर रहे हैं। मुनीम कैसा होना चाहिए ? सुनो—

श्री रघुपति जयमल जी जेडा जो मुनीम बन जावे रे,
तो जिनशासन री जग सोभा विन हद पावे रे।
सच्ची मान लो। ओ सांची मान लो,
मारग मुनियो, खाडारी धार है ॥

ऐसे मुनीम धर्मदास जी, धर्मसिंह जी, लवजी ऋषि, भूधर जी, जयमल जी, रघुनाथ जी अमरसिंह जी, नानकराम जी, स्वामीदास जी, नेतराम जी, दौलतराम जी, मूलचन्द जी जैसे थे तो उन्होने इस पीढी का नाम उज्ज्वल किया है और स्वय का भी यश बढाया है। चू कि वे त्यागी, धर्मानुरागी और प्रामाणिक पुरुष थे, तभी उन्होने इस पेढी की शान रखी है। अरे सथारा तो किसने किया था ? और जब वह कायरता ले आया और भाग गया, तो महापुरुष उसके स्थान पर सथारा करके बैठ गये। सभी उनके लिए कहा गया कि तुम्हारी मा को लाख-लाख और कोटि-कोटि धन्यवाद है। और पूज्य रघुनाथ जी ने सयम पाला, तो छह मासी तप एक, चार मासी तप एक, और पन्द्रह दिन का तप एक किया। बीच-बीच मे फुटकर तपस्याए साठ वर्ष तक की। वादियो के साथ शास्त्रार्थ करना और उन्हे पराजित करना यह उनके जीवन का लक्ष्य रहा। पूज्य जयमल जी ने बावन वर्ष तक आडा आसन नही किया। सभी आज उनका नाम लेकर कितने ही सन्त कहते है कि हम भी आडा आसन नही करेंगे। अरे भाई, तुम कितने दिन ऐसा कर सकते हो ? क्या तुम उनकी होड कर सकते हो ? अरे, उन्होने छह महीने की परणी हुई पत्नी का त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके हृदय मे कैसा परम गाढ वैराग्य समा गया था। वे आजीवन अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नही हुए और एकान्तर करने वाले थे। पूज्य अमरसिंह जी महाराज जोधपुर पधारे और भूत की हवेली मे ठहरे। परन्तु

मे कोई त्याग का गुण है तो किसी मे ज्ञान का गुण विशेष है। इसलिए हमारा लक्ष्य तो उनके गुण ग्रहण की ओर रहना चाहिये। यदि इस रूप मे आपने चलने का प्रयत्न किया तो आपका भगवान महावीर की पच्चीस सौवी निर्वाण जयन्ती मनाना सफल हो सकेगा।

पर्युषण पर्व के इन दिनो मे ही नही, अपितु सदा ही हमे अपनी सद्-भावना ही रखना चाहिए। क्योकि यह भावना ही भव-नाशिनी कही गई है। कहा है—

संसाराम्बुतारका सुखकरा मुक्त्यंगना धात्रिका,
स्वर्गद्वार विवेशमार्गकुशला पापारिनाशंकराम्।
सद्धर्मामृतवापिका सुविमला रत्नत्रयोत्पादिका,
भ्रातस्त्वं कुरु भावना प्रतिदिन श्रीधर्मकल्पद्रुमाम्॥

मनुष्य की उत्तम भावना ससार समुद्र से तारने वाली है, सर्व सुखो को करने वाली है, मुक्तिरूपी रमा की धात्री है, स्वर्ग के द्वार मे प्रवेश करने के लिए मार्ग बताने मे कुशल है, पाप रूपी शत्रुओ का नाश करने वाली है, उत्तम धर्म रूप अमृत की बावडी है, अति निर्मल है, रत्नत्रय की उत्पादक है और श्री धर्म की प्राप्ति के लिए कल्पवृक्ष के समान सर्व मनोरथो को पूर्ण करने वाली है। इसलिए हे भाई! तुम ऐसी पवित्र भावना को प्रतिदिन करो। तभी तुम लोगो का जीवन सफल होगा।

वि० स० २०२७ भादवा सुदि ३

जोधपुर

❁❁

मागनी है। परन्तु केवल 'खमाऊं सा०, खमाऊ सा" ही नही करके रह जाना है। बल्कि जिस-जिस व्यक्ति के साथ वर्ष भर मे आपकी लडाई हुई हो, झगडा हो गया हो, गाली-गलोज या मन-मुटाव हो गया और बोलना छूट गया हो तो उसके पास खासतौर से जाकर और शुद्ध हृदय से तहेदिल से क्षमा मागनी चाहिए। आप उसको क्षमा करे और वह आपको क्षमा करे। यदि इस प्रकार से क्षमा नही मागते है, तब तो केवल चेले के '**मिच्छा मि दुक्कड** बोलने जैसी ही बात चरितार्थ होगी। इस कथा पर भी आप लोग जरा ध्यान देवे तब ठीक रहेगा।

एक कुम्हार ने अपने मिट्टी के वर्तन सुखाने के लिए चौकी पर रख दिये थे। उधर ही एक गुरु अपने शिष्य के साथ आये और उस चबूतरी पर छाया मे बैठ गये। उस समय शिष्य के मन मे कुछ चचलता आ गई। उसने एक चिरोगिया (ककरी) लेकर घडे पर मार दी। निशाना घडे पर लगा और उसमे छेद हो गया। यह देखकर कुम्हार ने सीधेपन से कहा—चेला जी, यह क्या किया ? तब चेले ने कहा—'**मिच्छा मि दुक्कडं**' मैं अपने दुष्कृत अपराध की क्षमा मागता हू। कुम्हार सुनकर चला गया। पुन. थोडी देर के पश्चात् उस चेले ने दूसरी ककरी उठाई और दूसरे घडे पर मार दी। इस प्रकार उसने कई घडे फोड दिये। परन्तु भाई, सहनशीलता की भी कोई सीमा होती है। जब बात सहनशीलता के बाहिर हो जाती है, तब मनुष्य प्रतीकार करने की भावना करता है। कुम्हार अभी तक तो अपने उस नुकसान को किसी प्रकार सहन करता रहा। परन्तु जब उसने देखा कि चेला जी महाराज तो मेरी सरलता और सुजनता का अनुचित लाभ उठा रहे है, तब उसने सोचा कि अब इन्हे शिक्षा देना आवश्यक है, अत. वह कुम्हार भी एक छोटी सी ककरी लेकर उन के पास गया और चेला जी के कान की लोल मे ककरी लगाकर जोर से मसलना प्रारम्भ किया। तब चेला जी चिल्लाकर बोले – अरे, यह क्या कर रहे हो ? तब कुम्हार ने भी कह दिया—**मिच्छा मि दुक्कड**' यह सुनते ही चेला जी की अक्ल ठिकाने आ गई।

मागनी है। परन्तु केवल 'खमाऊ सा०, खमाऊं सा" ही नही करके रह जाना है। बल्कि जिस-जिस व्यक्ति के साथ वर्ष भर मे आपकी लडाई हुई हो, झगडा हो गया हो, गाली-गलोज या मन-मुटाव हो गया और बोलना छूट गया हो तो उसके पास खासतौर से जाकर और शुद्ध हृदय से तहेदिल से क्षमा मागनी चाहिए। आप उसको क्षमा करे और वह आपको क्षमा करे। यदि इस प्रकार से क्षमा नही मागते हैं, तब तो केवल चेले के 'मिच्छा मि दुक्कड' बोलने जैसी ही बात चरितार्थ होगी। इस कथा पर भी आप लोग जरा ध्यान देवे तब ठीक रहेगा।

एक कुम्हार ने अपने मिट्टी के बर्तन सुखाने के लिए चौकी पर रख दिये थे। उधर ही एक गुरु अपने शिष्य के साथ आये और उस चबूतरी पर छाया मे बैठ गये। उस समय शिष्य के मन मे कुछ चचलता आ गई। उसने एक चिबोरिया (ककरी) लेकर घडे पर मार दी। निशाना घडे पर लगा और उसमे छेद हो गया। यह देखकर कुम्हार ने सीधेपन से कहा—चेला जी, यह क्या किया ? तब चेले ने कहा—'**मिच्छा मि दुक्कडं**' मैं अपने दुष्कृत अपराध की क्षमा मागता हू। कुम्हार सुनकर चला गया। पुन थोडी देर के पश्चात् उस चेले ने दूसरी ककरी उठाई और दूसरे घडे पर मार दी। इस प्रकार उसने कई घडे फोड दिये। परन्तु भाई, सहनशीलता की भी कोई सीमा होती है। जब बात सहनशीलता के बाहिर हो जाती है, तब मनुष्य प्रतीकार करने की भावना करता है। कुम्हार अभी तक तो अपने इस नुकसान को किसी प्रकार सहन करता रहा। परन्तु जब उसने देखा कि चेला जी महाराज तो मेरी सरलता और सुजनता का अनुचित लाभ उठा रहे हैं, तब उसने सोचा कि अब इन्हे शिक्षा देना आवश्यक है, अत वह कुम्हार भी एक छोटी सी ककरी लेकर उन के पास गया और चेला जी के कान की लोल मे ककरी लगाकर जोर से मसलना प्रारम्भ किया। तब चेला जी चिल्लाकर बोले—अरे, यह क्या कर रहे हो ? तब कुम्हार ने भी कह दिया—**मिच्छा मि दुक्कडं**' यह सुनते ही चेला जी की अक्ल ठिकाने आ गई।

भाइयो, क्या आप लोगो को भी अपने अपराध इस चेला जी के समान क्षमाना है ? नही क्षमाना है। किन्तु तहेदिल से शुद्ध हृदय से—आत्म-विशुद्धि की दृष्टि से क्षमा-याचना करनी है। और जैसे उदायन राजा ने चण्डप्रद्योत राजा से क्षमा-याचना की, उसी प्रकार का आदर्श सामने रखना है।

चमत्कारी गुटिका

धर्म बन्धुओ, उदायन राजा भगवान महावीर के ससार पक्ष के मामाजी थे। वे अपनी पद्मावती रानी के साथ आनन्द से रह रहे थे। सोलह मुकुट-बद्ध राजा उनके सामने नत मस्तक रहते थे। इस प्रकार वह अपने राज्य का भली-भाति सरक्षण और पालन कर रहा था। एक बार जिनदास नामका एक श्रावक विदेश से माल लेकर के उस नगर मे आया और दुकान जमाकर व्यापार करने लगा। व्यापार अच्छा चला और इसने बहुत सा धनोपार्जन किया। जहा पर सेठ की दुकान थी, उसी के सामने महारानी जी के महल मे विराजने के कमरे का झरोखा था। सेठ बडा धर्मात्मा था। नियमित रूप से त्रिकाल सामायिक करना और प्रतिमास छह पौषध करने के नियम वाला था। महारानी उसकी नित्य-नैमित्तिक धार्मिक क्रियाओ को देखकर उसके ऊपर बहुत प्रसन्न थी। कदाचित् पाप कर्म के उदय से सेठ के दस्तो की बीमारी हो गई। कुछ दिन तक तो उसने जिस किसी प्रकार से अपना काम चलाया। परन्तु जब पेचिस का अधिक प्रकोप हुआ तो वह मल-शुद्धि को करने मे असमर्थ हो गया। सेठ को इस प्रकार मल-लिप्त पडे हुए देखकर महारानी के हृदय मे बहुत दया आई। उन्होने अपनी कुबडी दासी को बुला कर कहा—दासी, यह जिनदास सेठ बीमारी से अतिपीडित हो रहा है। अत. क्या तू उसकी सेवा कर सकती है ? यदि तू करने मे असमर्थ हो तो मैं जाकर उसकी सेवा करूं ? भाइयो, इसे कहते है धर्मानुराग। तब दासी बोली महारानी जी, मैं सेवा के लिए तैयार हू।

तदनन्तर दासी सेठ के पास गई और तन-मन से उसने सेठ की सेवा-सुश्रुषा की। वह प्रतिदिन सेठ का मल साफ करती, दवा लाकर देती और

मागनी है। परन्तु केवल 'खमाऊं सा०, खमाऊ सा" ही नही करके रह जाना है। बल्कि जिस-जिस व्यक्ति के साथ वर्ष भर मे आपकी लडाई हुई हो, झगडा हो गया हो, गाली-गलोज या मन-मुटाव हो गया और बोलना छूट गया हो तो उसके पास खासतौर से जाकर और शुद्ध हृदय से तहेदिल से क्षमा मागनी चाहिए। आप उसको क्षमा करें और वह आपको क्षमा करे। यदि इस प्रकार से क्षमा नही मागते हैं, तब तो केवल चेले के '**मिच्छा मि दुक्कड** बोलने जैसी ही बात चरितार्थ होगी। इस कथा पर भी आप लोग जरा ध्यान देवें तब ठीक रहेगा।

एक कुम्हार ने अपने मिट्टी के वर्तन सुखाने के लिए चौकी पर रख दिये थे। उधर ही एक गुरु अपने शिष्य के साथ आये और उस चबूतरी पर छाया मे बैठ गये। उस समय शिष्य के मन मे कुछ चचलता आ गई। उसने एक चिबोरिया (ककरी) लेकर घडे पर मार दी। निशाना घडे पर लगा और उसमे छेद हो गया। यह देखकर कुम्हार ने सीधेपन से कहा—चेला जी, यह क्या किया ? तब चेले ने कहा—'**मिच्छा मि दुक्कडं**' मैं अपने दुष्कृत अपराध की क्षमा मागता हू। कुम्हार सुनकर चला गया। पुन थोडी देर के पश्चात् उस चेले ने दूसरी ककरी उठाई और दूसरे घडे पर मार दी। इस प्रकार उसने कई घडे फोड दिये। परन्तु भाई, सहनशीलता की भी कोई सीमा होती है। जब बात सहनशीलता के बाहिर हो जाती है, तब मनुष्य प्रतीकार करने की भावना करता है। कुम्हार अभी तक तो अपने इस नुकसान को किसी प्रकार सहन करता रहा। परन्तु जब उसने देखा कि चेला जी महाराज तो मेरी सरलता और सुजनता का अनुचित लाभ उठा रहे हैं, तब उसने सोचा कि अब इन्हे शिक्षा देना आवश्यक है, अत वह कुम्हार भी एक छोटी सी ककरी लेकर उन के पास गया और चेला जी के कान की लोल मे ककरी लगाकर जोर से मसलना प्रारम्भ किया। तब चेला जी चिल्लाकर बोले – अरे, यह क्या कर रहे हो ? तब कुम्हार ने भी कह दिया—**मिच्छा मि दुक्कडं**' यह सुनते ही चेला जी की अक्ल ठिकाने आ गई।

भाइयो, क्या आप लोगो को भी अपने अपराध इन चेला जी के समान क्षमाना है ? नही क्षमाना है। किन्तु तहेदिल मे शुद्ध हृदय से—आत्म-विशुद्धि की दृष्टि से क्षमा-याचना करनी है। और जैसे उदायन राजा ने चण्डप्रद्योत राजा से क्षमा-याचना की, उसी प्रकार का आदर्श सामने रखना है।

चमत्कारी गुटिका

धर्म बन्धुओ, उदायन राजा भगवान महावीर के ससार पक्ष के मासाजी थे। वे अपनी पद्मावती रानी के साथ आनन्द मे रह रहे थे। सोलह मुकुट-बद्ध राजा उनके सामने नत मस्तक रहते थे। इस प्रकार वह अपने राज्य का भली-भांति सरक्षण और पालन कर रहा था। एक बार जिनदास नामका एक श्रावक विदेश से माल लेकर के उस नगर मे आया और दुकान जमाकर व्यापार करने लगा। व्यापार अच्छा चला और इसने बहुत सा धनोपार्जन किया। जहा पर सेठ की दुकान थी, उसी के सामने महारानी जी के महल मे विराजने के कमरे का झरोखा था। सेठ बड़ा धर्मात्मा था। नियमित रूप से त्रिकाल सामायिक करना और प्रतिमास छह पोषध करने के नियम वाला था। महारानी उसकी नित्य-नैमित्तिक धार्मिक क्रियाओ को देखकर उसके ऊपर बहुत प्रसन्न थी। कदाचित् पाप कर्म के उदय से सेठ के दस्तो की बीमारी हो गई। कुछ दिन तक तो उसने जिस किसी प्रकार से अपना काम चलाया। परन्तु जब बीमारी का अधिक प्रकोप हुआ तो वह मल-शुद्धि को करने मे असमर्थ हो गया। सेठ को इस प्रकार मल-लिप्त पड़े हुए देखकर महारानी के हृदय मे बहुत दया आई। उन्होंने अपनी कुबडी दासी को बुला कर कहा—दासी, यह जिनदास सेठ बीमारी से अतिपीडित हो रहा है। अत क्या तू उसकी सेवा कर सकती है ? यदि तू करने मे असमर्थ हो तो मैं जाकर उसकी सेवा करू ? भाइयो, इसे कहते है धर्मानुराग। तब दासी बोली महारानी जी, मैं सेवा के लिए तैयार हू।

तदनन्तर दासी सेठ के पास गई और तन-मन से उसने सेठ की सेवा-सुश्रूषा की। वह प्रतिदिन सेठ का मल साफ करती, दवा लाकर देती और

पथ्य आहार-पान आदि की सर्व प्रकार से सावधानी रखने लगी। इस प्रकार उसकी परिचर्या से सेठ एक मास मे पूर्ण स्वस्थ हो गया। प्रसन्न होकर सेठ ने उससे कहा—बाई, तू मेरी धर्म की बहिन है। तूने मेरी सेवा-सुश्रूषा करके मुझे जीवन-दान दिया है। मैं तेरे इस उपकार को कभी नही भूल सकता हू। तब उस दासी ने कहा—वीरा, मैंने तो कुछ भी नही किया। महारानी जी की आज्ञा से मैंने आपकी यह तुच्छ सेवा की है। सेठ ने कहा—यह ठीक है कि महारानी जी ने मुझ पर कृपा करके तुझे भेजा है, तो भी तूने तन-मन से रात-दिन मेरी सेवा की है। मैं तेरी सेवा से तुझ पर बहुत प्रसन्न हू। अत इसके उपलक्ष्य मे मैं तुझे एक लाख रुपये इनाम देता हूँ। यह कहकर उसे एक लाख रुपये दिये और साथ मे दो करामाती गोलिया दी। दासी ने पूछा—सेठ सा०, इन गोलियो का मैं क्या करूगी? तब सेठ ने कहा—ये बडी चमत्कारी गोलिया हैं। इनमे से एक गोली के निगलते ही तू सुन्दर नवयुवती के रूप मे परिणत हो जायगी। और दूसरी गोली को हाथ मे लेकर कहेगी कि मुझे अमुक पति चाहिए तो वही व्यक्ति तेरे सामने आ जायगा। और वह तेरे रूप पर मोहित हो जायगा।

दासी उन रुपयो और गोलियो को लेकर अपने स्थान पर गई। रुपयो को सुरक्षित रखा और पानी के साथ एक गोली निगल गई। गोली निगलते ही वह षोडश वर्षीय सुन्दर नवयुवती के रूप मे परिणत हो गई। अब वह नये वस्त्राभूषण धारण करके रिम-झिम करती हुई आई। महारानी उसे पहिचान नही सकी। क्योंकि उसके पहिलेवाले शरीर के ढाचे मे एकदम परिवर्तन हो गया था। अत वे उसे विस्फारित नेत्रो से देखते हुए विचारने लगी कि यह कौन है? तब उस दासी ने कहा—महारानी जी, क्या आपने मुझे पहिचाना नही है? मैं तो आपकी आज्ञाकारिणी वही कुवडी दासी हू। महारानी ने उससे पूछा—अरे, तेरे शरीर मे यह परिवर्तन सहसा कैसे हो गया? तब दासी ने कहा—यह सब सेठजी की कृपा का फल है। उन्होने मेरी सेवा से प्रसन्न होकर मुझे दो गोलिया दी। उनमे से एक गोली के खाते ही मेरे रूप मे यह परिवर्तन हो गया है। उसके इस रूप की चर्चा सारे राजमहल मे फैल

गई और धीरे-धीरे सारे नगर और देश में भी उसके उस सुन्दर रूप की प्रशंसा होने लगी।

सेठ जी की दी हुई दूसरी गोली भी उसके पास थी। एक दिन उसने विचार किया कि उज्जैन का राजा चण्डप्रद्योत अति रूपवान है, नौजवान है और हमारे उदायन राजा का साढू भाई है। यदि उसके साथ मेरी शादी हो जाय तो बहुत उत्तम हो। ऐसा विचार कर रात्रि के समय उसने गोली को हाथ में लेकर उक्त कामना को शब्दों के द्वारा उच्चारण किया। उसके उच्चारण करते ही गोली के प्रभाव से चण्डप्रद्योत राजा उसके पास आ गया और दोनों परस्पर मिलकर अति प्रसन्न हुए। चण्डप्रद्योत ने उसे अपने साथ चलने के लिए कहा और वह तत्काल तैयार हो गई। तब चण्डप्रद्योत ने उदायन राजा के अनिल वेग नामक हाथी पर खड़े होकर खिड़की के मार्ग से उसे नीचे उतारा और उसी पर बैठाकर उसे अपने साथ उज्जैन ले गया। प्रातःकाल जब दासी के लापता होने की खबर राजा के पास पहुँची और यह भी सूचना मिली कि अनिल वेग हाथी भी हस्तिशाला से गायब है, तब वह बहुत विस्मित हुआ और बोला कि उस गज रत्न के चले जाने से तो मेरे ५७ हजार हाथी ही निर्मद हो गये हैं। राजा ने जब सारे मामले की छानबीन कराई तब पता चला कि चण्डप्रद्योत राजा रात्रि में यहाँ आया था और रात्रि में ही हाथी और दासी को लेकर वापिस चला गया है।

राजा उदायन विचारने लगा कि आज तो यह हाथी और दासी को उठा ले गया है तब किसी दिन यह मेरी रानी को और न जाने किन-किन वस्तु को उठाकर ले जाते हुए भी नहीं हिचकिचायेगा। अतः उसने सेनापति को सारी सेना के साथ उज्जैन पर चढ़ाई करने का आदेश दे दिया। नगर के समीप पहुँचने पर उदायन ने चण्डप्रद्योत के पास दूत भेजकर सन्देश कहलाया कि या तो सम्मानपूर्वक मेरे हाथी और दासी को मेरे पास लाकर मुझे सौंप दो। अथवा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। दूत ने चण्डप्रद्योत के पास जाकर अपने राजा का सन्देश कह सुनाया। उसने दोनों को देने से इनकार कर दिया और वह भी युद्ध के लिए तैयार होकर उज्जैन से बाहर आ पहुँचा।

दोनो ओर से घमासान युद्ध हुआ। दोनो ओर के हजारो मनुष्य और हाथी-घोडे मारे गये। अन्त मे चण्डप्रद्योत हार गया। उदायन उसे बन्दी बनाकर और दासी को लेकर विजय का डका बजाता हुआ अपने देश को चला। रास्ते मे चलते-चलते पर्युषण पर्व का समय आ गया।

उदायन राजा पक्का श्रावक था। उसने सोचा कि श्रावण मास मे मैंने खून की नदिया वहाई है। अब सयोग से ये धर्मध्यान के दिन आ गये है तो धर्म ध्यान भी करना चाहिए ? अतः मार्ग मे कोई उपयुक्त स्थान देखकर उसने वही पर दस दिन के लिए पडाव डाल दिया। पर्व के दिनो मे वह स्वय धर्म ध्यान मे लग गया और साथ मे जो मत्री आदि विचारशील पुरुष थे, वे भी धर्म-साधन मे सलग्न हो गये। इस प्रकार धर्म की आराधना करते हुए सावत्सरिक प्रतिक्रमण और क्षमापना का दिन आ गया। उस दिन सबेरे ही रसोइये को बुलाकर राजा उदायन ने कहा—आज मेरे उपवास है। अत चण्डप्रद्योत से पूछकर जो वे खाने के लिए कहे वह बनाकर उन्हे जिमा देना।

रसोइया राजा चण्डप्रद्योत के पास गया और पूछा—महाराज, आज आपके लिए क्या भोजन बनाऊ ? तब उसने पूछा—उदायन महाराज कहा है ? उसने कहा—आज उनके पौषधोपवास है। वे आज कुछ भी नही जीमेगे। यह सुनकर चण्डप्रद्योत बोला—हा, सब समझ गया हू। स्वय उपवास रखकर और मुझे विष-मिश्रित भोजन करा करके वे मुझे मार डालना चाहते हैं। अत उन्होने रसोइये से कहा—आज मेरे भी उपवास है। मैं भी आज कुछ नही खाऊगा।

सायकाल के समय उदायन महाराज ने सावत्सरिक प्रतिक्रमण किया। तत्पश्चात् उच्चस्वर से यह गाथा वोलते हुए ससार के समस्त जीवो से उन्होने क्षमा-याचना की—

खामेमि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेर मज्झं ण केण वि ॥

अर्थात्—मैं ससार के समस्त जीवो को क्षमा करता हू—जिन्होने कि

ज्ञात और अज्ञात दशा मे मेरा कुछ भी अपराध किया है। तथा ज्ञात और अज्ञात दशा मे मेरे से जिनका कुछ भी बिगडा हुआ हो, कुछ भी जिनको मेरे निमित्त से दुःख पहुचा हो, अथवा किसी भी प्रकार का नुकसान हुआ हो, वे सब जीव मुझे क्षमा करें। मैं उनसे क्षमा-याचना करता हू। मेरा सर्व जीवो पर मैत्री-भाव है। मेरा किसी के साथ वैर-भाव नही है।

तत्पश्चात् उन्होने सोचा कि अभी पिछले ही दिनो मे मैंने सबसे अधिक दुःख चण्डप्रद्योत को पहुंचाया है और उनके सैन्यबल का सफाया किया है। अतः सर्वप्रथम उनके पास चलकर क्षमा-याचना करनी चाहिए। यह विचार कर वे उनके पास पहुचे और कहने लगे—मैं आपसे अपने अपराधो की क्षमा-याचना करता हू। तब चण्डप्रद्योत उनके ये वचन सुनकर कुछ उत्तेजित होता हुआ बोला—धन्य है तुम्हारी ऐसी क्षमा-याचना को। अरे, तुमने अगणित जीवो को मारकर खून की नदिया बहाई और मुझे बन्धन मे बाध रखा है। फिर भी मुझसे कहते हो कि मैं क्षमा-याचना करता हू। तब उदायन ने अति विनम्र होकर कहा—बन्धु, तुम जैसे कहो, उस प्रकार से मैं क्षमा-याचना करने को तैयार हू। क्योंकि मैं आगे के लिए किसी भी प्रकार का वैर-विरोध नही रखना चाहता हू।

उदायन के ऐसे नम्रता-भरे और अन्तःकरण से निकले क्षमा-याचना के शब्दो को सुनकर चण्डप्रद्योत ने कहा—महाराज, यदि आप सचमुच मे क्षमा-याचना कर रहे है, तो सबसे पहिले मुझे अपने समान स्वतन्त्र कीजिए, मेरा राज्य और राजमुकुट मुझे वापिस दीजिए और उस दासी को वापिस दीजिए। इसके पश्चात् मैं आपको क्षमा करने के लिए तैयार हू, अन्यथा नही। यह सुनकर उदायन ने कहा—मैं आपका राज्य वापिस देने को तैयार हू और राजमुकुट भी दे सकता हू, आपको स्वतन्त्र भी करता हू। दासी को कैसे दे सकता हू। क्योंकि उसी के कारण तो इतना खून बहाया है और फिर उसे ही तुम्हें वापिस दे दू, यह कैसे सम्भव है? यह सुनकर चण्डप्रद्योत ने कहा—तब मैं क्षमा नही कर सकता। तब उदायन ने कहा—इस समय तो मैं जोर नही दूगा। किन्तु राजधानी पहुचकर किसी अन्य

रूप मे उसे देने का मैं वायदा करता हूँ। यह कहकर उदायन ने उनको तत्काल बन्धन से मुक्त किया, उनका राजमुकुट उनके मस्तक पर रखा और उनका राज्य उन्हे वापिस करने की घोषणा की। तत्पश्चात् उनको अपने हृदय से लगाकर क्षमा-याचना की और चण्डप्रद्योत ने भी उन्हे क्षमा किया। दोनो ने आनन्दित होकर परस्पर खमत-खामणा की।

तत्पश्चात् उन्हे अपने साथ हाथी पर बैठा कर उदायन अपनी राजधानी ले गया। वहा पहुच कर उसने अपनी लडकी की शादी चण्डप्रद्योत के साथ कर दी और दायजे मे अपार धन सम्पत्ति के साथ उस दासी को भी उन्हे दे दिया। कहने का साराश यह है कि लोक-व्यवहार मे दिखावटी खमत-खामणा तो सभी करते हैं। परन्तु जो शुद्ध हृदय से क्षमा-याचना करे, और उदायन राजा के समान वैर-भाव को निर्मूल कर दे, उसे ही सच्ची खमत-खामणा कह सकते हैं। उदायन राजा का यह आदर्श उदाहरण आपके सामने मौजूद है। आशा करता हूँ कि आज के दिन आप लोग इसी प्रकार करेंगे।

वि० स० २०२७ भाद्रपदशुक्ला ४
जोधपुर

भी पता नही है कि मैं क्या कह रहा हू, किस काम के लिए, अथवा किस उद्देश्य से बोल रहा हू जब तक कोई उद्देश्य - कोई लक्ष्य उसके मस्तिष्क मे निश्चित नही होगा, तब तक उसका बोलना भी बेकार ही रहेगा।

एक तीसरा व्यक्ति अपने घर से निकला और नाक की सीध मे सीधी सडक पर चलना शुरू कर दिया। वह दिन भर बिना कुछ भी खाये-पीये चलता ही जा रहा है, दिन भर चलते रहने से वह थक कर चूर-चूर हो गया है, मगर फिर भी रुकने का नाम भी नही ले रहा है। उसका कोई लक्ष्य नही कि कहा जाना है और कब तक जाना है, इसका भी उसे कोई पता नही है। परन्तु चलते रहने का ही लक्ष्य बना लिया है। अथवा मील-दो मील सीधा जाता है और फिर लौट आता है। इस प्रकार दिन चलता रहता है। तब बताइये कि ऐसा उद्देश्यविहीन चलना क्या अर्थ रखता है ? कुछ भी नही।

भाइयो, जैसे पहिले व्यक्ति का दिन भर चढना-उतरना, दूसरे व्यक्ति का दिन भर व्यर्थ बोलना और तीसरे व्यक्ति का निरुद्देश्य चलते रहना अथवा आना-जाना कोई अर्थ नही रखता है। इसी प्रकार यह जीव इस भव चक्र मे और चारो गतियो की चौरासी लाख योनियो मे लक्ष्य-विहीन होकर निरन्तर परिभ्रमण करता हुआ अनादिकाल से चलता ही आ रहा है। परन्तु इसने आज तक कभी भी यह विचार नही किया कि मैं क्यो यह परिभ्रमण कर रहा हूँ ? न कभी इसने इस भव-भ्रमण से विमुक्त होने के लिए—छुटकारा पाने के लिए ही कभी प्रयत्न किया है ? इस अज्ञानी जीव को उसके इस भव-भ्रमण के जाल से विमुक्त करने के लिए और उसे शाश्वत स्थिर सुख प्राप्त कराने के लिए ही यह भगवद् प्रवचन और जैन आगम प्रेरणा दे रहे हैं। वे कह रहे हैं कि 'रे जीव, बुज्झ-बुज्झ अरे, अब तो प्रतिबोध को प्राप्त कर। तूने इन अधेरी गलियो मे भटकते हुए कितना काल बिता दिया है ? अभी तक भी तुझे होश नही आया है और यह विचार पैदा नही हुआ कि आखिर मैं यह भव-भ्रमण क्यो कर रहा हू ? इस मनुष्य पर्याय मे क्यो आया हू और मुझे इसे पाकर अब क्या करना है ? इस प्रकार मैं अब भी लक्ष्य

निश्चय करके और आत्मोत्थान के कार्य में संलग्न हो जाऊ ? आज तक मोह रूपी मदिरा पीकर और अपना होश-हवास खोकर व्यर्थ ही इधर-उधर भटकता आ रहा हूं। इस प्रकार का विचार जिनके हृदय में उत्पन्न होता है और जब वे भगवद्—वाणी सुनते हैं कि—

एव अणाइकाले पचपयारे भमेइ ससारे।
णाणा दुक्खणिहाणे जीवो मिच्छत्तदोसेण ॥१॥
इय ससार जाणिय मोह सव्वायरेण चइऊण।
त झायह ससरुय ससरण जेण णासेइ ॥२॥

इस नाना दुःखों के निधान (भडार) रूप इस द्रव्य क्षेत्र, काल, भव और भाव वाले ससार में यह जीव मिथ्यात्व के दोष से भ्रमण कर रहा है। ऐसा ससार का स्वरूप जान करके हे आत्मन्, अब तू समस्त उपायों से मोह को त्याग कर अपने उस शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय आत्म स्वरूप का ध्यान कर, जिससे ससार के परिभ्रमण का नाश होवे।

इस प्रकार के सिद्धान्त के हित कारक वचन कानों में पड़ते ही सुलभ बोधि जीव जिन्हें ससार—सागर को पार करने की उत्कण्ठा है—उत्सुकता है—वे तो अवश्य ही जिन-वचनों के अनुसार आचरण करने लगते हैं। अब चाहे वे कितने ही काल के पश्चात् भव-सागर को पार करें परन्तु पार करने के मार्ग पर अग्रसर हो जाते हैं। किन्तु जिनको ससार-सागर पार करना ही नहीं है और यहीं पर चक्कर लगाते रहना है, उनसे कहने में कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। उनको कुछ कहना और उनका सुनना दोनों ही व्यर्थ सिद्ध होते हैं। उनको सुनाना अपना समय व्यर्थ नष्ट करना है। क्योंकि कहा है—'व्यर्थस्त्वपात्रे व्यय' अर्थात् जो अपात्र है, मोक्ष-गमन का और उसे प्राप्त करने का पात्र नहीं है—अभव्य है, ऐसे जीव को समझाने में अपनी शक्ति का व्यय करना व्यर्थ है।

अल्पज्ञानी करवा घड़ा

जैसे कुम्हार ने चाक पर मिट्टी को रखा और घड़ा बनाया, तब उसको उसने धूप में सूखने के लिए रख दिया। सूख जाने के बाद उसमें पानी भर

दिया । अब इसका परिणाम क्या सामने आयेगा ? पानी का भी नाश होगा और घडा भी नष्ट हो जायगा । साथ ही जिसने उस कच्चे घडे मे पानी भरा है, उसको भी उपालभ सहना पडेगा । इसी प्रकार जो अभव्य, अज्ञानी, कदाग्रही और मूढमति व्यक्ति को समझाने का प्रयत्न करेगा, वह अपना भी ज्ञान व्यर्थ खोवेगा और उसको भी ज्ञान प्राप्त नही होगा । तथा लोग भी उलाहना देगे कि आपने किस मूर्ख के साथ माथापच्ची की है ? क्या वह सुलटने वाला है ? वह तो सदा उल्टे ही मार्ग पर चलेगा !!।

यदि किसी समझाने वाले व्यक्ति मे ज्ञान अल्प भी हो, परन्तु जब वह किसी को उपदेश देता है, तब सामने वाला सुनकर उस पर अमल करता है। वह विचार करता है कि इसने यह मेरे हित की बात कही है, इसमे मुझे लाभ है । अब यदि उसका क्षयोपशम पक गया, तो वह उसे कर गुजरता है। और यदि उदय भाव का अधिक जोर है, तो वह नही करता है। परन्तु हृदय मे यह अवश्य अनुभव करता हे कि इसकी शिक्षा सबके लिए हितकारक है । अत इसका कथन मुझे मान लेना चाहिए ।

एक विद्यार्थी पढना चाहता है । उसे सौभाग्य से यदि पढने का सुयोग मिल जाय, तो वह अवश्य ही पढ जायगा और उसे प्रसन्नता भी होगी । जिसे भूख लगी हो और उसे खाने के लिए भोजन मिल जाय, तो वह रुचि से अवश्य भोजन करेगा । इसी प्रकार जिसको राग-रग, नाटक-सिनेमा और सर्कस आदि देखने का शोक है और यदि उसे उसकी इच्छानुकूल वस्तु मिल जाय, तो वह उल्लास के साथ देखेगा और पूछने पर जो कुछ देखा है, उसे यथावत् सुना देगा ।

जैसे अभी ये तीन बातें बतलाई गई कि इच्छा के अनुसार जब अभीष्ट वस्तु मिल जाती है, तब मनुष्य को बहुत प्रसन्नता होती है और वह तुरन्त उसे ग्रहण कर लेता है । इसी प्रकार जो भगवान की वाणी को श्रवण करने का अभिलाषी है, प्रेमी है और जिसके हृदय मे यह बात खूब दृढता से जम गई है कि ससार मे यदि कुछ सार है तो एक जिनेन्द्र-वचन ही है । तथा

मन का हरण करने वाला, दूसरे की निन्दा से दूर रहता हो, गुणों का भडार हो और स्पष्ट तथा मिष्ट अक्षर बोलने वाला हो ऐसा गण-नायक पुरुष ही धर्म कथा को कहे।

कहने का सार यह है कि उपदेश सुनकर श्रोता एक बार यह भी कह उठे कि साहब, आपके और मेरे नही पटेगी, क्योकि आप तो कहते हैं कि इसे छोडो, उसे छोडो। परन्तु मेरे से तो यह नही हो सकता है। तब उपदेशक कहता है—भाई, तुमने अपनी बात कह दी। अब मेरे भी दो शब्द सुन लो और उन पर विचार करो। यदि मेरी बात गले उतरे और हित-कारक लगे, तब तो उसे मानना। अन्यथा मत मानना। इस प्रकार कहकर फिर उसके सामने जीवन के उत्थान की बातें रखे। तब वह अपने मन मे विचारेगा कि देखो यह व्यक्ति कितना शान्त है, कितना धैर्यवान् है कि मेरे इतने कटुक वचन कहने पर भी इसने उनकी ओर ध्यान नही दिया। फिर भी यह मेरे जीवन को उन्नत बनाने के लिए ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। इस प्रकार उपदेश देने वाले के सद्-व्यवहार के कारण अपने आप उसके हृदय मे शान्ति आ जायगी। तब वह कहेगा—भगवन्, आपने अभी जो कुछ कहा, उसे मैं अन्यत्र चित्त रहने के कारण धारण नही कर सका। अब कृपा करके एक बार फिर समझाइये। इस प्रकार शान्ति से समझाने पर वह ठिकाने भी आ सकता है। और आज तक लाखो-करोडो व्यक्ति और अधम से अधम पुरुष भी सुमार्ग आये हैं, जिनकी साक्षी जैन आगम दे रहे है।

भाई, ससार मे धर्मात्मा पुरुष कम हैं और अधर्माचरण करने वालो की सख्या अधिक है। इसलिए उनका ही सुधार करना आवश्यक है। जो पुरुष हिंसा करता नही, झूठ बोलता नही, चोरी करता नही, कुशील-सेवन करता नही और जिसके हृदय से परिग्रह रखने की ममता दूर हो गई है, तथा जो मानवोचित उत्तम गुणो से युक्त है, फिर उसके लिए कौन-सा उपदेश देना शेष रह गया है ? जिन कार्यों के करने के लिए उपदेश दिया जाता है, वे सब उसके जीवन मे मौजूद हैं। उपदेश की आवश्यकता तो

उन व्यक्तियों के लिए है, जिनमें कि ये बातें नहीं हैं। समझाने वाला एक-एक बात को लेकर समझाता है कि देखो—सत्य इसे कहते हैं, अहिंसा इसका नाम है, ब्रह्मचर्य इस प्रकार से पालन किया जाता है और निर्ममत्व भाव इसे कहते हैं। दूसरों की सेवा परम धर्म है, वैयावृत्य परम तप है, क्षमा धारण करना और कोमल, सरल भाव रखना जीवन का सार है। इन बातों को सुनकर वह विचार करता है कि ये बातें तो मेरे लिए बिलकुल नवीन हैं। अभी तक तो मैं इन बातों से सर्वथा विपरीत चलता रहा हूं। अब इन बातों पर चल करके देखूं तो सही, कि जीवन में आनन्द आता है, या नहीं? अभी तक मैंने जो हिंसा, झूठ चोरी, कुशील-सेवनादि कार्य किये हैं, उनके परिणाम तो मैंने देखे ही नहीं, बल्कि खूब भोगे हैं। अब इनका त्याग कर और अहिंसा, सत्य आदि का आचरण करके इनका भी मैं परीक्षण करूंगा। यदि ये मुझे सुखदायक प्रतीत होंगी तो मैं इनको जीवन-भर धारण करूंगा और कभी नहीं छोडूंगा। ऐसा विचार करके वह सुमार्ग पर चलने के लिए अग्रसर हो जाता है।

ममता और निर्ममता

ममता और निर्ममता की महत्ता समझाने के लिए एक दृष्टान्त आपके सामने रखा जाता है। एक नगर में एक सेठ रहता था। उसकी शानदार हवेली और चलती हुई दुकान थी। लाखों की पूंजी थी और भरा-पूरा परिवार भी था। परन्तु उसको सन्तोष नहीं था। वह रात-दिन धन कमाने के लिए ही दौड़-धूप किया करता था। उसे एक मिनिट के लिए भी चैन नहीं था। उसके पड़ौस में एक साधारण मनुष्य रहता था। वह दिन भर मजदूरी करता और जो भी आठ-बारह आने कमाकर लाता, उसी में रूखी-सूखी खाकर स्त्री-पुरुष सुख-शान्ति से रहते। वह प्रातः सायंकाल भगवान की भक्ति भी करता, प्रभु का नाम स्मरण भी करता और दीन-दुखी की सेवा-टहल भी करता था। इस प्रकार उसका जीवन शान्ति से बीत रहा था।

मन का हरण करने वाला, दूसरे की निन्दा से दूर रहता हो, गुणो का भडार हो और स्पष्ट तथा मिष्ट अक्षर बोलने वाला हो ऐसा गण-नायक पुरुष ही धर्म कथा को कहे ।

कहने का सार यह है कि उपदेश सुनकर श्रोता एक बार यह भी कह उठे कि साहब, आपके और मेरे नही पटेगी, क्योकि आप तो कहते हैं कि इसे छोडो, उसे छोडो। परन्तु मेरे से तो यह नही हो सकता है। तब उपदेशक कहता है—भाई, तुमने अपनी बात कह दी। अब मेरे भी दो शब्द सुन लो और उन पर विचार करो। यदि मेरी बात गले उतरे और हित-कारक लगे, तब तो उसे मानना । अन्यथा मत मानना। इस प्रकार कहकर फिर उसके सामने जीवन के उत्थान की बाते रखे। तब वह अपने मन मे विचारेगा कि देखो यह व्यक्ति कितना शान्त है, कितना धैर्यवान् है कि मेरे इतने कटुक वचन कहने पर भी इसने उनकी ओर ध्यान नही दिया। फिर भी यह मेरे जीवन को उन्नत बनाने के लिए ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। इस प्रकार उपदेश देने वाले के सद्-व्यवहार के कारण अपने आप उसके हृदय मे शान्ति आ जायगी। तब वह कहेगा—भगवन्, आपने अभी जो कुछ कहा, उसे मैं अन्यत्र चित्त रहने के कारण धारण नही कर सका। अब कृपा करके एक बार फिर समझाइये। इस प्रकार शान्ति से समझाने पर वह ठिकाने भी आ सकता है। और आज तक लाखो-करोडो व्यक्ति और अधम से अधम पुरुष भी सुमार्ग आये है, जिनकी साक्षी जैन आगम दे रहे है ।

भाई, ससार मे धर्मात्मा पुरुष कम हैं और अधर्माचरण करने वालो की सख्या अधिक है। इसलिए उनका ही सुधार करना आवश्यक है। जो पुरुष हिसा करता नही, झूठ बोलता नही, चोरी करता नही, कुशील-सेवन करता नही और जिसके हृदय से परिग्रह रखने की ममता दूर हो गई है, तथा जो मानवोचित उत्तम गुणो से युक्त है, फिर उसके लिए कौन-सा उपदेश देना शेप रह गया है ? जिन कार्यों के करने के लिए उपदेश दिया जाता है, वे सब उसके जीवन मे मौजूद हैं। उपदेश की आवश्यकता तो

एक दिन उस सेठ की स्त्री ने रात्रि मे सेठ से कहा - खूब धन कमा लिया है, अब तो सन्तोष धारण करो। जब तक आप सन्तोप धारण नही करेंगे, तब तक हमको भी शान्ति नही मिलेगी। आपकी इस हाय पैसा — हाय पैसा की प्रवृत्ति से बच्चे-बच्चो भी परेशान है। फिर भी आपको सन्तोष नही आ रहा है। यह सुनकर सेठ ने कहा —देखो, मेरे ऊपर कितना भार है, कितने लोगो के पढाने-लिखाने और शादी-विवाह आदि करने का उत्तर दायित्व है। जब तक इनसे छुटकारा नही मिलता है, तब तक कैसे सन्तोष रख सकता हू। सेठानी ने कहा आप जरा विचार तो करे कि इस पडौसी के पास तो कुछ भी नही है, जबकि आपके पास सब कुछ है। यह दिन भर मजदूरी करने के अतिरिक्त भगवद्-भक्ति भी करता है और शान्ति-पूर्वक अपना जीवन-यापन कर रहा है। सेठानी की यह बात सुनकर सेठ बोला— अरी, अभी तक यह निन्यानवे के फेर मे नही आया है और मैं अभी निन्यानवे के फेर मे पडा हुआ हू। इसीलिए मेरे जीवन मे अशान्ति और उसके जीवन मे शान्ति है। यदि यह भी निन्यानवे के फेर मे पड गया, तो इसके जीवन की शान्ति भी अशान्ति मे बदल जायगी। सेठानी ने कहा—क्या यह कभी सभव है ? यह इस चक्कर मे कभी नही फस सकता है। सेठ ने कहा— मैं तो निन्यानवे के फेर मे पडा हुआ हू अत इसको इस चक्कर मे नही डालना चाहता हू। परन्तु यदि तू यह सब देखना ही चाहती है तो मैं इसे दिखाता हू। यह कह कर सेठ ने एक थैली मे ९९) रुपये डालकर के उसे मजदूर के चौक मे फेक दिया। सवेरे उस मजदूर की नजर उस थैली पर पडी। वह सोचने लगा कि यह थैली यहा कहा से आई ? उसने उसे उठाया और खोलकर देखा तो उसमे ९९) निन्यानवे रुपये निकले। अब उन रुपयो को लेकर सोचने लगा कि यदि एक रुपया और हो जाय तो ये पूरे सौ हो जायेंगे। तब किसी साहूकार के यहा जमा कराने पर एक रुपया मासिक व्याज का आने लगेगा। यह सोचकर उसने उसी दिन से अधिक परिश्रम करना प्रारम्भ कर दिया और प्रतिदिन चार आने बचाकर एक रुपया जोड लिया और पूरे सौ रुपये करके साहूकार के यहा व्याज पर जमा करा आया। अब वह अपनी

दिये हैं और हाय-हाय मे कैसे पड गये हो ? यह सुनकर पडौसी बोला—सेठानी जी, मेहनत करनी तो मैंने अब प्रारम्भ की है। यदि पहिले से ही इसी प्रकार परिश्रम करता रहता तो आज तक मैं भी आपके बराबर हो जाता परन्तु मैं आलस्य और प्रमाद मे रहा, इसलिए दरिद्र बना रह गया। अब हम भी रात-दिन परिश्रम कर रहे हैं तो कुछ दिनो मे आपके समान हम भी हो जावेगे। इस प्रकार उसके दिल मे दौड की होड लग गई। आदमी को कही से प्रेरणा मिलनी चाहिये, फिर वह किसी से पीछे नही रहना चाहता। परन्तु उसकी इस दौड मे कोई सार नही। सेठ ने तो उसे परोक्ष रूप से प्रेरणा देकर पाप के काम मे लगा दिया और वह भी धन की तृष्णा मे पडकर अपनी सुख-शान्ति को खो बैठा। सेठ का यह कर्तव्य था कि वह स्वय भी सन्तोष रखकर धर्म कार्य करता और उसे भी धर्म-कार्य की ही प्रेरणा देता। परन्तु उसने ऐसा नही किया और अपने समान उसे भी तृष्णा की ज्वाला मे डाल कर अशान्त और दुखी बना लिया।

सज्जनो, पाप कार्यो मे तो यह आत्मा अनादिकाल से प्रवृत्ति करती आ रही है। पाप की बाते दिमाग मे जितनी जल्दी जचती है उतनी जल्दी धर्म की बातें नही जचती हैं। यह बात आज ही नही हो गई, किन्तु सदा से ही चली आ रही है। इसी बात का निदान खोजते हुए एक महान् आचार्य ने कहा है—

हेये स्वय सती बुद्धिर्यत्नेनाप्यसती शुभे।
तद्धेतु कर्म तद्धन्तमात्मानमपि साधयेत्॥

अर्थात्—मनुष्य की बुद्धि हेय मे—छोडने योग्य पाप-कार्यो मे स्वय ही दौडती है। किन्तु शुभ कार्य मे यत्न करने पर भी नही दौडती है। इसका कारण पूर्वोपार्जित पाप कर्म का उदय है जो कि इस कर्म सयुक्त आत्मा को भी साध लेता है—अपने अधीन करके तदनुकूल खोटे कार्यों मे लगा लेता है। हमे इस खोटी प्रवृत्ति से बचने का सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए। तभी इस अनादिकालीन कुसस्कारो से हमारा बचाव हो सकता है। अन्यथा नही।

पर्वों का रहस्य

इन खोटी प्रवृत्तियो से बचने के लिए ही सर्वज्ञ देव ने इन धार्मिक पर्वों का विधान किया है। इन पर्वों की कल्पना आकस्मिक नही है किन्तु बहुत रहस्यपूर्ण है। द्वितीया तिथि को—दोज को पर्व मानने का यह अभिप्राय है कि जीव दो प्रकार के हैं--ससारी और सिद्ध। हम ससारी अवस्था से छूटकर दूसरी सिद्ध अवस्था को प्राप्त करे, यह भावना इस पर्व के दिन करनी चाहिए। और यह कब सम्भव है, जबकि हम इस दिन सासारिक प्रपचो को छोडकर आरम्भ और परिग्रह से मुख मोड कर आत्म-कल्याण के कार्यों मे प्रवृत्त हो। पचमी तिथि को पर्व मानने का यह अभिप्राय है कि पाच ज्ञानो मे पाचवा केवलज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ हैं, तथा पाच गतियो मे सिद्ध-गति ही शाश्वत सुख को देने वाली है, वह हमे कब प्राप्त हो ? इस भावना को करते और तदनुकूल आचरण करने के लिए इसे पर्व तिथि माना गया है। अष्टमी को पर्व तिथि मानने का यह अभिप्राय है कि आठ कर्मों ने हमारे ज्ञान-दर्शनादि आठ गुणो को आच्छादित कर रखा है। उनको कैसे दूर कर हम अपने उन स्वाभाविक गुणो को प्राप्त करें। इसीलिए उस दिन सर्वसासारिक कर्मोपार्जन करने वाले कार्यो को छोडकर धार्मिक कार्यों को करने का विधान किया गया है। एकादशी को पर्वतिथि मानने का यह रहस्य है कि जीव अपना विकास करते हुए ग्यारहवे गुण स्थान तक भी चढ जावे, परन्तु वहा से भी मोह का उदय आ जाने से नीचे गिर जाता है और कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक पुन ससार मे परिभ्रमण करता रहता है। जैसा कि कहा है—

> मुनि एकादश गुणस्थान चढ, गिरत तहा ते चित-भ्रमठानो।
> भ्रमत अर्ध पुद्गल परिवर्तन किंचित ऊन काल परमानो॥
> जीवनि के परिणामनि की यह अति विचित्रता देखहु ज्ञानी॥

हमारा इस प्रकार अध पतन न हो और दशवे गुणस्थान से तक इस ग्यारहवे गुण स्थान को लाघकर हम आगे के गुण स्थानो को प्राप्त कर अरिहन्त और सिद्ध परमात्मा बनें, इस भावना को करने के लिए यह

एकादशी का पर्व बतलाया गया है। चतुर्दशी पर्व को बताने का रहस्य यह है कि गुणस्थान चौदह हैं। चौदहवे गुणस्थान को प्राप्त कर कब हम सिद्ध पद को प्राप्त करें, इस बात की भावना करने के लिए चतुर्दशी को पर्व माना गया है। इस प्रकार इन नित्य धर्म पर्वों के मनाने का नियम तीर्थंकरो ने अनादिकाल से किया हुआ है। कहा भी है—

अष्टमी चाष्टकर्मघ्नी सिद्धि लाभा चतुर्दशी।
पंचमी ज्ञानकर्त्री च द्वितीया मुक्तिकारिणी ॥

अर्थात् अष्टमी का पौषध आठ कर्मों का नाश करता है। चतुर्दशी का पौषध सिद्धि प्राप्त कराता है। पचमी का पौषध केवलज्ञान को उत्पन्न कराता है और द्वितीया का पौषध मुक्ति को प्राप्त कराता है। साराश— ये सभी नित्य पर्व मुक्ति के ही साधक है।

उक्त नित्य पर्वों के अतिरिक्त यह पर्युषण पर्वाधिराज नैमित्तिक विशिष्ट पर्व है। इन दिनो मे तो सासारिक सर्व कार्यों को छोडकर धर्म-साधन करना ही चाहिए। पहिले तो लोग व्यापार धन्धा आदि का सर्व आरम्भ-समारम्भ छोडकर के उपवास, ऊनोदरी, रसपरित्याग आदि वाह्य तपो के साथ अहर्निश स्वाध्याय, ध्यान एव सामायिक पौषध मे ही सलग्न रहते थे। अति सीमित क्षेत्र से बाहिर भी आते-जाते नही थे। इन दिनो मे सबका यही प्रयत्न रहता था कि हम कर्मों की जितनी अधिक से अधिक निर्जरा कर सके, उतना ही अच्छा है।

धर्म-बन्धुओ, इन दिनो मे सन्त-महात्माओ के मुखारविन्द से भगवान की वाणी निरन्तर प्रकट हो रही है और प्रेरणा दे रही है कि हे मानव, चेतो, पाप को छोडो और धर्म को अगीकार करो। यह प्रेरणा आप लोगो को बराबर मिलती जा रही है। फिर भी यह अनेक व्यक्तियो के मस्तिष्को मे नही जम रही है। हा, जिन जिन लोगो की भवस्थिति पक रही है, उनके मस्तिष्क मे ही जीवन-सुधार के ये उपदेश ठहरते है। हमे पुरुषार्थ करके भवस्थिति को पकाने का प्रयत्न करना चाहिए।

सात हजार मागता हू। जब उन दोनो मे झगडा बढते देखा, तब कुछ समझदारो ने कहा—इस प्रकार लडने से क्या लाभ है। तुम दोनो पच नियुक्त कर लो और उनके सामने अपनी-अपनी बहिए रख दो। वे लोग दोनो ओर की बहिए देख करके अपना निर्णय दे देंगे कौन किस पर कितना मागता है ? कौन सच्चा है और कौन झूठा है, इसका सहज मे ही निर्णय हो जायगा। अब यदि वे लोग पचो के सामने अपनी-अपनी बहिए रखते हैं, तो उनकी सारी पोल खुल जाती है। उनमे जो झूठा होगा, वह तो पच भी बनाना नही चाहेगा। परन्तु जो सच्चा होगा, उसे पचो के सामने अपने बही-चौपडे आदि के रखने मे किसी भी प्रकार का ऐतराज नही होगा और सहर्ष सब कागज-पन्ने पचो के सामने रख देगा।

भाइयो, पहिले के जमाने मे लोग सत्य के पक्के पुजारी होते थे। तब पाप की पुकार ऊची नही पहुचती थी। परन्तु आज तो पाप की पुकार एक दम ऊची पहुचती है और उसके सामने धर्म की आवाज दबकर नीचे रह जाती है। इसीलिए आज सत्य को प्रकाश मे आने मे देर लगती है।

आप लोगो को ज्ञात है कि एक दिन रानी अभया ने कामासक्त होकर सुदर्शन सेठ को पकडवा करके अपने महल मे बुला लिया था। नाना प्रकार के कुत्सित प्रयत्न रात्रिभर करने पर भी जब वे चल-विचल नही हुए, तब उस रानी ने हो-हल्ला मचा कर उन्हे पकडवा दिया। राजा ने बिना कुछ निर्णय किये रानी के कहने से उन्हे शूली पर चढाने का आदेश दे दिया। तब एकबार सारा ससार कह उठा कि सत्य का खात्मा हो गया। परन्तु जब उन्हे शूली पर चढाया गया, तब शूली का सिंहासन बन गया और सत्य सबके सामने आगया। और झूठ का पर्दाफाश हो गया। रानी के पाप का भण्डाफोड हो गया और वह राजमहल से निकाल दी गई और सुदर्शन का सन्मान कर उन्हे नगर सेठ बनाया गया।

आज दुनिया पाप की दलदल में ऐसी फंस गई है कि सच से पार पाना भी कठिन हो गया है। परन्तु भाई, आप लोगों को ज़माना देखकर नहीं चलना है—नीचे नहीं गिरना है। हमें तो सिद्धान्त का सहारा लेकर न्याय मार्ग पर चलकर ही आगे बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी में अपना दोनों लोकों का कल्याण निहित है।

वि० सं० २०२३ भादवा सुदि ६
जोधपुर

●●

११ | मानव जीवन का महत्व

सज्जनो, आज के प्रवचन का विषय 'मानव जीवन का महत्त्व' है। यहा यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि मानव जीवन को इतना अधिक महत्त्व क्यो दिया गया है? इसका उत्तर यह है कि मनुष्य त्रिलोकवर्ती सभी ससारी प्राणियो मे सर्वश्रेष्ठ जीव है। वह सर्वश्रेष्ठ कहलाने का अधिकारी तभी है, जबकि उसमे मनुष्यता, मानवता या इन्सानियत हो। इसी मानवता के कारण मानव-जीवन का महत्त्व बढ जाता है। यदि मनुष्य मे मानवता नही, इन्सान मे इन्सानियत नही, तो वह मनुष्य का शरीर धारण करने पर भी पशु के समान है, वह इन्सान नही, किन्तु हैवान ही कहा जायगा।

मानव और मानवता

अब जैसे किसान फसल को विशेष रूप से पैदा करने के लिए खेत मे अच्छी से अच्छी खाद को डालता है, समय-समय पर पानी की सिचाई करता है, उत्तम बीज बोता है और उसे बीमारी-रोग आदि से बचाता है और अनुकूल वातावरण का योग जुटाता है, तब जाकर वह मनचाही फसल को प्राप्त कर पाता है। इस पर से यह निष्कर्ष निकलता है कि अच्छी फसल के लिए उत्तम खेत, पानी, खाद और वातावरण की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार से मनुष्य को अपनी उत्तम आत्मज्योति जगाने के लिए मानव-जीवन

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यो मृग मृग-तृष्णा जानि वारि।
तन-परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभव्यो स्व-पद सार ॥

मैं अपना स्वरूप भूल करके इस ससार मे भ्रमण कर रहा हू, मैंने कर्मोदय से प्राप्त होने वाले पुण्य-पाप के फल को ही अपना स्वरूप मान लिया, मैंने वस्तु-स्वरूप को नही समझ करके अपने को दूसरे का कर्त्ता-धर्ता माना और दूसरो को अपना कर्ता-धर्ता माना, मैंने अपने पुण्योदय से अनुकूल प्रतीत होने वाले को इष्ट माना और पापोदय से प्रतिकूल प्रतीत होने वाले को अनिष्ट माना, मैं स्वय ही अज्ञान को धारण कर आकुल-व्याकुल हो रहा हू। जिस प्रकार हरिण मृगमरीचिका को जल मानकर चारो ओर दौडता हुआ आकुलित होता है। उसीप्रकार मैं शरीर की परिणति को ही आत्मा की परिणति मानता रहा इस कारण शरीर के जन्म को अपना जन्म और शरीर के नाश को अपना मरण मानता रहा और इस प्रकार आज तक मूढ आत्मा ही बना रहा। शास्त्रकार कहते है कि—

तनुजन्मनि स्वक जन्म तनुनाशे स्वका मृतिम्।
मन्यमानो विमूढात्मा भ्रमितोऽद्यावधि वृथा ॥

शास्त्र-पठन और श्रवण करने पर ही ज्ञात होता है कि मेरी अभी तक जो यह मान्यता रही कि शरीर की उत्पत्ति को मैंने अपनी उत्पत्ति माना और शरीर के विनाश को अपना मरण माना, ऐसी मेरी मान्यता मिथ्या है। और इस मिथ्या धारणा के वश होकर अनादि काल से मैं व्यर्थ घूमता रहा हू।

सद्ज्ञान आवश्यक

इस प्रकार मानव को मानवता पाने के लिए—आत्म-स्वरूप पहिचानने के लिए शास्त्र-श्रवण एव मनन अति आवश्यक है। यदि शास्त्र को हम सीधे रूप से इस्तेमाल मे लायेंगे—ठीक रीति से उपयोग करेंगे - तभी हमको सही मार्ग मिल सकता है। यदि हम उन्हे मिथ्यात्व का चश्मा लगाकर भ्रान्तियो से परिपूर्ण और विपमता से ग्रहण करेंगे तव वह शास्त्र हमारे लिए शस्त्र का काम करेगा। जैसे तलवार को हम यदि मूठ की ओर से पकड़ेंगे तो शत्रु पर

धर्म नही है। यदि उसके अनुसार हम प्रवृत्ति करते रहे तो कल्याण होने में कोई शंका नही है।

देखो—मधु और घृत दोनो अमृत के समान माने गये हैं। परन्तु मधु और घृत को समान मात्रा मे मिलाकर सेवन करने पर वह विष का काम करता है। यद्यपि पृथक्-पृथक् रूप मे वे दोनो अमृत-तुल्य है, परन्तु सम-मात्रा मे मिलने पर विष-तुल्य हो जाते है। स्वास्थ्य-लाभ के लिए उपयोग करने वाले इनका हीनाधिक परिणाम मे ही सेवन करते है। यहा आप पूछेंगे कि दो अमृतो के मिलने पर तो एक महा-अमृत बन जाना चाहिए। परन्तु ये विष क्यो बन गये ? भाई, ये विष इसलिए बन गये कि वैद्यक शास्त्र मे इनका उपयोग जिस विधि से करने का विधान है, हमने उनका प्रयोग विपरीत रूप मे किया हैं।

अग्नि जब तक चूल्हे, सिगडी मे या स्टोव मे है, तब तक आप उसका उपयोग कर मनोवाछित पदार्थ बना सकते हैं। किन्तु वही आग जब चूल्हे आदि से बाहिर निकल आती है और ईंधन का सयोग और पवन की प्रेरणा पाकर प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है, तब वह हमारे लाभ की वस्तु न रह कर हानिकारक बन जाती है। इसी प्रकार से हमने सिद्धान्त का, शास्त्र का सहारा लिया। अब यदि हमारे भीतर कोई कमजोरी है—दुर्बलता है और उसे छिपाने के लिए हम सिद्धान्त के अर्थ को ही उल्टा निरूपण करने लगे—उत्सूत्र-प्ररूपण करदें, तो कितना अनर्थ होने की सभावना निहित है। हा, उस समय आप यह कह सकते हैं कि सिद्धान्त का मार्ग तो यह है परन्तु मेरे भीतर यह कमी है—यह दुर्बलता है। परन्तु सिद्धान्त की कोई दुर्बलता नही है। जब मैं अपनी इन कमजोरियो को दूर कर दूगा, तब कही जाकर मैं सिद्धान्त के अनुसार चलने के योग्य बन सकूगा। जब मनुष्य अपने भीतर की कमियो को देख लेता है, अपनी कमजोरी को समझ लेता है—तब वह उन्हे दूर करने का प्रयत्न करता है और कुछ दिनो मे वे कमिया उसके भीतर से निकल भी जाती हैं। परन्तु

नुकसान हुआ ? और यदि वे आबाद हो गये होते तो कितने लोगो की जानें जाती ?

इसी प्रकार जब हम सिद्धान्त को पढते हैं विचारते हैं, सुनते और सुनाते हैं, फिर भी यदि हम अपनी कमियो को छिपाते हैं, तो वह भीतर रही हुई कमी बहुत हानि पहुँचा सकती है। इससे हमारी तो हानि होगी ही, साथ मे दूसरो को भी हानि पहुच सकती है। विचार कीजिए—जिस ठेकेदार ने उस कालोनी का निर्माण किया तो उसे क्या बचा ? यदि कुछ बचा भी होगा तो कुछ दिनो मे खा-पीकर उड गया होगा ? परन्तु जनता के धन का कितना विनाश हुआ। आज की सरकार ऐसे बेईमानो को ठेका देती है और नुकसान होने पर कोई पूछताछ भी नही करती है, क्योकि ऊपर से लेकर सब मिली-जुली भगत वाले और रिश्वतखोर है। यदि ब्रिटिश काल की सरकार होती, तो वह उस ठेकेदार से जबाव-तलब करती कि ऐसा क्यो हुआ ? जबकि तुम्हे सिमिन्ट-चूने को भरपूर रुपया दिया गया। फिर एक ही वारिश मे इतने मकान कैसे गिर गये। उससे वह पूरा रुपया वसूल करती, अन्यथा जेल की हवा खिलाती। मगर आज पूछने वाला कौन है ?

भाईयो, हमारे सूत्रो का यही एक दृष्टिकोण या प्रमाण है। यदि हम शास्त्र के अनुसार आचरण करते हैं, तब वे ही हमारे लिए कल्याणकारी और अमृत-तुल्य है। परन्तु यदि हम उनसे विपरीत काम लेते हैं और अपने क्षुद्र स्वार्थ साधना के लिए उत्सूत्र-प्ररूपण करते हैं, तो वे ही हमारे लिए शस्त्र के समान घातक बन जाते हैं। इसलिए शास्त्र-श्रवण सदा ठीक रूप मे करना चाहिए।

सम्यक् श्रद्धा

चौथा गुण श्रद्धान है। जिन-भाषित तत्वो पर ऐसा दृढ श्रद्धान होना चाहिए कि वीतराग भगवान ने निःस्वार्थ भाव से प्राणिमात्र के कल्याण के लिए जो वस्तु का यथार्थ स्वरूप कहा है और उन्हें ससार के दुखो से छुटकारा पाने के लिए जो नियम बताये हैं, वे सर्वथा सत्य हैं, कभी अन्यथा

का मोह छोडकर—अभिमान छोडकर—उनके पास जाना चाहिए। तथा इस विषय मे उनका निर्णय लेना चाहिए। यदि उनके मुख से मुझे ठीक निर्णय मिल गया, तो मैं धन्य हो जाऊगा और यह मेरे,जीवन की सुनहरी घडी सिद्ध होगी। यदि वहा से ठीक समाधान नही मिला तब मैं मान लू गा कि यह बात झूठी है। यह सोचकर उसने अपने शिष्यो को अपने साथ भ०महावीर के पास चलने को कहा। शिष्य बोले—गुरुदेव, आप यह क्या कह रहे हैं ? हम तो आपको भ० महावीर से भी बढकर मानते है ? फिर आप महावीर से मिलने के लिए क्यो जा रहे हैं ? शिष्यो की यह बात सुनकर खन्दक ने उनसे कहा शिष्यो, तुम लोग गलत मार्ग पर हो। मैं न तो महावीर के समान हूं और न उनसे बढकर ही हूं। मैं तो एक साधारण सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक हू। और उसके भीतर ही अपने उपदेश का प्रचार करता हूं। परन्तु महावीर तो महावीर ही हैं। उनकी तुलना मैं नही कर सकता हूँ। इस प्रकार खन्दक सन्यासी ने अपने अन्तरात्मा की आवाज अपने शिष्यो को कही। देखो— एक दीपक भी प्रकाश करता है और गैस भी प्रकाश करता है। उन दोनो की तुलना की जाय तो गैस के प्रकाश के सामने दीपक का प्रकाश कुछ भी नही दिखेगा। इसी प्रकार आज भ० महावीर रूपी सूर्य का सर्वत्र प्रकाश फैल रहा है तब मेरा यह टिम टिमाता हुआ यह अल्प-सा दीपक उनके सामने क्या हस्ती रखता है। यदि तुम लोग उनकी सेवा मे चलना चाहते हो तो चलो। अन्यथा मैं तो उनकी सेवा मे जा ही रहा हू। यह मेरा दृढ सकल्प है।

ऐसा कहकर वह शुद्ध हृदय से भ० महावीर के पास अपनी शका का समाधान पाने के लिए चला। भ० महावीर अपने स्थान पर बैठे हुए धर्म—देशना दे रहे थे। उन्होने खदक को आते हुए देखकर कहा—गौतम, तुम्हारे पूर्व भव का मित्र खन्दक सन्यासी मेरे पास प्रश्न पूछने के लिए आ रहा है। यद्यपि अन्यतीर्थी के स्वागतार्थ सामने जाना यह बात आर्हत-सिद्धान्त के प्रतिकूल हैं, तथापि यह नियम एक देशीय है, सर्व देशीय नही। क्योकि सर्वत्र सर्वदा, सर्वथा ऐसा व्यवहार करने पर हमारी मानवता मे कमी आती है। लोक-व्यवहार के शिष्टाचार को देखते हुए हमे अपनी नीति का भी ख्याल

क्योकि तुम यह सोचो कि रात्रिया क्या हैं ? रात्रि नाम काल का है और काल कहते हैं समय को। समय तो अनन्त बीत गया है और आगे अनन्त ही व्यतीत होगा। समय तो प्रति समय नवीन आता हुआ अनादि से ही चला जा रहा है। उसका प्रवाह सतत प्रवहमान है। अत ये काल या समय रूपी रात्रिया कभी भी इस असख्यात प्रदेशी लोक मे भीडभाड करने वाली नही हैं। आज तक कितना काल चला गया इसकी कोई गणना कर सकता है क्या ? और आगे कितना समय आने वाला है, इसकी भी कोई गणना सभव नही है। इसलिए अनन्त रात्रिया गई हैं, जा रही हैं और जावेगी। भगवान के मुखारविन्द से इस प्रकार शका का समाधान सुनते ही खन्दक सन्यासी का हृदय बहुत प्रसन्न हुआ और उसके भीतर भगवान महावीर और उनके धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा जागृत हो गई। उसके हृदय का सारा अन्धकार विलीन हो गया। तदनन्तर उसने भगवान से अनेक और भी प्रश्न किये और उनका समुचित हृदयग्राही समाधान पाकर वह बहुत सन्तुष्ट हुआ।

भाई, खन्दक के मन मे शका अवश्य उत्पन्न हुई, किन्तु शका उत्पन्न होने पर वह उसके समाधान के लिए खोजी बना और जिज्ञासु होकर सर्वज्ञ के पास विनीतभाव से जाकर के उपस्थित हुआ तो उसकी सारी शकाए दूर भी हो गई। परन्तु आज के समय मे तो मामला ही कुछ और है। आज लोग जिसे पढते या सुनते हैं, उसे भली-भाति से सोचे-समझे विना ही झट कह उठते हैं कि यह सच है और यह झूठ है। मैं कहता हू कि अल्पज्ञ होते हुए तुम्हे सर्वज्ञ के वचनो को झूठा कहने का आखिर क्या अधिकार है ? तुम्हे झूठा कहने का कोई अधिकार नही है। तुम्हे तो केवल पढने का व समझने का अधिकार है। यदि पढते हुए कोई शका होती है, अथवा किसी शब्द का अर्थ युक्ति-सगत नही जचता है, तो अपने से अधिक किसी दूसरे विशिष्ट-ज्ञानी के पास जाकर निर्णय करना चाहिए। परन्तु केवल अपनी मनचाही धारणा बनाकर और अपनी बुद्धि के अनुसार उत्सूत्र प्ररूपणा नही करना

चारो बाते अधूरी रहेगी। जैसे आपको सीरा बनाना है। आपके पास मैदा हैं, घी है, शक्कर है, आग है और कढाव है। परन्तु एक पानी नही है, तो क्या सीरा बन जायगा ? नही बनेगा। इसी प्रकार उपर्युक्त चार बातो के मिल जाने पर भी पाचवी बात के प्राप्त हुए बिना हमारे उद्देश्य की पूर्ति नही हो सकती है।

आपके पास तलवार है, घोडा है, और चलाने वाले आप भी मौजूद हैं। परन्तु जिसे निशाने पर वार करना याद नही है, वह युद्ध मे अपना उद्देश्य सिद्ध नही कर सकता है। आपके सामने बारूद से भरी हुई बन्दूक पडी है। उसे आपने उठा ली। अब केवल उसका घोडा दबाने की ही देर है कि वह लक्ष्य-वेध कर सकती है। परन्तु आपको घोडा पकडना और बन्दूक साधना याद नही है तो घोडे को दबाते ही वह ऐसी तेजी से पीछे आयगी कि आपकी छाती की हड्डिया तोड देगी। फिर तू औरो को क्या मारेगा, बल्कि स्वय मर जायगा। क्योकि तुझे उसका चलाना याद नही है। भाई, एक बात की कमी के कारण भी भारी हानि हो जाती है। इसलिए हमे किसी काम मे भी कोई कमी नही रखनी चाहिए। अपने उद्देश्य की पूर्ति मे जो जो कमिया दृष्टिगोचर हो, उन्हे मजिल को पार करते हुए निकालने का प्रयत्न करना चाहिए।

अब कोई कहे– क्या करें सा०, भूल हो गई। अरे, तुमसे तो भूल हो गई और भूल को भूल कहकर बरी हो गये। परन्तु उस भूल से दूसरो का कितना भारी नुकसान हो जाता है, इसका अनुमान लगाना भी कठिन हो जाता है। आपके पास सरकारी खजाना है और आप उसके खजाची हैं। अव उसके सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी आपकी है। अब किसी दिन आप ताला लगाना भूल गये और अपने घर चले गये। रात को चोर-डाकुओ ने सारा खजाना ही खाली कर दिया, तो बताओ—आपकी जरासी भूल ने गजव कर दिया। आप अपने किसी रोगी की दवा लेने को वैद्य के पास गये। उसने दवा की पुडिया दे दी। और आपने उसे जेव मे रख ली। योगवश उसी जेव मे एक सखिया की पुडिया भी पहिले से रखी हुई थी। अब आपने

१२ | उपदेश किस को ?

सज्जनो, स्थानाङ्ग सूत्र मे एक चतुर्भङ्गी आती है कि 'आदेश दो, परन्तु उपदेश मत दो १ । उपदेश दो, परन्तु आदेश मत दो २ । आदेश भी दो और उपदेश भी दो ३ । तथा आदेश भी मत दो और उपदेश भी मत दो ४ । यह चतुर्भङ्गी है, इस पर शास्त्रज्ञों को—शास्त्र के वेत्ताओ को पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए कि चतुर्भङ्गी क्यो बतलाई गई है ! गम्भीर चिन्तन करने पर ज्ञात होता है कि इसमे गूढ रहस्य भरा हुआ है । जिस भूमि मे जिस बीज के भले प्रकार से उत्पन्न होने की सभावना हो, वही पर उसका बोना लाभ-दायक होता है । परन्तु जहा बोने पर उसके विनाश की सभावना हो, वहा पर उसे बोने से क्या लाभ हो सकता है ? आपके पास केशर, कस्तूरी, अम्बर आदि बढिया से बढिया वस्तुए हैं, उन्हे आप अच्छी डिब्बी मे बन्द करते हैं और तिजोरी मे रखते हैं । यदि उसे तिजोरी मे न रखकर हीग के डिब्बे मे रख दो, तो बतलाओ वह मिट्टी होगी, या नही ? अवश्य ही मिट्टी हो जायगी । यद्यपि केशर, कस्तूरी आदि बहुमूल्य, बहु-लाभ-दायक एव अति उत्तम वस्तुए हैं, तथापि उनको खोटे स्थान पर रख देने से वे मिट्टी की हो जाती हैं, उनमे न उनकी सुगन्धि ही रहती हैं और न वे फिर कुछ लाभ ही पहुँचा सकती हैं उत्तम वस्तु को अधम स्थान पर रखने से यही नुकसान होता है । दूसरे किसी

चाहिए कि हिंसा करना बुरा है और जीवो की रक्षा करना अच्छा है। सच बोलना अच्छा है, झूठ बोलना बुरा है, चोरी करना बुरा है और किसी की वस्तु का बिना दिये नही लेना अच्छा है। स्त्री-सेवन करना बुरा है, ब्रह्मचर्य पालना अच्छा है। अपनी जरूरत से अधिक वस्तुओ का सचय करना बुरा है, और अपनी इच्छाओ को सीमित रखना उत्तम है। इस प्रकार भले—बुरे का ज्ञान करा करके बुरे कामो से लोगो को छुडाना और अच्छे कामो मे लगाना ही उपदेश का फल है। इसीलिए अच्छे और बुरे का उपदेश देकर ज्ञान कराना आवश्यक है। क्योकि जब तक बुरे काम का बुरापन नही बताया जायगा, तब तक अच्छे कार्य का अच्छापन कैसे सिद्ध होगा ? उपदेश अच्छे प्रकार से दो, अच्छी युक्तिया लगाकर दो और जितना सुन्दर तुम्हारे दिमाग मे मसाला है, उसे सुन्दर से सुन्दर बनाकर श्रोताओ के सामने रखो। इस प्रकार से सामने रखा गया उपदेश श्रोताओ के हृदयो मे प्रवेश करेगा और वे उससे आनन्दित होगे। श्रोता लोग अपने अभीष्ट अर्थ के लिए उत्सुक रहा करते हैं। जब उनके सामने उनके मतलब की कोई बात आती है, तब वे उसे हर्ष के साथ तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं। आपको भूख लगी है, ऐसे समय पर यदि कोई मनुष्य सुन्दर जायकेदार भोजन थाल मे परोस कर आपके सामने बाजोट पर रख देवे, तो क्या फिर आप खाने मे पीछे रहेगे। किन्तु बडे हर्ष के साथ उसे खाना पसन्द करेगे। साथ ही कहेगे कि आज जैसी भूख लगी थी, तदनुकूल वैसा ही बढिया भोजन खाने को मिला है। अच्छी भूख लगने पर यदि अच्छा भोजन खाने को मिलता है, तो उसके रस से रक्त बनता है, रक्त से हड्डी, मास, मज्जा और वीर्य आदि बनता है और इससे आपका शरीर पुष्ट होता है।

भगवान का विशेष रूप से उपदेश देने के दो कारण है। जब हम शास्त्र की रूह को देखते हैं – उसूलो को देखते हैं, तब हमे पता चलता है कि भगवान ने समय-समय पर उपदेश देने को ही क्यो कहा ? और आदेश देने के लिए क्यो नही कहा ? भगवान का अभिप्राय यही है कि भद्र व्यक्ति को उपदेश देते रहो, वार-वार समझाते रहो। इस प्रकार समझाते-समझाते वह एक दिन समझ जायगा और सुमार्ग पर आ जायगा।

का उत्तर तो मैं दे दूगा। स्वामीजी ने व्याख्यान प्रारम्भ कर दिया। व्याख्यान समाप्त होने के बाद जब बाहिर निकले तो हाकिम साहब ने उस पडित के एक थप्पड मारी। अब वह करे तो क्या करे ? उस वक्त आजका जमाना नही था। परन्तु राजशाही जमाना था। उस समय कोई पूछने वाला नही था। आज तो जरा सी बात कहने पर हर कोई व्यक्ति सामना करने को तैयार है। क्योकि आजके हाकिम धोली आख के धनी हैं और पहिले के हाकिम लाल आखो के धनी थे। हा, तो जब हाकिम साहब ने उसे थप्पड मारी और फिर उससे पूछा कि क्यो, तुझे क्या हुआ ? उसने कहा—हाकिम साहब, हुआ तो बहुत है। मुझे थप्पड लगने से दर्द हुआ, दु ख हुआ है। हाकिम साहब बोले– बस, इसी दु ख-दर्द का नाम हिंसा है। यह जो थप्पड लगी और तुझे दु ख हुआ, इसी को हिंसा कहते हैं। किसी को थप्पड नही लगाना, उसे कष्ट नही पहुचाना और उसका मान-सम्मान रखना इसी का नाम अहिंसा है, दया है और करुणा है। उन्होने उससे पूछा कि अब तो समझ मे आगया कि दया क्या वस्तु है और हिंसा-अहिंसा क्या वस्तु है ? वह बोला हा साहब, अच्छी तरह समझ मे आगया। भाई, जैसा आदमी सामने होता है, उसके लिए वैसी ही परोसगारी करनी पडती है।

महाराज साहब सोजत मे एकवार भगवती सूत्र का व्याख्यान कर रहे थे। वही समीप मे एक व्यास जी भी भागवत का वाचन कर रहे थे। श्रोता लोग महाराज साहब के व्याख्यान मे अधिक आते थे और उधर-उनके व्याख्यान मे कम आते थे। यह देख करके व्यास जी मन ही मन कुडने लगे। सो ठीक ही है। नीति भी कहती है कि 'एकावृत्ति पर-वैरम्। अर्थात् एक-सी वृत्ति वालो मे परम वैर होता है। जिनके ज्ञान कम होता है उसे अपने प्रतिकूल वहुज्ञानी को देखकर चिढ आये विना नही रहती है। अत व्यास जी ने सोचा कि इस साधु का माजना विगाडना चाहिए। एक दिन अवसर देखकर—व्यासजी महाराज साहव के व्याख्यान मे आगये और पाच-सात मिनिट तक वैठकर पहिले तो व्याख्यान सुना। वाद मे खडे होकर पूछा– महाराज, आप क्या फरमा रहे हैं। महाराज ने उत्तर दिया—व्यास जी, भगवती सूत्र।

खुशामदी नही है। मैं आशा करता हू कि यह मुझे झुकायेगा। भाई, 'चोर' कहने से उसका दिमाग ठिकाने आ गया।

राजा श्रेणिक से अनाथी मुनि ने कहा कि 'अरे अनाथ, ? जब तू स्वयं अनाथ है, तो मेरा क्या नाथ बनेगा ? पहिले तो अनाथ शब्द सुनकर राजा का मुख बिगडा। परन्तु जब मुनि ने उसका अर्थ समझाया तो भक्त बन गया, भाई, समझाने के मार्ग भिन्न-भिन्न होते हैं। यही चतुरभगी का रहस्य है।

हा, तो भगवान कहते है कि उपदेश दो, परन्तु आदेश मत दो। उपदेश करने का सर्वत्र विधान है। सामायिक से बढकर इस जीव का कल्याण कारक और कोई नही है। भगवान ने सामायिक का उपदेश तो दिया। परन्तु सामायिक करो, त्याग करो, अमुक करो, तमुक करो, ऐसा उल्लेख कही नही मिलता है। पर आज के समय मे उस उपदेश पर रहे क्या ? ये पचम काल के चेले क्या करेगे ? तुम्हारे दिमाग मे तो और ही और वस्तुये भरी हुई हैं। तुम्हे तो पूरी शिक्षा और चोट लगे, तब करने को तैयार होओगे ? अन्यथा नही इसलिए ऐसे श्रोताओ को देना पडता है आदेश कि यह काम तुम्हे करना चाहिए और यह नही करना चाहिए।

तीसरा अग है—उपदेश भी दो और आदेश भी दो। जो महान विद्वान है, भव्यात्मा हैं और समझदार पुरुप है, उन्हे उपदेश और आदेश भी देना चाहिए। इन्हे उपदेश मिलेगा तो विशेप तत्व की पहिचान होगी। और आदेश मिलेगा तो वे विवेक-पूर्वक यत्नाचार के साथ काम करेंगे।

मूर्ख के आगे मौन !

चौथा भग है—उपदेश भी मत दो और आदेश भी मत दो। जो निठल्ले और निकम्मे है। कुछ भी न करना चाहते है और न सुनना ही चाहते हैं, ऐसे लोगो के लिए न उपदेश ही हितकर है और न आदेश ही हितकर है। उनके लिए तो आज्ञा दी गई है कि —

'सकिलेसकरट्ठाण दूरओ परिवज्जए।'

जहा पर क्लेश की सम्भावना हो, वहा उपदेश या आदेश कुछ भी मत दो, किन्तु उस स्थान को दूर से ही त्याग देना चाहिए।

एक तो पत्थर की नाव, फिर उसका केवटिया अन्धा है, फिर भी यदि कोई उस नाव में बैठकर समुद्र या नदी के पार पहुँचने की इच्छा करे तो वह पार उतार देगी ? अरे, वह तो डुबाएगी ही। उसके तिरने मे बडी अन्तराय है। वह तिरेगा क्या, परन्तु उसका तो पानी मे उलाघना भी नही हो सकेगा। किन्तु जो नाव काठ की है, बडी मजबूत और सुन्दर व्यवस्थित ढग से बनी हुई है, उसमे कही पर भी कोई छेद नही हैं और नाविक भी बडा चतुर और शक्तिशाली है फिर उसकी नाव मे बैठकर पार जाने मे कोई खतरा नही है। बीच मे चाहे जैसी भवर आ जाय, परन्तु उसको ऐसी मोड याद है कि वह भवर से नाव को बचाकर ले जायगा। वह स्वय भी तिरेगा और दूसरो को भी पार उतार देगा।

भाइयो, यह नाव की उपमा क्यो दी गई है ? यह पाप की, आश्रव की नाव है और आश्रव के छिद्रो द्वारा इसमे कर्म रूप पानी आ रहा है, वह भरेगी और बीच गहराई मे जाकर ले डूबेगी। आज ससार मे ऐसे-ऐसे पन्थ प्रकट हुए हैं कि जिनकी बातें सुन करके दातो तले अगुली दबानी पडती है। कितने ही पन्थ वाले उपदेश देते है कि जो शरीर का दान दोगे तो तुम्हे गगाजल के समान पुण्य होगा। एक महात्मा जी रामायण सुना रहे थे। उन्होने अपनी ही रामायण वाचना शुरू कर दिया—

कामी गुरु सो कृष्ण समाना क्रोधी गुरु दुर्वासा माना।

अरे भक्तो, तुम्हे गुरु की कुछ भी परीक्षा करने की आवश्यकता नही है, तुम्हे सन्तो के गुण-दोष नही देखना चाहिए। यदि वे कामी है, भोगो मे मस्त हैं, तो उन्हे कृष्ण का अवतार मान लेना चाहिए। और यदि गुरु क्रोधी है तो उन्हे दुर्वासा ऋषि का अवतार समझ लेना चाहिए। इसलिए गुरु से कभी दोष नही देखना चाहिए। यदि दोप देखोगे तो कालीधार डूब जाओगे। भाइयो, स्वय ही आप लोग सोच लेवें कि यह नाव काष्ठ की है, या पत्थर की है ? अरे, अपने अवगुणो को छिपाने के लिए उनको कृष्ण जैसा बना दिया। जो स्वय गिरे हुए हैं, डूब रहे हैं, वे दूसरो को क्या तारेंगे।

किसी के सामने पैरो पर पडकर और अपना पेट दिखला करके यह नही कहता है कि मैं भूखा हू, मुझे खाने को दो। वह मर जायगा, पर किसी के सामने दीनता प्रकट नही करेगा। जो कामधेनु है, उसके पास प्रात, मध्याह्न या सायकाल किसी भी समय जाओ, मगर वह यह कभी नही कहेगी कि मेरे थनो मे दूध नही है। यदि उसने नही का नाम ले लिया तो समझो वह कामधेनु नही है, किन्तु अन्य साधारण गाय है। कामधेनु से जब और जितना चाहो—दूध से वर्तन भर सकते हो। इसी प्रकार कल्पवृक्ष के नीचे कोई जावे और कहे कि मुझे अमुक वस्तु दो तो कल्पवृक्ष तुरन्त ही उसको मनोवाछित फल प्रदान करेगा। वह उससे जिस किसी भी वस्तु की याचना करेगा, कल्पवृक्ष बराबर उन सबको देगा। यदि कल्पवृक्ष मनोवाछित वस्तु न देवे और उत्तर मे कहे कि मेरे पास देने को नही तो समझ लो कि वह कल्पवृक्ष नही है, किन्तु कोई साधारण बिना फल वाला वृक्ष है। जिस व्यक्ति की भावनाए ऊची है, विचार उन्नत हैं, वे कभी ओछा या हलका विचार नही करते हैं। न कभी वे चिन्ता लाते है, न कभी उदास मुख ही रहते हैं। उनके मनमे कभी कुत्सित विचार या सकल्प-विकल्प भी नही होते है। वे तो आनन्द व सुख मे मग्न रहते हैं। जो बडे कहलाते है, उनके किसी बात की कमी नही रहती है। जब बडप्पन धारण कर लिया, गुणो मे बडे बन गये, तब उन्हे अपने भीतर छोटापन लाने की क्या आवश्यकता है? बडे पुरुष तो सदा अपना बडप्पन ही कायम रखेगे। उनको कडुआ कह दो, गाली दे दो, या किसी भी प्रकार का अपमान कर दो, फिर भी वे कभी भी अपने न्याय मार्ग से पीछे नही हटते हैं। किन्तु किसी ओछे व्यक्ति को कोई ओछा शब्द कह दो तो वह तुरन्त उछल पडेगा। परन्तु बडा आदमी नही उछलेगा।

आसोप ठाकुर महेशदान जी मरहठो की लडाई मे काम आ गये और मुकुन्ददास जी खीची भाग गये। तब दरबार ने कहा—कि महेशदान जी लडाई मे खूब लडे, परन्तु मर गये और मरहठो को भगा दिया। अब उनके पीछे कोई नही है और फौज की देख-रेख मुकुन्दसिह जी ने सभाल

बोली कि मुझको तो मालूम नही होता है कि कोई जीवित है ? बारठ जी जीवित होते तो मेरे बेटे की यह हालत नही होती ? तुम्हे मालूम होना चाहिए कि आसोप का धणी यही है। तब बारठ ने कहा—अरे, आप महेशदान जी की महारानी सा० हो ? उसने कहा—हा मैं ही हूँ और यह उनका राजकुमार है। महारानी के आग्रह पर वह बारठ वही ठहर गया और भोजन-विश्राम किया। फिर वह वहा से सीधा जोधपुर पहुँचा। दरबार की सेवा मे सब आठो मिसल के सरकार मौजूद थे। अब इस बारठ ने वहा जाकर दरबार को सलामी दी नही, नमस्कार किया नही और हाजरी भरी नही। बल्कि दरबार की ओर कुछ पीठ करके खडा हो गया। यह देखकर सरदारो ने कहा कि बारठ जी, क्या आप कभी दरबार मे आये हुए नही हैं ? ये चुप रहे और कुछ उत्तर नही दिया। तब सरदारो ने कहा कि क्या कम सुनते हो ? ये फिर भी चुप रहे। तब एक सरदार ने उठकर कहा कि थोड ऐसे सीधे हो जाओ। तब बारठ बोला—मै राजगद्दी के धणी को पीठ नही देता हू। परन्तु मैं तो गद्दी के अन्धे को पूठ देता हू। भाइयो, भरे दरबार मे ऐसा कहने पर क्या कोई जीवित रह सकता है ? तब दरबार ने कहा कि यह पागल कहा से आगया ? यह सुमते ही बारठ ने दरबार की ओर पीठ पूरी ही फेर दी और कहने लगा—सुनो सरदारो, मैं यहा एक सलाह देने को आया हूँ, हाजरी भरने को नही आया हूँ। आप राजपूत हैं और मैं बारठ हू। मेरा कर्त्तव्य है कि जहा राजपूत चूके, वहा जा करके मैं उन्हे सावचेत करू। सो मैं सावचेत करने को आया हू। आप सब लोग कान खोलकर सुन ले कि—

मर जो मती महेष ज्यूँ, राड बीचे पग रोप।
झगड़ा मे भागा जिके, आछी लई आसोप॥

वह कहता है कि इस जाति गादी के वास्ते कोई लडाई मे मरना मत और बच्चो को रुलाना मत। क्योकि जो लडाई मे पैर रोपकर, आसोप के ठाकुर के समान मरता है उसका पट्टा जप्त हो जाता है। परन्तु जिसने लडाई मे पीठ दिखाई और रण छोडकर भाग गया, उसको इनाम मे आसोप

बोली कि मुझको तो मालूम नही होता है कि कोई जीवित है ? बारठ जा जीवित होते तो मेरे बेटे की यह हालत नही होती ? तुम्हे मालूम होना चाहिए कि आसोप का धणी यही है। तब बारठ ने कहा—अरे, आप महेशदान जी की महारानी सा० हो ? उसने कहा—हा मैं ही हूँ और यह उनका राजकुमार है। महारानी के आग्रह पर वह बारठ वही ठहर गया और भोजन-विश्राम किया। फिर वह वहा से सीधा जोधपुर पहुँचा। दरबार की सेवा मे सब आठो मिसल के सरकार मौजूद थे। अब इस बारठ ने वहा जाकर दरबार को सलामी दी नही, नमस्कार किया नही और हाजरी भरी नही। बल्कि दरबार की ओर कुछ पीठ करके खडा हो गया। यह देखकर सरदारो ने कहा कि बारठ जी, क्या आप कभी दरबार मे आये हुए नही है ? ये चुप रहे और कुछ उत्तर नही दिया। तब सरदारो ने कहा कि क्या कम सुनते हो ? ये फिर भी चुप रहे। तब एक सरदार ने उठकर कहा कि थोडे ऐसे सीधे हो जाओ। तब बारठ बोला—मै राजगद्दी के धणी को पीठ नही देता हू। परन्तु मैं तो गद्दी के अन्धे को पूठ देता हू। भाइयो, भरे दरबार मे ऐसा कहने पर क्या कोई जीवित रह सकता है ? तब दरबार ने कहा कि यह पागल कहा से आगया ? यह सुनते ही बारठ ने दरबार की ओर पीठ पूरी ही फेर दी और कहने लगा—सुनो सरदारो, मैं यहा एक सलाह देने को आया हूँ, हाजरी भरने को नही आया हूँ। आप राजपूत है और मैं बारठ हू। मेरा कर्त्तव्य है कि जहा राजपूत चूके, वहा जा करके मैं उन्हे सावचेत करू। सो मैं सावचेत करने को आया हू। आप सब लोग कान खोलकर सुन ले कि—

मर जो मती महेष ज्यूँ, राड बीचे पग रोप।
झगड़ा मे भागा जिके, आछी लई आसोप॥

वह कहता है कि इस जाति गादी के वास्ते कोई लडाई मे मरना मत और बच्चो को रुलाना मत। क्योकि जो लडाई मे पैर रोपकर, आसोप के ठाकुर के समान मरता है उसका पट्टा जप्त हो जाता है। परन्तु जिसने लड़ाई मे पीठ दिखाई और रण छोडकर भाग गया, उसको इनाम मे आसोप

मिला है। तो रण से जो भागे, उसकी तारीफ है, जो रण मे रुके, शत्रु से लडे और उन्हे मारता हुआ मरे, उसकी तारीफ नही है। दरवार ने यह सुना तो सोचा कि यह झूठी वात नही कह रहा है, परन्तु सच कह रहा है और मेरा भाई लडाई मे मारा गया है। तव दरवार ने कहा—वारठ जी इधर आओ। लोग सोचने लगे कि अव तो इसकी मौत आ गई। किन्तु वारठ जी को कोई भय नही था। वह जानते थे कि ये क्षत्रिय है, ये व्राह्मण गाय, वच्चे और स्त्री के ऊपर हाथ नही उठाते हैं। यदि उठाने वाले होते तो मुझे अपने पास बुलाते नही। वारठ जी दरवार के पास गये। दरवार ने पूछा कि वारठ जी, क्या बोल रहे हो ! वारठ जी को जो सच्चा हाल सुनाना था, वह सव सुना दिया। दरवार ने भी सव शान्ति से सुन लिया। फिर पूछा कि यह वताओ कि महेशदान जी के कोई औलाद है क्या ? वारठ जी ने कहा—अन्नदाता, व्रारह वर्षों से तपस्या कर रही है। यह सुनकर दरवार क्रोधित होकर वोले—कि ऐसा नालायक वह कौन है जिसने मुझसे कहा कि उनके कोई औलाद नही है। यह भूल मेरी नही है। मुझे यह वताया गया कि महेशदान जी के कोई औलाद नही है। और कहा कि मुकुन्दसिह को—जिसने लडाई की देख-रेख की—उसे आमोप का ठिकाना दे दिया, अव बोलो सरदारो ! महेशदान जी के क्या कोई मतान नही है ? सवने एक स्वर से कहा—हे अन्नदाता ! यह सुनकर दरवार ने कहा—आप लोगो ने इतने वर्षों तक अधेरे मे रखा। और जिसने मेरी लाज रखी, उसके स्त्री और वच्चे रुलते फिरे, यह कहा का न्याय है ? यह तो वहुत अनुचित वात हुई है। अव मुकुन्ददास जी की जागीर जप्त की जाती है और वह महेशदान जी के लडके को दिलाई जाती है। उसका नाम है रार्यसिह जी। दरवार ने कहा कि जो मैं गार्यसिह जी को पट्टा दूगा, उस पर आसोप की साख लिखी जायगी, वह परवाना सही ममझा जायगा, अन्यथा नही। तथा उस विल्लू जी चारण को जिसने दरवार को गादी का अन्धा कहा था, उसे दरवार ने लाख रुपये का पट्टा दिया और कहा कि

तूने मेरी आखे खोली है। देखो—एक चारण ने दरबार से ऐसी बात कह दी, तो क्या वह मामूली बात थी। परन्तु वे इस बात को जानते थे कि यह कडुआ बोल रहा है तो इसके हृदय मे मेरे प्रति प्रेम है मेरे लिए दर्द है और इमीलिए यह ऐसा बोल रहा है। भाई, जीवन तो सब चाहते हैं, मरना कोई नही चाहता है। एक अदना आदमी को यदि अन्धा कह दो तो वह भी प्राण लेने को उतारू हो जायगा और कहेगा कि इसने मुझे ऐसा कह दिया।

प्रकृत मे आदेश और उपदेश भगवान की वाणी है। भगवान् यह कभी नही कहते कि तुम शिथिलाचार का पोषण करो और इस ओर कदम बढाते हो तो माफ हो जायगा। भाइयो, किये हुए कर्मों का फल तो भुगतना ही पडेगा। कहा भी है कि—

अवश्यं ह्यनुभोक्तव्यं कृत कर्म शुभाशुभम्।

तथा च—

कडाण कम्माण ण मोक्खअत्थि।

किये हुए कर्मों का फल भोगे विना छुटकारा नही है, किये हुए भले-बुरे कर्म अवश्य ही भोगने पडते है। इसलिए भगवद् वाणी पुकार-पुकार करके उपदेश दे रही है कि भाइयो, कर्म मत बाँधो। कर्मों से वचते रहो, उनके भार से हल्के रहो तो मार्ग अच्छा मिलेगा। कहा है कि—

जाकी भव थिति पक गई, ताको यह उपदेश।
वीतराग वाणी विषै कूर नही लवलेश।

वीतराग की वाणी मे कूट-कपट या कूडा कर्कट कुछ नही है। परन्तु जिन भव्यात्माओ की भवस्थिति पक गई है, उनके ही यह लगती है और उन पर ही इमका असर होता है। परन्तु जिनका ससार परिभ्रमण अभी वहुत शेप है, जो दुष्कर्मी हैं और दीर्घससारी हैं, उनको भगवद्-वाणी नही लगती है नही रुचती है। फिर आज के मनुष्यों की तो ताकत ही

क्या है ? जैसे जमाली ठिकाने गया, इधर देखो तो भगवान का जमाई और उधर शिष्य था। इससे बडा और सम्बन्ध क्या हो सकता है ? परन्तु जिनके घट मे सम्यक्त्व नही है, उनको उपदेश लगना बहुत कठिन है। उपदेश होता है हलुकर्मी-लघुकर्मी जीव के लिए, बहुकर्मी या दीर्घससारी पुरुष के लिए किसी का कोई भी उपदेश कारगर नही होता।

वि० स० २०२७ भाद्रपदकृष्णा ५
जोधपुर

१३ | आत्मदर्शन का साधन—धर्मध्यान

उग्ग तवयरणकरणेहि झाणं गया,
धम्मवरझाण सुक्केक्क झाण गया।
णिब्भर तवसिरीए समालिगया,
साहवो ते महामोक्खपहमग्गया ॥

इस स्तुति मे साधु महाराज का स्मरण करते हुए कहा गया है कि वे उत्कृष्ट धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान मे निमग्न रहते है। शुक्लध्यान तो श्रेणीपर चढने पर होता है और वह अन्तर्मुहूर्त मात्र मे ही कर्मों का क्षय करके जीवको परमात्मपद प्रदान करता है। उसकी प्राप्ति के लिए पहिले धर्मध्यान का होना आवश्यक है। धर्मध्यान यह एक शब्द है और इसकी वाच्यभूत वस्तु दो है। धर्म वस्तु भिन्न है और ध्यान वस्तु भिन्न है। इन दोनो के सम्मेलन से यह धर्मध्यान शब्द बना है। इनमे प्रथम वस्तु है धर्म। धर्म कब प्राप्त होता है? जब कि आत्मा स्वच्छ हो। यदि कपडा स्वच्छ श्वेत है तो उस पर आप जो भी रग चढाना चाहे, वही चढ जायगा। परन्तु जो कपडा रगा हुआ है, उस पर जो रग चढ सकता है, वही चढेगा आपकी इच्छा के अनुसार मन चाहा रग नही चढ सकता है।

धर्मोपदेशक कैसा हो ?

जो व्यक्ति यह विचार कर रहा है कि मैं धर्म का बडा प्रचारक हू,

उन्होने उन भागो को हृदयगम किया। परन्तु कुछ कसर रह गई। यह तो हिसाब है,बराबर मिलान मिले तो ही ठीक हिसाब बैठता है। मैंने आहार पानी किया। वे महात्मा जी आकर बोले—स्वामी जी, ये भागे आपने ऐसे कैसे कह दिये ? मैंने कहा कि कैसे कह दिये ? कैसे कहना चाहिए, आप फरमाओ। बोले—आपने यो कैसे कह दिया ? मैंने कहा कि यदि मैं चूक गया और मिलान नही बैठा है तो आपको कहा शका खडी हुई है ? उनका मतलब था कि मैं दूसरी बार कह दू तो उनको वे भागे ठिकाने बैठ जावें। इस प्रकार हम इनसे यह चीज भी ले लेवें और इनका उपकार मानने की भी जरूरत नही रहे। इस प्रकार उन्होने दो-चार बार आटा खाया। तब मैंने उनसे कहा कि ऐसे आटा मत खाओ। परन्तु साफ कहो कि यह चीज ऐसी नही किन्तु ऐसी है। भाई, हम तो व्यापारी हैं। जो वस्तु जहा से मिलती है, उसे वहा से ले लेते हैं। तो कहा है कि—

गीते नादे पठे वादे—सग्रामेषु सुसग्रहे।
आहारे व्यवहारेषु-प्राप्ते लज्जा न धारयेत् ॥१॥

गीत तो गाने को तैयार हो गये और राग याद नही है। जिसे वह राग याद है, यदि उसकी गरज नही करे तो वह स्वर घर मे बैठेगा क्या ? वाचने को तैयार [illegible] और मच पर जाकर [illegible] मुझे तो बोलने मे शर्म आती है, तो [illegible] धारे ही [illegible] [illegible]ो बैठे, अब आचार्य तैयार [illegible]र [illegible]। फि[illegible] [illegible] कहे कि मुझे तो पढने मे [illegible] आती [illegible]। पु[illegible] [illegible] छेड दिया और सुभट कहे [illegible] सुभटपना क्या रहा ? [illegible]ो के सामने कहने लगे [illegible]र्चा नही कर सकता। [illegible]। का सग्रह करना [illegible] अनेक स्थानो पर [illegible] का सग्रह नही कर

सकता है। कोई विद्वान् के पास भी हजारो प्रकार की वस्तुओ का ज्ञान होता है और लाखो का उत्तर दिमाग मे उपस्थित रहता है। कोई भी व्यक्ति, किसी भी समय किसी भी प्रकार का प्रश्न आकर पूछता है, तो वह तुरन्त उसके समुचित आगमोक्त उत्तर देता हैं और उसकी शका का समाधान कर देता है। उस समय यदि वह पोथी खोल कर उत्तर देता है तो पोथी की बात थोथी रह जाती है। परन्तु यदि पूछने के साथ ही प्रश्नकर्त्ता को समुचित समाधान मिलता है तो उसे सन्तोष प्राप्त होता है। किन्तु जो पल्लवग्राही पाण्डित्य वाले हैं, जिनके पास जड-मूल, शाखा-प्रशाखा रूप तत्त्व ज्ञान कुछ भी नही है, केवल इधर-उधर के वृक्षो से उडे हुए पत्रो का सचय कुछ कर लिया है और उसके बल-बूते पर ही वह अभिमान करे कि मैं ही पडित हू, तो समझ लो कि वहा पाण्डित्य कुछ भी नही है। जहा पर अभिमान है—मान कषाय—है, वहा पर धर्मध्यान कहा से हो सकता है ? धर्म तो सरल हृदय मे ही ठहर सकता है, कोमल चित्त मे ही उत्पन्न हो सकता हैं और फल-फूल सकता है। कठोर हृदय मे धर्म नही ठहर सकता, न उसमे फल-फूल ही लग सकता है।

जो व्यक्ति धर्म का जिज्ञासु होता है तो उसकी यह भावना रहती है कि यदि मुझे कही मे कोई धर्म की बात मिले तो मैं उसे ग्रहण करूं। नई बात उसे तभी मिलेगी, जबकि वह जिज्ञासु होगा। वह यदि प्राप्त निमित्त से नई बात ग्रहण करेगा, तो उसके हृदय मे वह फूलेगी-फलेगी। जो धर्म का प्रेमी है, वह जहा से और जिस व्यक्ति से जो बात ग्रहण करेगा, तो उसके लिए वह उसका कृतज्ञ रहेगा और कहेगा कि मैंने अमुक गुरु से यह बात जानी है, तो समझिये कि उसके हृदय मे गुरु भाव है। किन्तु जो दूसरो से ज्ञान को प्राप्त करके भी उनके प्रति कृतज्ञभाव नही रखते है और दूसरो से ली बात को स्वय ही अपने दिमाग की उपज बतलाकर उसके मालिक बनते है, समझो कि उनके भीतर धर्म की वासना भी नही है।

मैं एक जगह व्याख्यान दे रहा था। प्रकरण मे कुछ भागे आये। मैंने उनका स्वरूप बताया। एक अन्य सम्प्रदाय के महात्मा जी सुन रहे थे सो

उन्होने उन भागो को हृदयगम किया । परन्तु कुछ कसर रह गई । यह तो हिसाव है,वरावर मिलान मिले तो ही ठीक हिसाव वैठता है । मैंने आहार पानी किया । वे महात्मा जी आकर वोले—स्वामी जी, ये भागे आपने ऐसे कैसे कह दिये ? मैंने कहा कि कैसे कह दिये ? कैसे कहना चाहिए, आप फरमाओ । वोले—आपने यो कैसे कह दिया ? मैंने कहा कि यदि मैं चूक गया और मिलान नही वैठा है तो आपको कहा शका खडी हुई है ? उनका मतलव था कि मैं दूसरी वार कह दू तो उनको वे भागे ठिकाने वैठ जावें । इस प्रकार हम इनसे यह चीज भी ले लेवें और इनका उपकार मानने की भी जरूरत नही रहे । इस प्रकार उन्होंने दो-चार वार आटा खाया । तव मैंने उनसे कहा कि ऐसे आटा मत खाओ । परन्तु साफ कहो कि यह चीज ऐसी नही किन्तु ऐसी है । भाई, हम तो व्यापारी हैं । जो वस्तु जहा से मिलती है, उसे वहा से ले लेते हैं । तो कहा है कि—

गीते नादे पठे वादे—सग्रामेषु सुसग्रहे ।
आहारे व्यवहारेषु-प्राप्ते लज्जा न धारयेत् ॥१॥

गीत तो गाने को तैयार हो गये और राग याद नही है । जिसे वह राग याद है, यदि उसकी गरज नही करे तो वह स्वर घर मे वैठेगा क्या ? वाचने को तयार हो गये और मच पर जाकर कहे कि मुझे तो वोलने मे शर्म आती है, तो भाई, फिर यहा पधारे ही क्यो ? पढने को वैठे, अव आचार्य तैयार और सव सामग्री भी तैयार है । फिर पढने वाला कहे कि मुझे तो पढने मे लाज आती है तो भाई मत पढो । युद्ध मे किसी ने छेड दिया और सुभट कहे कि मुझे तो मुकाविला करने मे शर्म आती है तो सुभटपना क्या रहा ? किसी से चर्चा करने को वैठ गये और फिर चार लोगो के सामने कहने लगे कि मुझे तो चर्चा करने मे शर्म आती है तो वह फिर चर्चा नही कर सकता । इसलिए जिज्ञासु व्यक्ति को सदा उत्तम उत्तम वस्तुओ का सग्रह करना चाहिए । सभी वातें एक स्थान पर नही मिलती हैं, अनेक स्थानो पर मिलती है । यदि इसमे भी लाज रखोगे तो कुछ भी ज्ञान का सग्रह नही कर सकोगे ।

विनय से विद्या

हा, तो मैंने उन महात्मा जी से कहा कि हमे किसी प्रकार की कोई उज्र नही है, आप फरमाइये। तब उन्होने कहा कि मुझे याद नही है। तब मैंने कहा—स्वामी जी, यह जैन मार्ग है विनय का। कपटाई का नही है। आप कपटाई के साथ मेरी भूल बताकर स्वीकार कराना चाहो तो मैं भी कोई जाति का कुम्हार नही हू। और आपको गोते खाने की आवश्यकता नही है कि यो नही। यह बात सुनते ही उनके पैर फूल गये और यथार्थ बात को स्वीकार कर लिया। भाई यथार्थ बात यह है कि यदि हम किसी से कोई बात लेना चाहे, तो विनय के साथ ही ली जा सकती है, अकडाई के साथ नही ली जा सकती है। विनय से, विनम्रता से हम किसी से भी काम ले सकते हैं,परन्तु अकडाई या कपटाई से नही ले सकते हैं। यदि किसी बात को सुधार पर लाना है तो अपने को ऐसी प्रकृति बनानी पडेगी जिससे कि किसी को कोई अडचन पैदा न होवे।

बम्बई मे लाल तालाब है, पानी काम मे आता है। लोग सुपात्र भी होते हैं और कुपात्र भी होते हैं। आपके जोधपुर मे भी रामसर और पद्म-सर हैं। इनका पानी पीने के काम आता है। तो क्या वहा टट्टी जाने वाले भी है, या नही ? हैं। इसी प्रकार बम्बई के उस लाल तालाव मे भी लोग टट्टी जाने लगे। सरकार के पास शिकायत पहुची तो लोगो का चालान भी होने लगा। परन्तु लोग तो टेढ़े है। उन्होने टट्टी जाना बन्द नही किया। तब महात्मा गाधी का वहा जाना हुआ। उन्होने कहा कि रिपोर्ट क्यो करते हो और हाका भी क्यो करते हो ? मैं इन्तजाम कर दू गा। अब वे महात्मा जी वडे सवेरे ही एक हाथ मे बालटी और दूसरे मे झाडू लेकर लाल तालाव पर जा पहुचे। अव जो लोग वहा टट्टी जाने लगे तो वे उसे साफ करने लगे। लोगो को ज्यो ही इसका पता लगा तो आकर कहने लगे – वावा सा० यह क्या कर रहे हो ? उन्होने कहा—मैं ठीक ही तो कर रहा हू, क्योकि यह स्थान उत्तम है, पानी पीने का स्थल है, अत यहा पर लोगो का टट्टी जाना मुझे पसन्द नही है। आप लोग खूब जाओ, मैं आपकी सेवा करने को

तैयार हू। उन्होंने इस प्रकार वहा पर दो-तीन दिन सफाई की। जिसका परिणाम यह हुआ कि आज तक वहा कोई भी टट्टी नही जाता है। भाई, जब उन महात्मा जी ने स्वय यह काम हाथ मे लिया और मान को हटाया तब जा करके सुधार हुआ। यदि हम स्वय तो सुधार करना चाहे नही और दूसरो की आलोचना करें और टीका-टिप्पणी करें तो फिर काम कैसे चलेगा ?

विवेकहीन भी अंधे के समान

दुनिया मे लोग पूछते है कि ज्ञानी अधिक हैं, या अज्ञानी ? अब आप क्या उत्तर देंगे ? आपको यही कहना पडेगा कि अज्ञानी अधिक हैं। एक बार बादशाह अकबर ने बीरबल से पूछा—कि बीरबल, दुनिया मे अन्धे अधिक हैं, या सूझते अधिक हैं ? पूछने वाले का मुख खुला है, वह कुछ भी पूछ सकता है। तब बीरबल ने उत्तर दिया—जहापनाह, अन्धे अधिक हैं और सूझते कम है। अकबर बोला—अरे बेवकूफ, यह क्या बात कर रहा है। अरे, अन्धे तो गिनती के इने-गिने ही मिलते हैं और सूझती तो सारी दुनिया है ही। यह हम प्रत्यक्ष मे देख रहे हैं। परन्तु तूने यह कैसे कहा कि अन्धे अधिक है। बीरबल ने कहा, बादशाह सलामत को किसी दिन बता दूगा। एक दिन बीरबल लाल किले के दरवाजे के सामने फटे-पुराने जूते लेकर बैठ गया और पास मे एक रजिस्टर भी रख लिया। वह स्वय जूते सीने लगा। अब जो भी किले के भीतर जाता है, अथवा बाहिर निकलता है, तो वह पूछता है कि बीरबल सा०, आप क्या कर रहे हैं ? ऐसा कहते ही उसका बीरबल रजिस्टर के भीतर अन्धो की सूची मे लिख देता है। इस प्रकार हजारो आदमी आये और गये, सभी ने यही प्रश्न किया कि बीरबल, क्या कर रहे हो ? बीरबल उन सबके नाम अन्धो की सूची में लिखता गया। थोडी देर के बाद बादशाह की सवारी भी आ गई। उन्होंने भी वही पूछा कि बीरबल, क्या कर रहे हो ? बीरबल ने बादशाह का नाम भी अन्धो की सूची मे लिख लिया। आने जाने वालो मे बहुत ही कम लोगों ने नही पूछा कि क्या कर रहे हो। बल्कि उन्होने यही कहा कि बीरबल साहब, आपको

यह काम करना शोभा नही देता। वीरबल ने ऐसे लोगो का नाम सूझतो मे लिख लिया। दोनो सूचिया लेकर वीरबल दरवार मे गया और खडे होकर बोला—जहापनाह, अव आप इस रजिस्टर मे मुलाहिजा फरमा लीजिए कि अन्धे अधिक है, या सूजते। बादशाह ने रजिस्टर मे संख्या देखी तो मालूम हुआ कि अन्धे अधिक है और सूझतो की सख्या कम है। और आश्चर्य की वात यह थी कि अन्धो की सूची मे बादशाह का नाम भी लिखा हुआ था। यह देख बादशाह ने पूछा कि क्या यह सख्या गलत है? वीरबल बोला—नही जहापनाह, सख्या विलकुल ठीक है। तब बादशाह बोला—अरे, तूने तो मुझे भी अन्धो मे लिख दिया! वीरबल ने कहा—आप अन्धे हो गये होगे तभी आपका नाम अन्धो मे लिखा गया होगा। बादशाह ने पूछा कि मैं अन्धा कैसे हो गया होऊगा! वीरवल वोला—बादशाह सलामत, आपने मुझसे पूछा कि क्या कर रहे हो? उस समय क्या आपकी आखे नही थी? आप देख तो रहे थे कि मैं जूते सी रहा था। फिर भी आपने पूछा कि क्या कर रहे हो? यदि सूझते होते तो ऐसा कैसे पूछते?

भाइयो, कहानी का सार यह है कि आखो के होते हुए भी जिनके विवेक नही, वे मनुष्य अन्धो की श्रेणी मे ही है। सयम भी जीवन सुधार का मार्ग है और धर्म भी सुधार का मार्ग है। जो धर्मात्मा होता है, वह अभिमानी या अहकारी नही होता है। उसे कुछ भी कह दो, तो भी वह विचार नही करता है। आपने आज एक क्रोधी के सामने क्रोध किया तो जीता कौन? क्रोधी जीता, या आप जीते? उस क्रोधी का प्रभाव आपके ऊपर पड गया, अत वह जीता और आप हारे। यदि क्रोधी के क्रोध करने पर आपने शान्ति धारण कर ली तो आप जीते, क्योकि उसका प्रभाव आप पर नही पडा। वल्कि आपका प्रभाव उस पर पडता है कि देखो—मैंने इतना भला-बुरा कहा, तो भी इन्होने मुझे कुछ भी नही कहा, प्रत्युत शान्ति रखी। यदि क्रोधी के द्वारा कुछ भी यद्वा-तद्वा कहे जाने पर कोई कहे कि उसने हमे ऐसा कह दिया तो क्या आप लखनऊ के नवाब हैं? अरे, आज तो लखनऊ के नवाबो के लडके भी वही पर तागा चलाते दिखाई देते हैं।

जो पहिले राजा-महाराजा थे, और जिनके लडके राजा साहब कहलाते थे, वे भी आज छोटे से छोटा काम करने लगे हैं तो क्या छोटे कहलायेंगे ? नही, नही कहलावेंगे। इसलिए किसी के द्वारा छोटा कह दिये जाने पर भी हमे न क्रोधित ही होना चाहिए और न उसे ही भला-बुरा कहना चाहिए।

रामचन्द्र जी ममदरिया श्री जयमल जी महाराज के निकटवर्ती थे। जयमल जी और रिडमल जी दो भाई थे। जिसमे से रिडमल जी के परिवार वाले नानणे मे हैं और अनुयायी हैं जयमल जी मा० मा० की सप्रदाय के। वे बैठे हुए थे। तब उन रामचद्रजी ने मुझसे पूछा कि साधुपना कब लिया ? और क्या-क्या पढ़े हो ? तथा 'साधु जी ने वन्दना नित नित कीजे' यह आता है, या नही ? मैंने उत्तर दिया कि कुछ आता है और कुछ नही आता है। तब रामचन्द्र जी ने कहा— अरे महाराज, साधु जी की वन्दना भी नही आती है, तो क्या पढा है ? मैंने कहा—भाई, चाहे जो समझ लो। इतने मे उनके भतीजे गजराज जी आये और बोले क्यो माथा फोड कर रहे हो ? इनका ज्ञान यही तक है। ये तो इसको ही खास ज्ञान समझते हैं तो इनके कहने मे गलत क्या है ? अब ये जो बात पूछे और मैं नही बताऊ तो कहेंगे कि महाराज क्या पढ़े है ? कोई साधु चौदहपूर्व का तो पाठी है और उनसे पूछा जाय कि नवकार मत्र आता है, या नही ? तो इसमे पूछने की बात ही क्या है ? यह तो आता ही है। कोई कुछ भी पूछें, मानने वाले को—सुनने वाले को—थोडी गम्भीरता रखनी चाहिए। कोई कहता है कि उसने हमे ऐसा कह दिया ? अरे भाई, तुम किस बाग की मूली हो ? अरे प्रधानमत्री इन्दिरा गाधी को विरोधी पार्टी वाले प्रतिदिन कितने और कैसे-कैसे शब्द कहते हैं और आये दिन काले झण्डे दिखाते हैं। पर वे क्या इसका विचार करती हैं ? स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद पन्द्रह अगस्त को दिल्ली मे लाल किले के ऊपर हमेशा झण्डा फहराया जाता है। इस वर्ष उन्हे पहुचने मे दो मिनिट की देरी हो गई तो दूसरे ने झण्डा फहरा दिया। तब सब कहने लगे कि इन्दिरा जी ने क्यो नही फहराया ? यह तो अपशकुन हो गया। अब ये अधिक दिन प्रधानमत्री के पद पर नहीं रह सकती है। भाई, यह बड़े

कि क्या तुमको पता है कि वे क्यो नही पहुची ? कोई आवश्यक कार्य हो गया होगा जिससे वे पहुच न सकी। पर इतने मात्र से लोगो ने कह दिया कि इसके हाथ से झण्डा गया। यदि लोगो की जबान पर अकुश रहे, तो वे विचार कर कहेगे। कहने वाले कुछ भी कहा करे, हमे अपने भीतर थोडा विवेक रखना चाहिए और गम्भीरता से हर बात का विचार करना चाहिए।

धर्म की परिभाषा

प्रकरण चल रहा है धर्मध्यान का। धर्म शब्द की परिभापा लोगो ने—विभिन्न मतावलम्बियो ने अनेक प्रकार से की है। मगर धर्म शब्द ध्री धातु से गना है, तदनुसार अर्थ होता है **धरति ध्रियते, धार्यते अनेन वा धर्मः।** अर्थात् जो हमे धारण करे,वह धर्म है। इसी प्रकार ध्यान शब्द 'ध्यै चिन्ताया' धातु से वना है। **ध्यायते इति ध्यानम्।** जो चितवन किया जाता है,वह ध्यान कहलाता है। इस प्रकार धर्म और ध्यान शब्द की व्युत्पत्ति भिन्न-भिन्न है। धर्म क्या वस्तु है, इस बात के विचार को, चितवन करने को धर्मध्यान कहते है। धर्म का लक्षण कहा गया है कि **'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिर्भवति स धर्म**। अर्थात् जिससे अभ्युदय (सासारिक सुख) और निःश्रेयस (मुक्ति सुख) की सिद्धि या प्राप्ति होती है, वह धर्म है। इस प्रकार से सुख पाने का मूल आधार है—हृदय की स्वच्छता और सरलता। जब तक हृदय स्वच्छ नही होता, नाना प्रकार के विकल्पो से विमुक्त होकर सरल नही बन जाता है, तव तक धर्म का प्रादुर्भाव नही हो सकता है। धर्मरूपी अमृत को हृदय रूपी कमल मे धारण किया जाता है। धर्म धारणा करने के आठ गुण श्रीमद् स्थानाग सूत्र मे वतलाये गये है। जिसमे वे आठ गुण होवे तो समझना चाहिए कि वह धर्म का रागी है, उसके हृदय मे धर्म का वात्सल्य और प्रेम है। जिसमे ये आठ गुण नही हो तो समझना चाहिए कि वह धर्मानुरागी नही है और धर्म से अभी वह बहुत दूर है। वे आठ गुण ये है—

करुणा वत्सल सज्जनता, आतम निन्दा पाठ।
समता दमता विरागता, धर्म राग गुण आठ ॥१॥

मनुष्य के भीतर सबसे पहिले करुणाभाव होना चाहिए। अर्थात् सर्व-प्राणियो को अपने समान समझे, उनको अपना कुटुम्बी माने, उनके दुख को अपना दु ख समझ करके उसे दूर करने का प्रयत्न करे। प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति चाहे और स्वप्न मे भी दूसरे को दु ख पहुचाने की भावना न रखे। अपनी निन्दा करे, अपनी भूलो को देखे, और उन्हें निकालने का प्रयत्न करे। दूसरो के दोपो को न देखे, न सुने और न कहे। महात्मा गाधी कही पधारते, किसी काम को हाथ मे लेते और सफलता नही मिलती तो कहते कि मेरे भीतर कोई कमी है, इससे मेरी वात का लोगो पर प्रभाव नही पडा है। वे अपनी भूल को देखकर आत्मशुद्धि के लिए प्रायश्चित स्वरूप उपवास करते और कमी का दण्ड लेते थे। इसलिए आत्मशुद्धि के लिए आत्म-निरीक्षण करना वहुत आवश्यक है। मनुष्यो को आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिए और अपनी भूल दृष्टिगोचर होते ही अपनी निन्दा करनी चाहिए। तथा हृदय मे समभाव होना चाहिए। जैसे '**सागर पड्या सो लीन**' जो भी वस्तु आकर समुद्र मे पडी, वह उसी मे लीन हो जाती है। वैसे ही जो भी धात समय पर भली-वुरी आ जावे तो उसे आत्मसात् कर लेवे, परन्तु ऊपर परिवर्तन न दिखाई देवे। तथा इन्द्रियो का दमन करे। इसी प्रकार आत्मा मे उद्योत और उत्साह होना चाहिए। ये आठ गुण जिस व्यक्ति मे हैं, वही धर्म का अनुरागी है। जिसने अभी धर्म तो नही धारण किया है, परन्तु धर्म का अनुरागी-प्रेमी बना है और उसमे उक्त आठ गुण आ गये है तो वह धर्मात्मा ही समझना चाहिए।

जो व्यक्ति औरो को तो उपदेश देवे। परन्तु उनसे पूछो कि सामायिक भी करते हो ? तो कहता है कि मुझसे सामायिक नही वन पाती है। तो भाई, क्या कम और कमाई ही वन आती है। कोई कहे कि सामायिक मे कुछ नही रखा है। तो मैं उनसे पूछता हू कि क्या निन्दा करने मे, अग्नि का आरम्भ करने मे रखा है ? धर्म किस मे रखा है। अरे, तुमने सामायिक होती नही, सवर होता नही, त्याग और प्रत्याख्यान होता नही। फिर ऐसे

ही पच बनने को तैयार हो गये ? तो भाई, ऐसे काम नही चल मकता है। पहिले स्वय रास्ते पर चलो और चलते-चलते जब रास्ते का आनन्द तुम्हे आ जाये, तब दूसरो को भी आनन्द दो। परन्तु जो लोग स्वय तो धर्म-साधन करते नही और करने वालो से कहे कि इसमे क्या रखा है ? अरे, लोगो को इकट्ठे कर लिए और अपने पक्ष के कुछ लोग बुला लिए और लगे अपने स्वार्थ-सिद्धि के भाषण देने तो क्या इसमे ही सिद्धि है ? ये काग्रेस की पार्टिया आती हैं और बडे-बडे नेता भाषण देते है तो लोग हजारो की सख्या मे इकट्ठे हो जाते है। वे लोग जब सभा-मच पर अपनी बात रखते हैं तो सभी के मस्तिष्क मे यही आ जाता है कि ये सही कह रहे हैं। जब वे लोग सभामच से चले जाते है और दूसरी विरोधी पार्टी वाले भाषण देने लगते है तो उसे सुनकर वे ही लोग कहने लगते है कि वे लोग ठीक नही कह रहे थे, किन्तु ये लोग ठीक कह रहे है। भाई, सब लोग सब कुछ कह आखिर मे अपने मतलब के ऊपर आते है और कहते हैं कि भाइयो, ध्यान रखना और अपना उत्थान चाहो तो अपना कीमती वोट हमारी ही पार्टी को देना। इस प्रकार अन्त मे सब अपने स्वार्थ पर आ जाते है। किन्तु जो बात परमार्थ की है, वह तो परमार्थ की ही है। वह तो आनन्द की ही वस्तु है, उसमे हमे या किसी भी सन्त वक्ता को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से कोई प्रयोजन नही है। वह तो जो कुछ भी कहेगा, वह सब आप लोगो के हित के ही लिए कहेगा।

अपनी कमी औरो के सिर

आप सामायिक करने के लिए बैठे हैं, एक मुहूर्त्त, दो मुहूर्त्त या चार-छह मुहूर्त्त का नियम लेकर बैठे है, तो आपने उतने समय तक की मर्यादा कर ली कि इतने समय तक सर्व प्रकार के सावद्ययोग का त्याग कर समभाव मे अवस्थित रहूगा। इस प्रकार जितने समय तक सामायिक मे बैठे हो, उतने समय तक सभी पापास्रवो से अलग हुए, या नही ! भाई, आस्रव से जितना बच सके, उतना ही अच्छा है। अब कहो

कि मन तो ठिकाने ही नही है, फिर सामायिक करने से क्या लाभ है ? ऐसा कहने वालो ने एक ही पूछडा पकड रखा है ।

कबीर जी ने कहा है—कि मुख से जो वचन निकला सो निकल गया, वह तो वापिस नही आ सकता है । किन्तु यदि मन बाहिर जायगा तो वह इधर-उधर भटक कर कुछ देर मे तो ठिकाने आ ही जायगा । आपने यहा पर बैठे बैठे मन मे विचार किया कि अमुक व्यक्ति की तिजोरी का ताला तोडकर रकम निकाल ल । परन्तु वचन से नही कहा, तो गिरफ्तार नही होओगे, क्योकि चोरी नही की है । जो लोग केवल एक मन को लेकर ही सामायिक करने वालो की समालोचना करते हैं, वे लोग स्वय भी बिगडते हैं और दूसरो को भी बिगाडते हैं । मैं पूछता हू कि इस प्रकार कहकर और लोगो से सामायिक करना छुडवाकर आप क्या लोगो को नास्तिक बनाना चाहते हैं ? ऐसे-ऐसे सूठ-हल्दी के पसारी मिलते हैं जो लोगो को कुहेतु देकर बिगाडते है और कहते हैं कि जो महाराज के पास पढते हैं, मुहपत्ती बाधते हैं और प्रतिदिन व्याख्यान सुनते है, वे लोग देखो तो सही कि कैसे-कैसे काम करते है ? उनके ऐसे कार्यो को देखकर हमे सामायिक करना अच्छा नही लगता है, हमारी उस पर से श्रद्धा उठ जाती है । ऐसा कहने वालो से मैं कहता हू कि यदि किसी ने दिवाला निकाल दिया तो उसी के गीत क्यो गाते हो ? साहूकार के गीत गाओ । जो बर्बाद होता है, उसे होने दो । परन्तु तुम तो साहूकार से मेल-मिलाप रखो । परन्तु कहा है कि—

"आप हुए दीवालिए, कठे हुडियो चाले ।
ग्रत पोता से ना पले-जब शका लोगारे घाले ।"

स्वय तो दिवालिया हो गया । पर यदि उससे पूछो कि बाजार का व्यवहार कैसा है ? तो कहता है कि बाजार ही पर चार गया है और सब दिवालिया है । यह तो आपकी पुण्यवानी से एक आना, दो आना, चार-आठ आना या सोलह आना बचा हुआ है । मान गौरव यही है । जो लोग समझदार है, वे समझ लेते हैं कि दिवालिया यही है । अरे, दिवालिया तो एक दो व्यक्ति ही होते हैं बाजार भर के सभी लोग दिवालिया थोडे ही

होते है ? वाजार तो साहूकार ही कहलायगा। जो लोग पास मे बैठते हैं और काम-काज करते हैं, परन्तु अशुभ कर्म का उदय अधिक प्रबल है— तिरने का अवसर नही आया है, तो ऐसे व्यापार मे बैठकर भी कमाई नही कर सके, तो यह परवश की बात है। परन्तु जो सुधार करे तो क्या यह कम है ? अरे, आज भी भरी जवानी मे चोथे ब्रह्मचर्य व्रत के धारण करने वाले हैं, लीलोती (सचित्त हरी) का त्याग कर रहे है तो क्या यह कम बात है ? केवल इस जीभ को हिलाकर दूसरो की टीका-टिप्पणी करने से क्या होता है ? परन्तु करने मे—व्रत-नियम धारण करने मे जोर पडता है। इस नई अवस्था मे जिन्होने खाना-पीना और ऐशो-आराम करना छोडा और घर-वार से मुख मोडा तो उनका यह त्याग तो त्याग ही है। त्याग का फल तो उनको मिलेगा ही। यदि ऐसा व्यक्ति परिणामो की उच्च श्रेणी पर चढ जाय, तो थोडे से परिश्रम से अधिक प्राप्त हो जाता है। यदि उस श्रेणी पर नही चढ पाता है तो जितना लाभ मिलना चाहिए, उतना नही मिलता है। भाई, वात यह है कि लापसी जो बनती है तो उसमे सेर घी डालकर भी वनाते हैं और कोई पाच सेर मणमे डालते हैं और दस सेर घी भी डालते है। और सोजत मे तो तेतीसा घी भी डालते है, तो लापसी तो वह भी कहलाती है और यह भी कहलाती है। जैसा मसाला उसके भीतर पडेगा, वह वैसी ही वन जायगी। परन्तु कहलायगी लापसी ही।

सामायिक के लाभ

सामायिक करने से जहा पारमार्थिक लाभ है, वहा पर लौकिक लाभ भी है। मान लीजिए—आप यहा पर सामायिक करने के लिए वैठे है। यदि इस समय कोई सरकारी कर्मचारी वारण्ट लेकर पकडने को आगया, तो वह आप को धार्मिक कार्य करते देखकर रुकेगा और विचार करेगा कि धर्माराधन के समय पकडना उचित नही है। आपके सामायिक कर लेने पर ही वह वारण्ट की वात कहेगा। इस प्रकार लौकिक दृष्टि से भी सामायिक करने मे लाभ ही है। किन्तु जो केवल पचायती ही करता फिरे और कहे कि इसमे क्या रखा है, तो भाई, तुम्हारे पास भी क्या रखा है सो बताओ ?

प्रत्येक कार्य के करने मे समय देना पडता है, कुछ त्याग करना पडता है, तभी कार्य की सिद्धि होती है। दुनिया मे पडितो की कमी नही, उपदेश देने वालो की कमी और कथा-वाचको की भी कमी नही। ये तो सर्वत्र मिलते ही रहते हैं। परन्तु धर्म प्रभावना करने वाले वहुत कम मिलते हैं। धर्म प्रभावना और प्रचार की वात ठिकाने आकर वैठ जाय और दुनिया के मुख से यह वात निकले कि जैनियो की अमुक क्रिया वडी सुन्दर है, तभी धर्म की सच्ची प्रभावना समझना चाहिए। आज आप जैनियो के त्याग, तप और व्रत-प्रत्याख्यान आदि के लिए अन्य धर्मावलम्वियो के मुकाविले मे वोट लेकर देख लीजिए, जैनियो को ही सवसे अधिक वोट मिलेंगे। दुनिया मे अन्य तीर्थी भी वहुत हैं और वे भी अपने-अपने मत की वात करते हैं। परन्तु उनसे पूछ कर आप देखलेवें कि क्रिया और त्याग किसके अच्छे हैं ? तो वे भी कहेगे क्रिया और त्याग तो जैनियो का ही है। अन्यतीर्थी यद्यपि अपने-अपने मत का आचार-विचार पालन करते हैं, तथापि वे भी जैनियो के उक्त कार्यों की सराहना करते हैं। उनके भी वडे-वडे साधु हैं, महन्त और मठाधीश हैं और हजारो लाखो रुपये उनके पीछे वे लोग खर्च करते हैं। परन्तु अवसर आने पर वे भी कह देंगे कि साधुता तो जैनियो का है। न्याय की वात के लिए तो वे भी कह देंगे। और लडाई-झगडा करेंगे, तव तो अपन खारे लगेंगे ही। परन्तु महिमा तो त्याग की ही है। इसलिए जो धर्म है वह त्याग मे है। विना त्याग के धर्म नही है। किसी भी प्रकार का त्याग करते हो, यदि विवेक है तो धर्म अवश्य है। त्याग चाहे छोटा हो, अथवा वडा ? शक्ति के अनुसार जो विवेक पूर्वक किया जाय, वही सच्चा है। खेती की, परन्तु वोई कितनी ? जितनी कि जमीन थी और जितना वीज मिला, उतना ही वोया। अव यदि कोई कहे कि इतनी ही क्यो वोई ? तो उत्तर है कि भाई इतनी ही जमीन थी और वीज भी इतना ही था। तेरे पास जमीन अधिक है तो तू अधिक वो। यदि तूने थोडी भी जमीन वोई है तो धान तो उसके अनुसार आवेगा ही। इस सवके कहने का सार-निष्कर्ष—यही है कि हमे धर्म-कार्य करने मे सदा तैयार रहना चाहिए।

कल पचमी थी और पचमी मे छठ्ट का भेल आ गया तो औरतो के लिए अव छठ लग गई। ये वैष्णव स्त्रिया सवेरे से लेकर जब तक चन्द्रोदय नही होगा, तब तक खडे रहकर ही समय व्यतीत करेगी। वे भी कहती है कि हम धर्म कर रही हैं। उनके ऐसा करने मे थोडा-बहुत त्याग तो हुआ ही है।

मैं एकबार एकलिंगजी गया। उदयपुर का राज्य एकलिंगजी का ही माना जाता है, वह कैलाशपुरी भी कहलाती है। कैलाशपुरी के महन्त जी का राजशाही ठाठ-बाट है। मैंने उनसे कहा कि आप तो महन्तपने का बडा भारी आनन्द ले रहे हैं? वे कहने लगे—स्वामी जी, हमारी तो बडी आफत है। मैंने पूछा—कैसे? उत्तर मे कहने लगे कि सबेरे छह बजे जागते हैं, जिसके खडे-खडे साढे वारह बजते हैं और इतने समय तक नीचे नही बैठ सकते हैं। कही वाहिर भी नही निकल सकते हैं और किसी से बात भी नही कर सकते हैं। यदि बुखार भी चढ़ा हुआ हो तो भी खडा रहना पडता है। उनकी यह बात सुनकर मुझे यह ख्याल आया कि ये इतना वैभव भोगते है तो त्याग भी इनके पास है। यदि ये ६-६॥ घटे खडे रहने का परिश्रम प्रमाद-परित्यागरूप परिश्रम न करें तो महन्तपने की गादी से उतार दिये जायें। कई कनफड (नाथ) कान फडाते है, कितने ही विशेष प्रकार की छाप लगाते हैं, तो कितने ही लोग कुछ न कुछ कष्ट तो उठाते ही है। उनके मतानुसार तकलीफ तो उन्हे भी उठानी ही पडती है। बिना त्याग के कही भी महत्त्व नही मिल सकता है। इसलिए भाइयो, सर्वस्व का त्याग करो। यदि सर्वस्व त्याग की शक्ति नही है तो एक देश ही त्याग करो। आपको ऐसा उत्तम मार्ग मिल गया है फिर भी आप लोग इधर-उधर भटक रहे हो। आप लोगो को समकित का लेशमात्र भी ध्यान नही है। धर्मतत्त्व का, देव तत्त्व का कुछ भी वोध नही है और ऐसे ही मागधी पडित वनकर बैठ जाते हैं, तो इसमे क्या लाभ है? कुछ भी नही है।

राजा भोज की सभा मे एकवार एक विदेशी विद्वान् आया। वह प्रकाण्ड पण्डित था। उसकी उपलब्धि बडी जोरदार थी। उसने आते ही विद्वानो

को चुनौती दी कि धारा नगरी में चौदह सौ पंडित हैं। वे एक-एक करके मेरे सामने आवें और मुझे शास्त्रार्थ में जीतें। यदि मुझे नहीं जीत सकते हैं तो राजा लिख कर देवे कि यहां के सब विद्वान् हार गये। इसकी घोषणा सुन करके विद्वान् लोग आये और अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। इनमें जो साधारण पंडित थे वे तो उसका नाम सुनकर शास्त्रार्थ के लिए उठे ही नहीं अर्थात् बिना शास्त्रार्थ किये ही उन लोगों ने यह स्वीकार कर लिया कि हम इस आगन्तुक विद्वान का मुकाबला नहीं कर सकते हैं। और जो धुरन्धर विद्वान् थे, उन्हें वह आगन्तुक विद्वान् एक-एक करके परास्त करता ही चला गया। इस प्रकार शास्त्रार्थ होते दो-तीन दिन निकल गये। राजा भोज अपने विद्वानों को हारता हुआ देखकर चिन्तित हुआ कि मेरे पास १४०० विद्वान् हैं और यह क्रम से सबको जीतता चला जा रहा है। राजा को चिन्तित देखकर सब पंडितों ने एकत्रित हो करके कहा—महाराज, हार लिख दीजिए। राजा भोज ने कहा नहीं। पुन प्रत्यक्ष में उस आगन्तुक पंडित से कहा कि हमारे जो महामहोपाध्याय हैं, आप उससे चर्चा कीजिए। राजा ने सोचा कि कोई जैसे को तैसा विद्वान् मिल जावे और इसे जीत लेवे तो झंझट मिट जावे। दूसरे दिन प्रात:काल राजा भोज वायुसेवन के लिए निकले। रास्ते में उन्होंने गागला तेली को देखा जो कि रुपये की अधेली कर रहा था। वह घानी चला रहा था और कपड़े से लेकर तेल को डाल रहा था। वह एक बूंद भी तेल नीचे नहीं गिरने देता था। यह देखने में तो अच्छा था, परन्तु था क्रोधी। राजा ने देखा कि यह चतुर प्रतीत होता है। उसे बुला कर पूछा कि क्या नाम है? उसने कहा—मेरा नाम गागा है। राजा ने पूछा—अपने यहां बाहिर से पंडित जो आये हैं, उनसे शास्त्रार्थ करोगे? उसने कहा—हां महाराज, राजा ने पूछा—कैसे करोगे? वह बोला—हाथों से, बातों से और लातों से। जैसे भी वह करना चाहेगा, वैसे ही करूंगा। राजा ने पूछा—तू जीत जायगा? वह बोला—मैं तो जीता हुआ ही हूँ। अब भाई, पढ़ा हुआ हो तो जीते-हारे। परन्तु जिसे सारा अक्षर भैंस बराबर हो, वह क्या तो जीते और क्या हारे? राजा दूसरे

राजमहल वापिस आया और उसके लिए एक बढिया पोशाक भिजवा दी। उसे स्नान कराके, तिलक-मुद्रा लगवा के और बढिया पालकी पर बैठा करके सभा स्थल पर बुलवाया। दूसरे पडितो से कह दिया कि वे उसकी विरुदावली बोलते हुए उसके साथ-साथ-आवे। पडित लोग विचारने लगे कि यह क्या मामला है ? महाराज हम लोगो को इस तेली के सामने उसकी विरुदावली बोलने के लिए कह रहे है। गागा कहता है कि भगवान ने मेरी खूब सुनी। ऐसा ज्ञानी तो मैंने नही सुना। परन्तु जीत नूं तब बात है। इस प्रकार बड़े साज-बाज के साथ उसकी सवारी सभास्थल तक पहुच गई। इधर वह विदेशी विद्वान् जो कि पेट पर पट्टा बाधे हुए है, पास मे एक निसन्नी है, एक कुदाली है और घास का एक पूला लिए हुए बैठा है। उससे पूछा गया कि पेट पर पट्टा क्यो बांधा हुआ है ? तो वह उत्तर देता है कि मैं पढा बहुत हूँ। कही पेट न फूट जाय, इसलिए पेट पर पट्टा बांध रखा है। निसन्नी क्यो ले रखी है ? यह पूछने पर उत्तर देता है कि यदि कोई प्रतिवादी उडकर आकाश मे चला जाय तो इस पर चढकर उसे पकड के ले आता हूँ। यह कुदाली क्यो ले रखी है ? तो इसके उत्तर मे कहता है कि यदि कोई पडित चर्चा करते हुए पाताल मे चला जाय तो इससे भूमि को खोद करके बाहिर निकाल लाता हूँ। यह घास का पूला क्यो ले रखा है, इसके उत्तर मे वह कहता है कि जो पडित हार जाय, उसे खाने के लिए यह घास का पूला दे देता हूँ। इधर जब उसने देखा कि महामहोपाध्याय विद्वान् महाशय आ रहे हैं और उनकी विरुदावलियां बोली जा रही है। तब उसने सोचा कि यह कोई बडा प्रबल प्रवादी महापण्डित प्रतीत होता है। अत आज बोलने मे सावधानी रखनी होगी। वह शरीर मे हट्टा कट्टा भी है। वह विदेशी विद्वान् इस प्रकार अपनी कल्पना की उधेड-बुन मे सलग्न था कि इतने मे ही उस गागा तेली की सवारी आ गई। वह राजा को नमस्कार करके अपने स्थान पर बैठ गया। अब राजा ने उस आगन्तुक विद्वान् से कहा पडित जी, हमारे महामहोपाध्याय जी पधार गये हैं। अब आपको जो कुछ पूछना हो, वह इनसे पूछ लीजिए। भाइयो, जब सामने

वाले को देखकर मन मे कच्चावट आ जाती है, तब शरीर मे भी कमजोरी आ जाती है, इसलिए उसने सोचा कि यह महामहोपाध्याय है, बडा भारी विद्वान् है, तो इससे बोल कर शास्त्रार्थ न करके सकेतो से ही शास्त्रार्थ करना चाहिए। ऐसा विचार करके उसने शास्त्रार्थ प्रारम्भ करते हुए अपनी एक अगुली ऊँची की। उसकी एक अगुली को ऊँची देखकर गागा तेली ने दो अँगुलिया ऊँची कर दी। पुनः उस पडित ने अपना हाथ (पजा) सामने किया तो यह देखते ही गागा पडित ने उसके सामने मुक्का तान दिया, इस अभिप्राय से कि यदि तेरे पर यह पडा तो रसातल को चला जायगा। पडित तो पाडित्य के गम्भीर अभिप्राय से सकेत कर रहा है, परन्तु यह तो अपनी मूढ बुद्धि से उसका उत्तर दे रहा है। इस प्रकार उन पडितजी के हिसाब से दोनो प्रश्नो के उत्तर सही मिल गये। यह देखकर उन्होंने अपने पेट का पट्टा खोल दिया और शेष सब चीजें भी जमीन पर डाल दी। वह उठ कर राजा भोज से बोला—महाराज, आपके ये पडित जी तो बहुत बडे विद्वान हैं। इन्होंने मेरे गूढ प्रश्नो का गूढ रूप से ही सकेतो द्वारा सही उत्तर दे दिया है। राजा ने पूछा कि यह कैसे किया आपने ? पडितजी, आपने इनके साथ क्या चर्चा की, यह तो हमने कुछ समझी ही नही ? उन्होंने बताया कि मैंने अपनी एक अगुली ऊँची इस अभिप्राय से की थी कि परम ब्रह्म एक है, जो सर्वत्र व्यापक है। आपके पडितजी ने इसके उत्तर मे दो अँगुलियाँ ऊँची करके यह बताया कि परम ब्रह्म एक नही, किन्तु शिव और शक्ति ये दो हैं। मैंने उनका यह उत्तर स्वीकार कर लिया कि अकेला शिव कुछ नही कर सकता है, साथ मे शक्ति भी होनी चाहिए। फिर मैंने पाच अँगुलियाँ बतलाते हुए यह सकेत किया कि यह सारा विश्व पचभूतात्मक है। परन्तु आपके पडितजी बहुत योग्य विद्वान् हैं। उन्होंने मुक्का दिखा करके यह बताया कि पचभूत अलग-अलग कुछ काम नही कर सकते हैं। किन्तु जब वे एकत्रित हो जाते हैं तो उनमे एक चैतन्य शक्ति प्रकट हो जाती है। मैंने उनके इस उत्तर को भी स्वीकार कर लिया। राजा ने कहा—ठीक है, अब आप

पधारो। आपका कोई अपमान नही कर सकेगा और आपके भाग्य मे जो लिखा होगा, वह पुरस्कार आपको मिल जायगा। यह कह कर राजा ने उन्हे विदा किया।

तत्पश्चात् गागा तेली को राजा ने अपने पास बुलाया और पूछा कि बोल, तूने कैसे चर्चा की ? उसने उत्तर दिया—महाराज, वह पडित बडा बदमाश था। उसने मेरे सामने एक अगुली उठा कर यह सकेत किया कि मैं तेरी एक आख फोड दू गा। यह देख मुझे गुस्सा आया और उत्तर मे मैंने दो अगुलिया सामने दिखाकर यह सकेत किया कि मैं तेरी दोनो ही आखे फोड दू गा। राजा ने हसकर कहा—भाई, तुमने खूब शानदार चर्चा की। पुन महाराज, उसने मेरे सामने पजा उठाया, तो मैंने अपना मुक्का दिखाया कि यह मेरे हाथ का एक ही मुक्का तेरी छाती पर पड गया, तो फिर पीने को पानी भी नही मागेगा। राजा और सारे सदस्य सुनकर हस पडे और गागा तेली को यथोचित पुरस्कार देकर विदा किया।

भाइयो, इस प्रकार से शास्त्रार्थ मे विजय पाने वाले गागा तेली को सचमुच मे क्या विद्वान् समझा जायगा ? नही। भले ही मूर्ख लोग उसे शास्त्रार्थ-विजयी घोषित क्यो न कर देवें। पर वह शास्त्र-पारगत या शास्त्र-वेत्ता नही माना जा सकता है। इसी प्रकार जो एक दो बाते धारण करके पंडित बनना चाहे तो नही बन सकता है। यह तो तीर मे तुक्के के समान है। पडित बनने के लिए जिन-जिन बातो का परिज्ञान होना आवश्यक है, वह होना चाहिए। तथा उसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का भी वेत्ता होना चाहिए, तभी वह पडित मामा जा सकता है। ऐसा विद्वान् पुरुष ही धर्म मे स्थिरीभूत हो सकता है। और क्रिया मे भी वही दृढ हो सकता है।

हम क्या क्या पढ रहे हैं, इसका चिन्तवन करना ध्यान है। भगवान ने धर्म के चिन्तन-मनन को धर्मध्यान कहा है। इसके आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थान विचय इस प्रकार से चार भेद बतलाये हैं ? और

दश प्रकार के क्षमादि धर्मों का चिन्तवन करना, वारह भावनाओ का चिन्तवन करना भी धर्मध्यान ही है। धर्मध्यान तभी होता है जव आत्मा मे समता हो। समता की साधना के द्वारा मन स्थिर हो जाता है, अशुभ वृत्तियो से हटकर शुभ वृत्तियो की ओर वढता हैं, शुभ चिन्तन मे मन तल्लीन होता है, आत्मा ससार के उद्धार की भावना करता है, सवके सुखी होने का विचार करता है और ससार, देह और भोगो की क्षण भगुरता का विचार करता है वस यह भी धर्मध्यान ही है।

वि० स० २०२७ भादवा वदि ६

जोधपुर

●●

१४ | तृष्णा को त्यागो ।

सज्जनो, शास्त्रकार ने जिन भावो का प्रतिपादन किया है उन्ही के अनुसार अभी मुनि जी ने आपके सामने विवेचन किया है ।

अब हमको यह सोचना है कि जैसे नयी डिजाइन का एक विशाल मकान बना हुआ है । उसमे यत्र तत्र सर्वत्र यथास्थान उत्तम सामान, फर्नीचर, सुन्दर चित्र आदि सजे हुए हैं, उसी मकान मे एक बडा हाल है, जिसमे अनेकानेक आश्चर्यजनक वस्तुए भरी हुई हैं । उस हॉल ने एक अजायब घर – सा रूप धारण कर रखा है । बाहिर से आने वाले दर्शक यात्री भी उसे देखने को जाते हैं और उसकी भूरि-भूरि प्रशसा करके उसकी प्रसिद्धि मे चारचाद लगा देते हैं ।

उस महल की प्रशसा सुनकर एक दिन एक अन्वेषक पुरुष उसे देखने को पहुँचा । उसने बडे ही ध्यान से और सूक्ष्मदृष्टि से उन समस्त आकर्षक वस्तुओ पर अपनी नजर डाली । उसने एक-एक वस्तु को हाथ मे लिया, गौर से देखा, ठीक रीति से जाचा । पर वह जैसी वस्तु चाहता था, वैसी उसे प्राप्त नही हो सकी । अत: जैसे जहा से वह उठाता था, वैसे ही वही पर वह उसे सावधानी के साथ रख देता है । इस प्रकार एक-एक करके सारी वस्तुओ

की छान-बीन करते हुए काफी समय व्यतीत हो गया। उसे इसका कुछ भी भान नही हुआ।

उसके साथी जो मकान के बाहिर उसकी प्रतीक्षा करते हुए बाहिर खड़े थे, वे अन्दर आकर कहने लगे भाई, तुमने देखने मे बहुत समय लगा दिया अब जो लेना हो, वह शीघ्र ले लो और चलो। यह समय इस प्रकार व्यर्थ खोने का नही है। तब वह अन्वेषक बोला—साथियो, जब मैं किसी खास वस्तु का इच्छुक बनकर आया हू, तब मुझे समय जाने की चिन्ता नही है। परन्तु जिस वस्तु का इच्छुक हू, उसकी तो खोज करलू। उसे भली-भाति देख-भाल तो लू। तथा जिस वस्तु को देखकर आया हू उससे बढकर और कोई वस्तु दृष्टि गोचर हो जाय तो उसको ले लू। इसलिए आप लोग मुझे भलीभाति देख लेने देवे। साथियो ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार किया और वे सब शान्त भाव से बैठ गये।

वह व्यक्ति एक-एक करके सबको देखने के बाद एक कोने मे लगे कचरे के ढेर की छान-बीन करने लगा और उसे उस की मनचाही वस्तु उसके जीवन मे पहिली बार ही देखने मे आई थी। परन्तु वह उसका महत्त्व अवश्य ही जानता था। उसने आश्चर्य—चकित होते हुए कहा—यह इतनी दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण वस्तु है कि जिसे पाने के लिए सारा ससार लालायित है। परन्तु दुःख है कि ऐसी अप्राप्य बहुमूल्य वस्तु को कचरे मे डालने वाला व्यक्ति कितना मूर्ख है कि जिसने इसकी महत्ता को नही आका। उसे यह भी होश नही रहा कि ऐसी वस्तु को सभाल कर रखे।

इस प्रकार रखने वाले की आलोचना और और टीका-टिप्पणी करते हुए उस बहुमूल्य वस्तु को ले लिया। अब साथियो ने कहा—भाई, जिस वस्तु की तुम खोज मे थे, वह मिल गई है, अत अब और विलम्ब मत करो और यहा से चलो। तब वह कहता है—साथियो, अब मैं चलने को तैयार हू परन्तु एक बात है कि जो वस्तु अन्यत्र कही पर भी नही मिली थी वह यहा पर अनायास ही मिल गई है, तब सभव है कि यहा और छान बीन करने पर दूसरी इसी के अनुरूप बहुमूल्य कोई वस्तु हाथ लग जाय। ऐसा विचार कर

१४ | तृष्णा को त्यागो।

सज्जनो, शास्त्रकार ने जिन भावो का प्रतिपादन किया है उन्ही के अनुसार अभी मुनि जी ने आपके सामने विवेचन किया है।

अब हमको यह सोचना है कि जैसे नयी डिजाइन का एक विशाल मकान बना हुआ है। उसमे यत्र तत्र सर्वत्र यथास्थान उत्तम सामान, फर्नीचर, सुन्दर चित्र आदि सजे हुए हैं, उसी मकान मे एक बड़ा हाल है, जिसमे अनेकानेक आश्चर्यजनक वस्तुए भरी हुई है। उस हॉल ने एक अजायब घर - सा रूप धारण कर रखा है। बाहिर से आने वाले दर्शक यात्री भी उसे देखने को जाते हैं और उसकी भूरि-भूरि प्रशसा करके उसकी प्रसिद्धि मे चारचाद लगा देते हैं।

उस महल की प्रशसा सुनकर एक दिन एक अन्वेषक पुरुष उसे देखने को पहुँचा। उसने बडे ही ध्यान से और सूक्ष्मदृष्टि से उन समस्त आकर्षक वस्तुओं पर अपनी नजर डाली। उसने एक-एक वस्तु को हाथ मे लिया, गौर से देखा, ठीक रीति से जाचा। पर वह जैसी वस्तु चाहता था, वैसी उसे प्राप्त नही हो सकी। अतः जैसे जहा से वह उठाता था, वैसे ही वही पर वह उसे सावधानी के साथ रख देता है। इस प्रकार एक-एक करके सारी वस्तुओ

की छान-वीन करते हुए काफी समय व्यतीत हो गया। उसे इसका कुछ भी भान नही हुआ।

उसके साथी जो मकान के वाहिर उसकी प्रतीक्षा करते हुए वाहिर खडे थे, वे अन्दर आकर कहने लगे भाई, तुमने देखने मे वहुत समय लगा दिया अव जो लेना हो, वह शीघ्र ले लो और चलो। यह समय इस प्रकार व्यर्थ खोने का नही है। तव वह अन्वेषक वोला—साथियो, जव मैं किसी खास वस्तु का इच्छुक वनकर आया हू, तव मुझे समय जाने की चिन्ता नही है। परन्तु जिस वस्तु का इच्छुक हू, उसकी तो खोज करलू। उसे भली-भाति देख-भाल तो लू। तथा जिस वस्तु को देखकर आया हू उससे वढकर और कोई वस्तु दृष्टि गोचर हो जाय तो उसको ले लू। इसलिए आप लोग मुझे भलीभाति देख लेने देवें। साथियो ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार किया और वे सव शान्त भाव से वैठ गये।

वह व्यक्ति एक-एक करके सवको देखने के वाद एक कोने मे लगे कचरे के ढेर की छान-वीन करने लगा और उसे उस की मनचाही वस्तु उसके जीवन मे पहिली वार ही देखने मे आई थी। परन्तु वह उसका महत्त्व अवश्य ही जानता था। उसने आश्चर्य—चकित होते हुए कहा—यह इतनी दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण वस्तु है कि जिसे पाने के लिए सारा ससार लालायित है। परन्तु दुःख है कि ऐसी अप्राप्य वहुमूल्य वस्तु को कचरे मे डालने वाला व्यक्ति कितना मूर्ख है कि जिसने इसकी महत्ता को नही आका। उसे यह भी होश नही रहा कि ऐसी वस्तु को सभाल कर रखें।

इस प्रकार रखने वाले की आलोचना और और टीका-टिप्पणी करते हुए उस वहुमूल्य वस्तु को ले लिया। अव साथियो ने कहा—भाई, जिस वस्तु की तुम खोज मे थे, वह मिल गई है, अत अव और विलम्व मत करो और यहा से चलो। तव वह कहता है—साथियो, अव मैं चलने को तैयार हू परन्तु एक वात है कि जो वस्तु अन्यत्र कही पर भी नही मिली थी वह यहां पर अनायास ही मिल गई है, तव सभव है कि यहा और छान-वीन करने पर दूसरी इसी के अनुरूप वहुमूल्य कोई वस्तु हाथ लग जाय। ऐसा विचार कर

लोभ के वशीभूत होकर कचरे के दूसरे ढेर मे घुसा और छान-बीन करते हुए उसी के ममान एक और वस्तु उसके हाथ लग गई। उसे देखकर वह पुन आश्चर्य—चकित हुआ। सोचने लगा अरे, यह क्या बात है ? उसी के ममान यह दूसरी वस्तु इस कचरे मे कैसे मिल गई ? पुन उसे स्मरण आया कि हमारे पूर्व-पुरुषो ने ठीक ही कहा है कि ऊखडली मे भी कभी-कभी रत्न मिल जाते है। इसी लोकोक्ति के अनुसार मुझे तो एक नही, परन्तु दो रत्न मिल गये है।

भाई, यह तो एक द्रव्य दृष्टान्त है। हमे इसमे से भाव लेने की आवश्यकता है। उस विशाल मकान के समान विशाल ससार है। इसमे भी नाना प्रकार की चित्र-विचित्र वस्तुए भरी हुई है। इसमे रहने वाले जीवो की लिप्सा, तृष्णा, इच्छाए और तमन्नाए भी बलवती है कि हमे वह भी चाहिए, वह भी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी की तृष्णा एक दूसरे से बलवत्तर हो रही है। प्रत्येक प्राणी चाहता है कि ससार मे जितनी भी बढिया से बढिया और उत्तम वस्तुए है, वे एकमात्र मुझे ही प्राप्त हो, दूसरे को न मिलने पावे। भले ही दूसरे प्राणी भूखे मरे, अथवा प्यासे रहे। अथवा दीन-दरिद्री बन कर इधर-उधर भटकते रहे किसी को किसी दूसरे की जरा भी चिन्ता नही कि वह किस दशा मे है और कितना कष्टमय जीवन यापन कर रहा है।

भीतर का कचरा

अब कचरे का ढेर कौन सा है ? हमारे भीतर जो ये क्रोध, माना, माया और लोभ कषाय है, ये ही सारे कचरे के ढेर है। इसी कचरे के ढेर मे अपनी आत्मा के गुणरूपी अमूल्य रत्न दबे हुए है। इस ढेर मे से जो आत्मार्थी पुरुष अन्वेषक बनकर, पक्का ढूढिया बनकर अपने आपको उसमे आत्मसात् करके खोजता है तो वे अमूल्य रत्न उसे मिल जाते है। भाई, ढूढिया (अन्वेषक) बने बिना वे रत्न नही मिल सकते। ढूढिया बने बिना न आज तक किसी को मिले है और न आगे मिलेंगे। इसीलिए कहा है—"जिन खोजा तिन पाईया गहरे पानी पैठ।"

आज हम देखते हैं कि हमारे कितने ही भाई इस नाम से बहुत भड़कते हैं। वे सोचते हैं कि हमें ढूंढिया कैसे कह दिया ? परन्तु भाइयो, जरा गहराई में जाकर तो सोचो कि यह नाम हमारे लिए उपयुक्त है, या अनुपयुक्त। मैं तो कहूंगा कि जिसने भी हमारा यह नाम रखा है, उसने बहुत ही सोच-विचार कर खरा नाम रखा है। कहिये—ढूंढिया किसको कहते हैं ? जो पक्का खोजी हो, अन्वेषक हो और धर्म-अधर्म की पक्की जाच-पड़ताल करने वाला हो, उसे ढूंढिया कहते हैं। वास्तव में देखा जाय तो हम अभी तक सच्चे अर्थ में ढूंढिया नहीं बने हैं। यदि हम सच्चे ढूंढिया बन जायें, तो फिर हमें न तो आपकी अपेक्षा रहेगी और न आपको हमारी अपेक्षा रहेगी। सब स्वतन्त्र होकर अपनी मन-पसन्द वस्तु को ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु अभी तो हम लोग जैन भी नाम मात्र के हैं। जो सच्चे जैन थे, उन्होंने कभी किसी से कुछ अपेक्षा नहीं की। उन्होंने केवल अपनी अपेक्षा की और वे जिस वस्तु को ढूंढना चाहते थे, उसे उन्होंने ढूंढ करके प्राप्त कर लिया। फिर उन्हें दूसरे के सामने हाथ पसारने की क्या आवश्यकता रही ? उन्होंने अनुभव किया कि हम स्वयं सिद्ध-बुद्ध हैं, शाश्वत और ध्रुव हैं। हमारी सानी की दूसरी कोई वस्तु ससार में नहीं है। अतः अब हमें ससार के किसी भी पदार्थ की आवश्यकता नहीं है।

उतार चढाव का चक्र

ससार का वैभव जिसे भौतिक समृद्धि कहते हैं और जिसके पास यह भौतिक समृद्धि है उसे आप लोगों ने भारी महत्त्व दे रखा है और उसकी चकाचौंध में सारा ससार आज पागल-सा बन रहा है। तथा व्यवहार में आप लोग भी कह देते हैं—अरे साहब, दुनिया में इससे बढकर और कोई बडा आदमी नहीं है। परन्तु मेरे बन्धुओ, याद रखो, एक व्यक्ति यदि कुछ सीढियों से नीचे लुढकता है तो उसे साधारण-सी चोट लगती है। किन्तु वही व्यक्ति जब एक मंजिल से नीचे गिरता है, तब बहुत चोट लगती है और कभी-कभी तो मरने तक की भी नौबत आ जाती है। आप लोगों ने इन राजा महाराजाओं और बडे-बडे जागीरदारों का मध्याह्न भी देखा है, जब

जिनके कि एक हुंकार मात्र से लोगो के प्राण दहल जाते थे। उस समय किसी की सामर्थ्य नही थी जो उनका मुकाबिला कर सके। परन्तु आश्चर्य है कि आज उनका सम्मान आप जितना भी नही रहा है। आप अदालत मे जाकर अपना दावा पेश कर सकते हैं। परन्तु आज प्रिवीपर्स के विषय को लेकर उनको अदालत मे दावा करने का भी अधिकार नही है और आप उन पर दावा करके उन्हे अदालता मे बुला सकते हैं। क्या यह साधारण बात है। उनके जीवन मे कितना भारी उतार-चढाव हो गया है। किसी समय जो सातवी मजिल पर खडे आसमान से बातें करते थे, आज उनके खडे रहने के लिए घर का आगन भी नही रहा। अरे, जब ऐसी-ऐसी उत्थान—पतन की बातें आपके सामने प्रत्यक्ष मे आ रही हैं, फिर भी आपकी आखें नही खुल रही है और अब भी आपका ख्याल वही का वही बना हुआ है, और वही का वही रवैया है? आप लोग अभी भी कह रहे हैं कि हम इतने ऊचे हैं? परन्तु भाई, यदि अधिक ऊंचे चढोगे, तो एक दिन नीचे भी गिरोगे।

भाइयो, हम तो आप लोगो को यही नेक सलाह देंगे कि समभाव मे रहो। भगवान् ने अपने प्रवचनो मे सम-भाव को बडा महत्त्व दिया है। उन्होने ऊँचे और नीचे का भेद-भाव नही रखा है। यदि आपने कम भोजन किया, तव भी दुख है और अधिक भोजन कर लिया, तब भी दुख है। यदि सम मात्रा मे किया है, तव आनन्द मे रहेगे। इसी प्रकार यदि आपकी कमाई अपनी आवश्यकता के अनुरूप नही हुई, तब भी दुखी हैं और यदि आवश्यकता से अधिक हो गई, तव भी दुखी हैं। इसीलिए कहा गया है कि—

'दाम विना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान'।

हाँ, आवश्यकता के अनुसार कमाई होती है, तब आप आनन्द का अनुभव करते हैं और कहने लगते है कि महाराज, आजकल तो आनन्द ही आनन्द है। आप भले ही आनन्द मानें, पर मुझे तो कही भी आनन्द नही दिखाई देता है। क्योकि आपके दिल मे तो यही लगन लग रही है कि हम आगे बढें। परन्तु मैं पूछूँ कि कितना आगे वढोगे? देखो—जोधपुर के किले की बुर्ज पर जो तोप पडी हुई है, उसका जितना मूल्य था, उतनी भी पूँजी

आपके पास नहीं है। आप समझते होंगे कि यह तो लोहे की तोप है। परन्तु क्या आपको यह भी ज्ञात है कि एक-एक तोप में कितना-कितना सोना मिला हुआ है। यद्यपि आज उनका कोई उपयोग नहीं रहने से लोगों की दृष्टि में उनकी कोई कीमत नहीं रही और वे अब एक पत्थर से भी गई-गुजरी हो गई हैं। नीमाज-ठाकुर ने एक तोप केवल सत्रह रुपये में बेंची थी। परन्तु लेनेवाले का भाग्य खुल गया और उसमें तांबा, पीतल, लोहे के अतिरिक्त ग्यारह तोला सोना निकला। आज राजा लोग इन तोपों का क्या करें? क्या उनसे अपना सिर फोडें! उनके उपयोग के अन्य साधन भी तो चाहिए! अरे, जब आप लोग रात-दिन बढ़ने-बढ़ने की रट लगा रहे हैं, तब क्या कभी आपने यह भी सोचा है कि इस बढ़ने की तृष्णा के साथ-साथ हम से कितने कर्म बंध जाते हैं? और फिर जब आपके वैभव के पतन का समय आयगा, तब घटते भी कितना समय लगेगा। भाई, सूर्य जैसे प्रतापी की भी प्रतिदिन तीन दशा होती है—उदय मध्याह्न और अस्त। तब अन्यों की कब क्या दशा होगी, इसका क्या पता है।

अभी अभी भारत सरकार की ओर से एक अध्यादेश निकला है कि राजाओं के सारे अधिकार छीन लिए गये। जब कि इन्हें सरकार की ओर से इतनी बडी अनेक पदवियां थीं। परन्तु आज वे अपने नाम के आगे राजा महाराजा भी नहीं लिख सकते हैं। पर भाई, एक नहीं, पचासों अध्यादेश भले ही सरकार निकाल देवे, परन्तु दुनिया उनके नाम को नहीं भूल सकती है। अभी तो एक दो पीढ़ी तक उनका नाम चलता ही रहेगा। वह भुलाया नहीं जा सकता है। परन्तु सरकार ने तो उनको [illegible] नहीं रखी। अब आपके पास कितनी शक्ति है। [illegible] जिनके राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था और जिसे ग्रेटब्रिटेन कहते थे, उसे भी जब [illegible] गया, तब उनके सामने आप किस गिनती में हैं? [illegible] देर लगेगी? आप अपने मन में भले ही यह अभिमान करें कि मैं लखपति हूं, और मैं करोडपति हूं। परन्तु जिस दिन [illegible]

सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण कर देगी, तो एक मिनिट मे आप लोग उछलना कूदना और अभिमान करना सब भूल जायेंगे। फिर रोओगे और पछताओगे। तब न भाई-बहिन को दे सकोगे और न जमीन मे ही गाड सकोगे। बल्कि सारा धन जहाँ का तहाँ रह जायगा। इसीलिए आप लोगो से बार-बार कहा जा रहा है कि इस मलबे से बाहिर निकलो और अपने मनोवाछित रत्न ले लो। आवश्यकता पडने पर ये रत्न ही आपके काम आवेगे। आप अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते रहे। परन्तु सग्रह करने की मनोवृत्ति का त्याग कर दे। तभी आप जीवन का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

सुख का मार्ग—इच्छा परिमाण व्रत

भगवान् महावीर ने सुखद जीवन बिताने के लिए कितना सुन्दर और सुख-प्रद व्रत बतलाया है। उन्होने कहा कि हे ससार के मनुष्यो, यदि तुम लोग सुखी जीवन बिताना चाहते हो तो **'इच्छा परिमाण व्रत'** को अगीकार करो। अपने मन को काबू में कर लो और तृष्णा की इस धधकती आग से दूर हो जाओ। अरे, धन तुम्हारे पास कितना ही आता रहे और जाता रहे। परन्तु तुम अपने मन को रोक लो, अपनी इच्छा को रोक लो कि अब मुझे इससे अधिक की आवश्कता नही है। मुझे इतनी सपत्ति पर्याप्त है। मुझे अपने जीवन-निर्वाह के लिए इतना ही काफी है। यदि इससे अधिक आता है तो वह मेरे लिए नही, अपितु परार्थ है। मै दूसरो के कल्याण मे लगाऊँगा।

भाइयो, मैं आपसे पूछता हू कि आपके घर मे पाँच, पच्चीस, पचास या सौ व्यक्तियो की रसोई बनती है और रसोईघर मे कितने ही प्रकार के व्यजन और पकवान बनते। परन्तु जो थाली परोस कर आपके सामने लायी गई, तो आप उसी के मालिक हैं, सारी रसोई के मालिक नही हैं। जब आप भोजन करने के लिए बैठे। तब आप भावना करते हैं कि निर्ग्रन्थ मुनिराज आ जाये तो उन्हे वहराकर अपने बारहवे व्रत का पालन करू। आपकी भावना के अनुसार मुनिराज भी पधार गये। आपने अपनी थाली मे से—अपने हिस्से मे से उनकी इच्छा के अनुकूल कुछ हिस्सा दे दिया। भले ही आपके रसोई घर मे काफी भोजन-सामग्री उपस्थित है, परन्तु उस समय

उस सब पर अधिकार नहीं है, आपका उसमें कुछ लेना-देना नहीं। जब आपने अपने हिस्से में से कुछ दान देकर बची हुई सामग्री में ही सन्तोष कर लिया और यह सोच लिया कि जो मेरा हिस्सा था, वह मेरे पास आ गया और मैंने उसका स्व-पर के उपकार में सदुपयोग कर लिया। अब मुझे दूसरे के हिस्से की सामग्री में से कुछ भी नहीं लेना है बस, इसी का नाम 'इच्छा निरोध' है। अब पर वाला कोई कितना भी आग्रह क्यों न करे कि आप और ले लीजिए। परन्तु आप कहिये कि नहीं, जो मेरा हिस्सा था, वह मेरे पास आ चुका है। अब मुझे दूसरे का हिस्सा लेने की आवश्यकता नहीं है। यदि आपके हृदय में इतना विचार आ गया तो समझना चाहिए कि आपने 'इच्छा निरोध' किया है।

भाइयो, मैं आप लोगों से क्या कहूं ? आप लोगों की इच्छा तो दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। मैं देख रहा हूं कि आप लोगों का खून क्या सूखता जा रहा है ? और शरीर में मांस क्यों कम हो रहा है ? आप लोग अन्दर से खोखले क्यों होते जा रहे है ? कहो, इसका क्या कारण है ? बस, आपको एक ही चिन्ता है कि यह अमुक व्यक्ति मुझसे आगे क्यों बढ़ गया ? और मैं इससे पीछे क्यों रह गया ? पर भाई, तुम तो अपने घर में हो और वह अपने घर में है। यदि वह आगे पहुंच गया तो क्या उसके तिलक निकल गया ? और आपके क्या कमी रह गई। अरे, भोजन आप भी करते है और वह भी करता है, पानी आप भी पीते है और वह भी पीता है, नींद आप भी लेते है और वह भी लेता है ? फिर किस बात में पीछे हो ? आप यहां बैठे हो तब भी सुन रहे हो और वहां बैठे हो तब भी सुन रहे हो। आप सुनने को ही तो आये है, फिर यह विचार क्यों करते है कि हम पीछे रह गये ? हां, ऐसा विचार अवश्य करो कि हम सयमुख में अपने उन अनेक साथियों से पीछे हो रहे है जो कि स्वद रमों का त्याग कर सिद्ध बुद्ध बन गये है और आत्मानन्द का पान कर अनन्त सुख भोग रहे है। उनके साथ प्रतिस्पर्धा करो तो देश पार हो जायगा। परन्तु ससारी जीवों से सांसारिक

वस्तुओ के विपय मे जो प्रतिस्पर्धा करते हो वह तो ससार मे डुबाने वाली ही है। इसलिए सासारिक धन-वैभव की प्रतिस्पर्धा छोडो।

मन की बीमारी

एक मरीज एक डाक्टर के पास इलाज कराने के लिए गया। डाक्टर ने नाडी परीक्षा करके कहा कि मुझे तो तेरे शरीर मे कोई बीमारी नही दिखती है। परन्तु मरीज कहता है कि डाक्टर साहब, बीमारी तो है। आप ठीक रीति से जाच कीजिए। अब डाक्टर ने और भी गौर से उसकी जाच करना शुरु किया, पार-दर्शक यत्र से देखा—एक्स-रे से फोटो भी लिया। परन्तु फिर भी उसे कोई बीमारी नजर नही आई। मरीज फिर भी कहता है कि आप कैसे डाक्टर हैं जो मेरी बीमारी को ही नही पकड पा रहे है। डाक्टर कहता है कि जब तेरे शरीर मे कोई बीमारी ही नही है, तब मैं क्या बतलाऊ ? मरीज कहता है कि आप चाहे कुछ भी कहो, परन्तु मैं बीमार अवश्य हू। तब डाक्टर कहता है कि अच्छा भाई, तू ही बता कि तुझे क्या बीमारी है ? मरीज ने कहा– सुनिये डाक्टर साहब, मेरी बीमारी यह है कि मेरे मन को धपा दो, मेरी इच्छा की पूर्ति कर दो, मन की भूख को शान्त कर दो। मैं इस बीमारी से बहुत परेशान हू।

डाक्टर इस बात को सुनकर स्तब्ध रह गया। वह इस बीमारी और उसके इलाज से अनभिज्ञ था। वह तो केवल शरीर के रोगो का जानकार था। वह मन की बीमारी का इलाज नही कर सकता था। डाक्टर ने सोचा कि इसे अच्छे अच्छे फल-मेवा आदि खिलाये जावे तो इसका मन धाप जायगा। अत उसने बाजार से मेवा-फलादिक मगा करके उसे खाने को दिये और कहा कि तुम्हारी जितनी भी इच्छा हो मन-भर धाप करके खाओ। मरीज बोला—इनसे तो पेट धाप सकता है, मन नही धाप सकता। कृपा करके आप मेरे मन को धपाइये। तब डाक्टर बोला—क्या तुम्हे बढिया कपडे पहिनने को चाहिए, अथवा और कोई वस्तु चाहिए हो तो उसे कहो। हम तुम्हारी उस इच्छा की पूर्ति करेगे। परन्तु मरीज ने फिर कहा – डाक्टर सा०, इन चीजो की मेरे कोई कमी नही है। आप तो कोई

ऐसी दवा दीजिए जिससे कि मेरा मन तृप्त हो जाय। यह सुनकर डाक्टर चक्कर में पड़ गया कि मन को कैसे तृप्त करूँ ? तत्पश्चात् वह डाक्टर अपने से भी बड़े डाक्टर के पास सलाह लेने को गया। और मरीज के मन धपाने का इलाज पूछा ? वह भी मरीज के पास आया और उसने भी नाना प्रकार की खाने-पीने और पहिनने-ओढ़ने की वस्तुएं मंगाकर मरीज के सामने रखी। फिर भी मरीज ने कहा कि इनसे मेरे मन की तृप्ति नहीं हुई। तब एक साधारण मनुष्य वहां आया। उसने मरीज की सब बातें सुनकर डाक्टर सा० से कहा—आप इसके साथ माथा-पच्ची करके अपना अनमोल समय क्यों बर्बाद कर रहे हैं ? इसका मन कभी धापने वाला नहीं है। इसके मनमें तो यह धुन लगी है कि सारे संसार का धन मुझे मिल जाय। सो पहिले तो यह संभव नहीं है। फिर भी यदि किसी प्रकार यह बात संभव भी हो जाय, तब भी यह कह सकता है कि मैं नहीं धापा। मेरा मन तृप्त नहीं हुआ। तब आप क्या करेंगे ?

भाइयो, आशा तृष्णा की ज्वाला बड़ी विकट है। इसका पार पाना बहुत कठिन है। इसका किसी ने आज तक पार नहीं पाया। इस आशा-तृष्णा का वर्णन करते हुए कहा गया है—

निःस्वो निष्कशतं शती दशशत लक्ष सहस्राधिपो
लक्षेश क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशता वाञ्छति।
चक्रेश. पुनरिन्द्रता सुरपति ब्राह्म पद वाञ्छति,
ब्रह्मा शम्भुपद हरो हरिपद ह्याशावधि को गत ॥

जिसके पास कुछ नहीं है वह विचारता है कि यदि मुझे सौ रुपये मिल जाते तो मैं छोटा मोटा काम करके अपनी जीविका चला लेता। जब उसके पास सौ रुपये हो जाते हैं तो वह हजार रुपये पाने की सोचने लगता है। जब हजार हो जाते हैं, तो वह लखपति बनने के मंसूबे बांधने लगता है। लखपति बनने पर वह सोचता है कि बिना हुकूमत के कुछ नहीं। यदि मैं राजा बन जाता तो अपना हुक्म सब पर चलाता। यदि आप उसे राजा भी बना दें, तो फिर वह चक्रवर्ती बनने की इच्छा करता है।

चक्रवर्ती बन जाने पर वह इन्द्र पद पाने की इच्छा करने लगता है। इन्द्र वन जाने पर वह सोचता है कि मेरे से तो बडा ब्रह्मा है। यदि मैं ब्रह्मा बन जाता तो अच्छा होता। ब्रह्मा बन जाने पर भी वह सोचता है कि मेरे से तो बडे महादेव जी हैं, यदि मै शम्भु पद पा लेता, तो अच्छा होता। यदि शम्भु पद भी पा लिया,तब वह सोचता है कि मै विष्णु पद पा लेता तो क्षीर सागर मे नागशय्या पर लक्ष्मी के साथ सदा आनन्द करता रहता। इस प्रकार मनुष्य की इच्छाए कभी भी पूरी होने वाली नही है। इसीलिए नीतिकार कहते है कि आशारूपी सागर के पार को आज तक कौन पार कर सका? और भी कहा है—

लाभं लाभमपीच्छा स्यान्नहि तृप्ति कदाचन'।

मनुष्य को लाभ के ऊपर लाभ होता जाय, तो भी इसे तृप्ति कदापि नही हो सकती है।

तृप्ति कैसे हो?

सज्जनो, इस मन की तृप्ति समार की किसी भी वस्तु से सभव नही है। इस मन के ऊपर तो ज्ञान का अकुश लगने पर ही तृप्ति आना सभव है, अन्यथा नही। मन की इच्छाए तो आकाश के समान अनन्त कही गई है। उसका कही और छोर नही है। हा, यदि मनुष्य सन्तोप धारण कर ले, तो उसकी आशा तृष्णा शान्त हो सकती है। और तभी वह सुख पा सकता है। किसी अध्यात्म वेत्ता ने बहुत ठीक कहा है—

आशा पाश महा दुख दानी, सुख पावे सन्तोषी प्रानी।

देखो, अभी पिछले दिनो वर्पा जोर की हुई, नदियो मे जोरो से बाढे आई और जल-थल सव एक हो गये। रेले चलना वन्द हो गया और सैकडो मनुष्य या हजारो पशु मर गये। परन्तु दो मास के पश्चात् देखो तो वे नदिया सूखी की सूखी पडी हैं। नदियो मे कितना ही पानी आ जाय, परन्तु वे भूखी की भूखी ही हैं। आपके चूल्हे मे आज तक कितना ईधन जल चुका, पर वह आज भी भूखा का भूखा ही है। इसी प्रकार हमने भी सब कुछ भोग अनन्त बार भोगे, पर उनमे आज तक भी कुछ तृप्ति नही हुई और हम फिर भी

शोकी, बुड्‌डा भोगी, दुर्भागी, दरिद्री और धनवान् कोई भी क्या मरना चाहता है ? कोई भी प्राणी मरना नही चाहता है। इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं कि --

सव्वे जीवा वि इच्छति जीविउ ण मरिज्जिउं ॥

सभी जीव जीना चाहते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक कोई भी प्राणी मरना नही चाहता। कोई भी काल को बुलाना नही चाहता है। परन्तु फिर भी काल तो बिना बुलाये ही आ धमकता है। जब वह आकर कहे कि मेरे साथ चलो। तब आप कहे कि मुझे अभी यह काम करना है, जरा हिसाब मिला लेने दो, बच्चे-बच्चे की शादी कर लेने दो। तब काल कहता है कि अब तेरी कोई भी इच्छा पूरी नही हो सकती है। भाई, तृष्णा से कोई आज तक धापा नही, धापता नही और धापेगा नही। इच्छा से मनुष्य पागल बन जाता है।

' घोतां गई

एक बार एक महाजन प्रातःकाल नदी के किनारे शौच के लिए गया। मार्ग मे उसे किसी स्थान पर वर्तन की जरा सी कोर नजर आ गई। वर्तन जमीन मे गडा हुआ था और अभी तक कोई दूसरा मनुष्य उधर आया नही था। अत उसने झट-पट भूमि को खोदा। उसमे से एक चरी मोहरो से भरी हुई निकली। उसने अपने ओढने के कपडे पर सब मोहरो को उडेल लिया और पोटली बाध करके चला। आज उसकी खुशी का पार नही था। उसने भगवान को धन्यवाद देते हुए कहा—हे भगवान्, आज तूने मुझ पर बडी कृपा की कि मेरा सारा दारिद्रय दूर कर दिया।

अब उसने जाते हुए सोचा कि इस पोटली का वजन बहुत है। यदि इन मोहरो को पानी मे धो लिया जाय तो मिट्टी निकल जाने से भार कम हो जायगा। ऐसा विचार कर यह नदी पर पहुचा। वह पोटली को नदी के पानी मे रख कर मोहरो को धोने लगा। दो चार सेर का बोझ होता, तब तो आसानी से उन्हे धो भी लेता। मगर मोहरो का भार भारी था, अत धोते हुए कपडे का पल्ला हाथ से छूट गया और सारी मोहरे पानी मे चली

देखते ही उसके चित्त की भ्रान्ति दूर हो जायगी। और यह तुरन्त अच्छा हो जायगा। इसे यही मानसिक बीमारी है। यह कहकर वह वृद्ध पुरुष अपने घर चला गया।

उसके भाई ने उस वृद्ध के कहे अनुसार चार-पाचसौ मोहरे लाकर उसके सामने ढेर लगा दिया। उन्हे देखते ही उसका दिमाग ठिकाने आगया और मानसिक विकार दूर हो गया। वह स्वस्थ होकर बोला—अरे भाई, ये मोहरे तो बहुत थोडी हैं। मुझे तो बहुत अधिक मिली थी। भाई ने पूछा--कहा मिली थी। उसने बताया कि नदी के पास ही एक वृक्ष के नीचे। मैं उन्हे धोने के लिए ज्यो ही नदी मे घुसा कि मेरे हाथसे पोटली का पल्ला छूट गया और सारी मोहरे नदी मे गिर गई। बस उन्ही के चले जाने से दुःख मैं पागल हो गया।

अपने भाई के मुख मे इस बात को सुनते ही वह पागल हो गया और पागल पन मे बकने लगा—'भरी लावता जी, भरी लावता'। अब यह भूत उसके सिर पर सवार हो गया। भाई, न कोई भूत है और न प्रेत है। यह तो धन-तृष्णा का ही भूत प्रेत है, जो हर एक के सिर पर सवार हो करके उन्हे पागल सा बना कर घुमा रहा है। जब तक भगवान के वचनो पर दृढ विश्वास नही होता है, तब तक दुनिया को शान्ति मिलना कठिन है। एक सन्तोष को धारण कर लेने पर तृष्णा समूल नष्ट हो जायगी। जब जीवन मे सन्तोष आगया तो फिर सदा आनन्द ही आनन्द है। वह सदा निराकुल सुख का अनुभव करेगा।

हा, तो मै कह रहा था कि इस संसाररूपी विशाल मकान के भीतर हम सब काम, क्रोध, मान, मद, लोभ, मोहके कचरे मे घुस रहे हैं और हीरे पन्ने, माणिक-मोतियो को छोडकर भोग-विलास रूप ताबे के टको को इकट्ठा करने मे लगे हुए हैं। इस प्रकार हमारी बुद्धि विभ्रम को प्राप्त हो रही है। प० भूधरदास जी कहते है—

> मोह-उदय यह जीव अजानी, भोग भले कर जाने,
> ज्यो कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने।

१५ | साधना के तीन मार्ग

सज्जनो, साधना के तीन मार्ग शास्त्रकार ने बताये हैं—सरलता, सहिष्णुता और शान्तता। साधना के क्षेत्र मे प्रवेश करने वाले साधक के जीवन मे सबसे पहिले इन तीनो बातो की नितान्त आवश्यकता है। इन तीनो बातो के आये बिना साधना शान्तिपूर्वक निर्विघ्न सम्पन्न नही हो सकती।

साधना के दो रूप

साधना भी दो प्रकार की होती है—लौकिक साधना और लोकोत्तर साधना। लौकिक साधना—जैसे मजदूरी, नौकरी, व्यापार, युद्धस्थल आदि अनेक प्रकार की है। ससार को बढाने वाले जितने भी कार्य हैं, उनकी साधना लौकिक साधना है। इसके लिए भी सरलता, सहिष्णुता और शान्तता की आवश्यकता है। इनके बिना कोई भी लौकिक कार्य ठीक प्रकार से सम्पन्न नही होता है और उसमे मफलता नही मिल पाती।

भाइयो, जब लौकिक साधना भी इन तीन बातो के बिना असभव है, तब लोकोत्तर साधना मे तो इन तीनो का होना परमावश्यक है। हमे सयम की साधना करना है। इसे करने के पहिले उपर्युक्त तीनो बातो का अभ्यास

कुटुम्बी और मित्र मानकर व्यवहार किया। परन्तु अब आप लोगो का सयोग मेरी सयम साधना मे बाधक दृष्टि-गोचर हो रहा प्रतीत होता है, इसलिए अब आप लोग मुझे क्षमा करे। अब मैं आप लोगो के साथ पूर्ववत् सम्बन्ध नही रख सकूंगा। अत आज से मैं आप लोगो से अब दूर होता हू। अब न तो मुझे गुड खाने की आवश्यकता है और न अमल खाने की ही। यदि गुड खाऊगा तो उसके मिठास में अनुरक्त होना पडेगा और यदि अमल खाऊगा तो उसके कडवेपन से दिल मे सजीदगी आयेगी। इसलिए अब न तो मुझे मीठा बनना है और न कडवा या खारा ही बनना है। परन्तु मुझे तो अपने निज रूप मे ही रहना है। मुझे तो सरल परिणामी बन कर आत्म-कल्याण करना है। अत आप लोग मुझे सहर्ष छुट्टी देवे और मेरे साथ आज तक जो सम्बन्ध रहे है, उन्हे भूल जावे।

यदि आपने किसी के सामने अपने हृदय की बात सरल भाव से रख दी और कह दिया कि भाई, आपको यह भली लगे, या बुरी ? परन्तु मुझे तो यह ठीक जची और मैंने उसे ही कहा है। तब सुनने वाला भी समझ जायगा कि इस व्यक्ति के हृदय मे कोई कपट नही है। इसके हृदय मे जो भाव था, वह इसने कह दिया है। वह उसके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना नही रखता और उसे निश्छल व्यक्ति ही मानता है।

सरलता-सच्चाई का प्रभाव

अमरावती मे एक सेठ के स्वर्गवास हो जाने पर उसके दो लडको मे सम्पत्ति के बटवारे को लेकर झगडा प्रारम्भ हो गया। मामला कोर्ट मे पहुचा। दोनो ही भाई पिता के समय से चले आये प्रधान मुनीम को मानते थे। अत उन्होने गवाही के रूप मे अपने प्रधान मुनीम को प्रस्तुत किया। जिस दिन उसकी गवाही होने वाली थी उसके एक दिन पूर्व बडे भाई ने लिखकर मुनीम जी के पास एक पत्र भेजा कि मुनीम सा० यदि आप मेरे अनुकूल गवाही देगे तो मैं आपको पाच हजार रुपया इनाम दूगा। छोटे भाई ने भी लिखकर भेजा कि मुनीम सा०, आप मेरे अनुकूल गवाही देंगे तो मैं दस हजार रुपया दूगा। दूसरे दिन मुनीम सा० जब कोर्ट गये तो उन्होने

निश्छल भाव से सत्य बात को कहने से नही डरता है। इसी प्रकार की सरलता संयम के साधक मे होनी चाहिए।

सरलता को अलकार की आवश्यकता नहीं

पहिले के महावैरागी कवियो की कविताए-जिन्हे आप-लोग प्रति दिन सुनते है और पढते है-उन महापुरुष जयमल जी, रायचद जी, आसकरण जी, टेकचद जी म० आदि की कविताओ को यदि साहित्य की कसौटी पर कसा जाय तो उन्हे विशेष महत्व मिलना कठिन होगा। क्यो कि न मात्राए ठीक है और न अलकार विराम आदि बराबर है। परन्तु जब हम उन कविताओ के भावो की ओर ध्यान देते है, तब उनके अपूर्व भक्ति, वैराग्य एव शान्त रस मे लीन हो जाते है, तन्मय हो जाते हैं और अन्तस्तल से निकल पडता है—वाह रे वाह! कैसी अनुपम भाव भरी कविता है। क्या वैराग्य भरा हुआ है? कैसा शान्त रस प्रवाहित हो रहा है, जो अशान्त हृदयो मे शान्ति का संचार कर देता है और अनेक सन्तप्त आत्माओ को शान्ति प्रदान करता है। आज के या पुराने अन्य कवियो की कविताए-जो कि साहित्य शास्त्र के नियमो के अनुसार बनाई गई है। उनको पढने पर उनमे दम्भ और अहभाव की झलक दिखाई देती है। उन्हे पढते हुए ऐसा अनुभव होता है कि मानो वे अपने पूर्ववर्ती को गिरा कर के स्वय सबसे ऊचे स्थान पर बैठना चाहते हो। उनकी कविताओ मे सरलता के दर्शन नही होते। प्रत्युत दम्भ और छलकी गन्ध उनमे आती प्रतीत होती है।

भाई, जिन महापुरुषो ने सरलता के साथ अपनी कविता मे जो सुन्दर भाव निबद्ध किये है। वे आज भी हमारे जीवन के लिए गुणकारी है। जो बडे बडे महापुरुषो की कविताए है, उनकी तुलना मे आज के कवियो की कविताए नही आ सकती है। उनका मुकाबिला आज के कवि नही कर सकते है। जैसे—रविस्वरूपदास जी ने 'पाद्दुयशोचन्द्रिका' का निर्माण किया और जिसे [illegible] नरेश ने प्रकाशित करवाया है—उसे उन्होने [illegible] के बाद जोधपुर-नरेश महाराज जसवन्त सिंह जी के पास अवलोकनार्थ भेजा। उन्होने उसे आद्योपान्त पढा। उन्होने अनुभव किया कि इसमे अहभाव

'पाडुयशो चन्द्रिका' को आपने देखा है ? वह कैसी है ? मुरादान जी ने उत्तर दिया—महाराज, बहुत सुन्दर है कवि की रचना बहुत अच्छी है। महाराज ने कहा—कवि जी, मैं आपसे क्या पूछ रहा हू और आप क्या उत्तर दे रहे है ? मैं यह पूछ रहा हू कि उसमे अलकार क्या है और गुण-दोप क्या हैं ? तब मुरादान जी ने कहा—महाराज, मुझे तो उसमे गुण ही गुण दृष्टिगोचर हो रहे है। तब जसवन्त सिंह जी कुछ आवेश मे आकर बोले—आपने आखे बन्द करके ही उसे पढा है ? फिर स्वय कहने लगे—देखो मुरादान जी, मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि कवि मे यह खास गुण होना चाहिए कि वह जो भी कविता बनाये, उसमे पक्षपात की गन्ध नही होना चाहिए। जो बात जैसी हो, उसका ही यथार्थ चित्रण होना चाहिए। कारीगर के हाथ मे जैसा भी पत्थर आ जाय, उसे ही ठीक करके दीवाल मे चुन देना चाहिये। और रसोई बनाने वाली के सामने जो भी आटा आ जाय, उसी की रोटी बना देनी चाहिये। परन्तु किसी को भला—बुरा कहने की आवश्यकता नही है। मैं आपसे पूछता हू कि इन कवियो मे पक्षपात क्यो दिखाई देता है ? देखो—भारतवर्ष मे कर्ण और अर्जुन दोनो समान शक्तिशाली धनुर्धर योद्धा हुए है। परन्तु कवियो ने अर्जुन को ऊचा और कर्ण को नीचा बताकर अपनी कविताए रची हैं। कविता मे यह बडा भारी दोप है। बताइये मुरादानजी, यह दोप तो है न ? तब उन्होने कहा—हा महाराज, यह दोप तो है ही। महाराज ने कहा—कविराज, आप 'कर्ण पर्व' बनावे और उसमे कर्ण और अर्जुन को समान रूप से चित्रित किया जावे। तब मुरादान जी ने कहा—महाराज, मैं तो अभी 'जसो यशभूपण' का निर्माण करने मे सलग्न हू, अत. अभी 'कर्ण पर्व' बनाने के लिए समय कहा है। तब महाराज ने कहा—तो अपनी सानी का दूसरा कवि बताओ। उन्होने कहा—महाराज, मेरी सानी का क्या, किन्तु मुझ मे भी बढकर सूरजमल जी के शिष्य गणेशपुरी जी मौजूद है।

महाराज जसवन्त सिंह जी ने उसी समय गणेशपुरी जी को बुलवाया। उनके आने पर उनसे कहा—बाबा जी, एक 'कर्ण पर्व' बनाना है। क्या आप बना सकते हैं ? उन्होने कहा—महाराज की कृपा हो तो मैं बना सकता हू।

सी प्रतीत होती है, पर अन्दर मे स्तुति गर्भित है। यथा समय बाबा गणेश पुरी जी ने 'कर्णपर्व' रचकर तैयार कर दिया। जब उसके छपवाने का समय आया, तब बाबा जी काल कर गये। तथा उनसे पहिले महाराज जसवन्तसिह जी भी कालधर्म को प्राप्त हो गये। परन्तु उन्होने ऐसा अनुपम ग्रन्थ बनाया जिसका बडे-बडे विद्वान् भी अर्थ नही लगा सकते हैं। यह ग्रन्थ किसलिए बनवाया गया ? सरूपदास जी की कविता को नीचा दिखाने के लिए। परन्तु वह तथैव रखा रह गया। इने-गिने लोगो के पास ही वह पहुँच सका। जबकि सरूपदास जी का ग्रन्थ दुनिया के हृदय का हार बन गया। वे सरल स्वभावी निश्छल कवि थे। उनमे ईर्ष्याभाव नही था। किन्तु महाराज जसवन्त सिह जी के मन मे ईर्ष्या भाव आ गया था। इसलिए उनकी बनवायी हुई रचना लोक-प्रिय नही बन सकी।

हा, तो मैं कह रहा था कि साधना के क्षेत्र मे मानव के भीतर सबसे पहिले सरलता का गुण आना चाहिए। डाक्टर, वैद्य और हकीम के भीतर भी सरलता होनी चाहिए। वह रोगी को देखकर कहे कि भाई, तेरे शरीर मे यह रोग है। उसके लिए मेरे पास जो दवा है, वह दे रहा हू। इसे विश्वास के साथ लेना। भगवान् तेरा भला करेंगे। रोगी से यह डीग नही हाकना चाहिए कि मैं तुझे शर्त्तिया अच्छा कर दू गा, या यह दवा तुझे सर्वथा निरोग बना देगी। भाई, किसी का जीवन-मरण अपने हाथ मे नही है। और अच्छा बुरा करना भी मनुष्य के हाथ मे नही है। क्योकि कहा है—

हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश—अपयश विधि हाथ।

भाई, नफा—नुकसान, जीना-मरना और यश—अपयश पाना ये सब बाते दैव के अधीन है। ऐसी दशा मे डाक्टर-वैद्य को यही कहना चाहिए कि हम तेरे अच्छा होने के लिए भर-पूर प्रयत्न करते है आगे 'ईश्वरेच्छा बलीयसी'। सरल परिणामी की औषधि भी जादू सा असर कर जाती है।

सोजत मे नगर सेठ राजमल जी रहते थे। यदि कोई आकर उनसे कहता कि सेठ साहब, हमारी आखें दुखती हैं। तो वे चूर्ण की एक पुडिया दे देते थे। कोई पेट-दर्द वाला आता, तो उसे भी वही चूर्ण की पुडिया देते और

परन्तु उसे क्या मालूम था कि आयुष्यकर्म का बधा हुआ बन्धन कभी भी नही छूट सकता है। यह बात तो भगवान ने श्रेणिक को ढाढस बंधाने लिए ही कही थी। उस कालासुर कसाई को वेले मे लटका देने पर भी दैनिक प्रक्रिया चालू रही। वह उलटे लटकते हुए ही अपने शरीर का मैल उतारता और उसका भैसा बनाकर कहता—एक मारा, दूसरा मारा, तीसरा मारा। इस प्रकार वह पूरे पाच सौ पाडे मैल के बनाकर मारता रहा। श्रेणिक ने समझा कि कालू कसाई ने भैसे मारना बन्द कर दिया, अत मैं भी अब नरक मे जाने से मुक्त हो गया। अत वे प्रसन्न होते हुए भगवान के समवसरण मे पहुचे। वन्दना नमस्कार कर बोले—भगवन्, कालू कसाई ने भैसे नही मारे हैं। अत मैं नरक के बन्धन से छूट गया? भगवान् ने कहा श्रेणिक, यह सभव नही है। कालू कसाई गिन-गिन कर पूरे पाचसौ भैसे प्रतिदिन अब भी मार रहा है। वह अपने शरीर के मैल को उतार कर उसके ही भैसे बना के गिन-गिन कर पूरे पांचसौ मारता है। उसके कर्म-बन्ध मे कोई कमी नही आई है। भाई, इस कथानक के कहने का भाव यही है कि मनुष्य के हृदय मे से जब तक वञ्चना—कुटिलता-दूर न होवे, तब तक सरलता आं नही सकती। और सरलता आये विना कोई भी मनुष्य अपनी दुष्प्रवृत्तियो को छोड नही सकता। त्याग और सयम-पालने के लिए सरलता आवश्यक है, विषमता और वञ्चना नही चाहिए।

त्याग मे प्रदर्शन न हो!

भाइयो, आज लोग त्याग भी करते है तो वह भी दिखावटी ही करते है, जब कि त्याग तो गुप्त ही रहना चाहिए। उसे, दिखावट, बनावट या सजावट की आवश्यकता नही है। त्याग को प्रदर्शन का आकर्षण पसन्द नही है। त्याग तो जितना गुप्त रहेगा, उसका महत्त्व उतना ही अधिक होगा और फल भी उतना ही अधिक मिलेगा। परन्तु आज लोग त्याग मे भी प्रदर्शन करते है। वे विचारते है कि यदि प्रदर्शन नही होगा तो लोगो को मेरे त्याग का पता कैसे चलेगा? पर भाई, या तो दुनिया के मुख से वाह-वाही लूट लो प्रशसा के चार शब्द सुन लो, अथवा कर्म-निर्जरा कर लो। दो म से एक

ही भीतर खोखला करती जा रही है। यह भी दस्तो की और सग्रहणी की बीमारी के समान है जो कि खाये हुए अन्न को पचने नही देती है। सारी भीतरी शक्ति क्षीण हो चुकी है। ऐसी परिस्थिति मे यदि रोगी को बढिया दूध या अन्य पौष्टिक वस्तु खिलायी जाय तो वह भी उसे शक्ति देने के स्थान पर मारने का ही काम करेगी। जब उसे मूग की दाल और सूखा फुलका भी नही पचता है, तब वे गरिष्ठ पदार्थ तो हजम हो ही कैसे सकते हैं ?

इसी प्रकार जिनके हृदय मे वक्रता और कलुषता भरी हुई है उनसे भी साधना नही हो सकती है। वह तो अभी साधना के योग्य ही नही बन पाया है ! जो साधना के योग्य बन जाता है, उसमे सरलता सहज रूप से आ ही जाती है।

भाइयो, एक दृष्टान्त मैं आप लोगो के सामने प्रस्तुत कर रहा हू। इससे आप को शिक्षा मिलेगी कि सरल जीवन कैसा होना चाहिए।

सरल जीवन का आदर्श

एक नगर का एक व्यक्ति अपने बहिनोई को लिवाने के लिए उसके गाव गया। उसने जाकर कहा बहिनोई साहब, आप बाई जी को लेने के लिए पधारो। वह बहिनोई जी को अपने गाव मे लिवा लाया। और अच्छे स्थान पर ठहरा दिया और उसका खूब आदर-सत्कार किया। बहिनोई धर्म प्रेमी था। अत उसने अपने साले से पूछा कि क्या यहा पर कोई सत महात्मा विराजते हैं। मुझे उनके दर्शन करना हैं। साले ने कहा—बहिनोई जी, सन्त नगर मे तो नही हैं। किन्तु नगर के बाहिर बगीचे मे ठहरे हुए हैं। बहिनोई के आग्रह पर दोनो महात्मा जी के दर्शनार्थ पहुचे। महात्मा जी अपने आसन पर विराजमान थे। उन्होने तीन वार उठ-बैठकर वन्दन किया और चरणो की रज मस्तक पर लगाई। तत्पश्चात् बहिनोई ने कहा—अहा, आज की घडी धन्य है जो मुझे ऐसे त्यागी, वैरागी, तपोधनी, ज्ञानी और ध्यानी महात्मा के दर्शन हुये हैं। आज मेरा जीवन पवित्र हो गया। इस प्रकार उसने महात्मा जी की वडी देर तक स्तुति-प्रशसा की। यह सुनकर साला

मुझे कौन उठा कर ले चलेगा ? तब शिष्य ने कहा—भगवन्, यह सेवा मैं करूं गा। मैं आपको उठाकर के ले चलूं गा। गुरु की स्वीकृति पाकर वह उन्हे अपने कन्धे पर बिठाकर रवाना हो गया। अब वह शिष्य एक हाथ से तो भूमिका प्रमार्जन करते हुए और दूसरे हाथ से गुरु जी को थामे हुए मार्ग मे चलने लगा। एक तो रात्रि का समय, दूसरे ऊबड-खाबड मार्ग है अत' कही शिष्य के पैर नीचे पडने लगे। तब गुरु ने क्रोधित होकर कहा—अरे पापो, यह क्या कर रहा है ? देखता नही कि मै बूढा हू। ऐसे चलने से तो मुझे बहुत कष्ट होता है ? परन्तु वह शिष्य बडी सावधानी के साथ गुरु को लिये हुए चलता रहा। इस प्रकार चलते हुए शिष्य के भाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगे। उसके परिणामो की धारा ऊ‍ची से ऊ‍ची श्रेणी पर चढने लगी। परिणाम यह हुआ कि मार्ग मे चलते हुए ही उसने चारो घनघाती कर्मो का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब तो शिष्य को लोकवर्ती सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष दिखने लगे और अन्धकार के स्थान पर सर्व ओर प्रकाश ही प्रकाश हो गया। वह सबका देखने जानने वाला सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन गया। परन्तु फिर भी उसने गुरु को अपने कन्धे पर से नीचे नही उतारा। अब सब कुछ स्पष्ट दिखाई देने से बिलकुल ठीक रीति से चलने लगा। गुरु को कोई भी कष्ट प्रतीत नही हुआ। तब गुरु ने कहा—अरे शिष्य, अब तो तू बिलकुल सीधा चल रहा है। शिष्य ने उत्तर दिया। गुरुदेव, आपका उपकार है। तब गुरु ने कहा—उपकार-उपकार कुछ नही है। यह तो 'टाकर सार' का परिणाम है। जो तू सीधा चलने लगा है। तू जो अब ठीक ढग से चल रहा है तो क्या तुझे मार्ग दिखाई दे रहा है ? शिष्य ने कहा—हा गुरुदेव, मुझे मार्ग दिख रहा है। पुन गुरु ने कहा—अरे, मुझे तो नहीं दिख रहा है, तब क्या तुझे कोई ज्ञान पैदा हो गया है ? शिष्य ने कहा—हा, आप की कृपा से मुझे ज्ञान पैदा हो गया है। गुरु ने पुन पूछा—क्या तुझे अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान हो गया ? तब शिष्य ने कहा—हा गुरुदेव, आपकी कृपा से सब कुछ दिखाई दे रहा है। इतना सुनते ही गुरु ने कहा—मुझे जल्दी नीचे उतार। मेरे द्वारा केवल ज्ञानी की आशातना हो गई। परन्तु केवलज्ञान हो जाने पर भी शिष्य

को सहन करने के लिए साधु को धैर्यवान् और सहनशील होना चाहिए। परन्तु सहनशील बनना बहुत कठिन है। हम देखते है कि आपको घटे-दो घटे की देर यदि भोजन मिलने मे होती है, तो आप उसमे ही आकुल-व्याकुल हो जाते है। हमारे ऊपर ही ले लीजिए कि कोई साधु गाव के भीतर गये। समय पर आहार-पानी नही मिला, ठहरने को स्थान नही मिला, तो उत्तेजना आ जाती है। उस समय यदि ग्रामवासी आकर कहते हैं कि बाबजी, दो चार दिन ठहरने की कृपा कीजिए। तब साधु तुनक कर कह देते हैं—अरे, यहा तो आहार-पानी का ढग भी नही है और रहने का स्थान भी ठीक नही हैं। फिर यहा रह कर क्या करे? भाई, ऐसा क्यो कहना पडा? उनके मुख से ऐसे वचन क्यो निकले? क्योकि उनमे सहनशीलता नही है। परन्तु ज्ञानियो ने तो कहा है कि—

'मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्या परीषहा.'

अर्थात् संयम-मार्ग से पतन न हो और कर्मों की निर्जरा हो, इसके लिए सर्व प्रकार के परीषहो को समभाव से सहन करना चाहिए।

शांति

साधना के लिए तीसरा गुण शान्तता का आवश्यक है। जिसके भीतर शान्ति नही है, वह साधना मे सफल नही हो सकता। शान्त परिणामी व्यक्ति ही साधना मे सफल होता है। चित्त मे क्षोभ के कितने ही कारण क्यो न मिलें, परन्तु जिनका हृदय प्रशान्त सागर सा शान्त बना रहता है, दूसरो के द्वारा कितने भी उपसर्ग आने पर—उत्पात किये जाने पर जो शान्ति से च्युत नहीं होते हैं, वे ही महापुरुष आत्मार्थ को शीघ्र साधन पर परम पद को पाते हैं।

जो साधक उक्त तीनो गुणो के बिना साधना करते हैं, मजबूरी मे कष्ट सहन करते हैं, वह बालतप है—अकामनिर्जरा है। उसकी साधना निरर्थक हो जाती है। वह इस भव के सुखो से भी गया और परभव के सुखो से भी वचित रहा। ऐसा व्यक्ति तो उल्टे कर्म-बन्ध ही अधिक करता है।

१६ | आत्मजागृति की ओर

भाइयो, आज ससार मे सर्वत्र आप देख रहे है कि वह उसे ठग रहा है और वह उसे ठग रहा है। जहा देखो वहा पर ही इस ठगाई का साम्राज्य चल रहा है। परन्तु मैं कहता हू कि दूसरो से अधिक मनुष्य स्वयं को ही ठग रहा है। अब बतलाइये कि इन दोनो मे अधिक बे-समझ कौन है ? जो दूसरो को ठग रहा है वह, अथवा जो अपने आपको ठग रहा है, वह ? आप कहेगे कि जो अपने आपको ठग रहा है, वह अधिक ना समझ है। उसने उसको ठगा और बदले मे उसने उसको ठग लिया। तब तो ये दोनो आपस मे बराबर हो गये। जैसा कि कहा है—

> **भलो करि्यो ताको भलो, भलो कह्यो कहै कौन ।**
> **बुरो करै ताको बुरो बुरो ना विचार्यो है।**
> **भलो करै ताको बुरो नीति ताको नीच कहै**
> **बुरो करै ताको भलो ऊच सो विचार्यो है।**

जिसने हमारा बुरा किया तो बदले मे हमने उसका बुरा कर दिया तो खाता बराबर हो गया। जिसने हमारा भला किया तो बदले मे हमने उसका भला कर दिया। इस प्रकार भी दोनो का खाता बराबर हो गया। जिसने हमारा भला किया और बदले मे हमने उसका बुरा किया, तो यह हमारी

का है। परन्तु लोग मायाचार करके उसे कुटिल बना रहे हैं। आत्मा का स्वभाव निर्ममत्व का है। मगर लोग ससार की वस्तुओ मे ममता कर-करके मोह—युक्त हो रहे हैं। सभी लोग ये सब विपरीत कार्य कर रहे हैं। इनसे सिद्ध है कि हम अपना बुरा स्वय कर रहे है। इसलिए हम दूसरो को उपदेश देने के स्थान पर यदि अपनी ही आत्मा को सम्बोधित करें और उसे कुमार्ग पर चलने से रोके तो हम अपनी आत्मा के सच्चे मित्र बन सकते हैं। जब हम अपने आपके मित्र और हितैषी बनेंगे—तभी हमारा कल्याण होगा और तभी यह मानव जीवन सार्थक होगा। यदि इतना सब कुछ जानकर भी हम अपनी यही पुरानी छल-छद्ममयी रफ्तार जारी रखेंगे तो अपना ही भारी नुकसान कर लेंगे। इसलिए भाइयो, अपनी प्रवृत्ति को ही सुधारने का प्रयत्न करो।

भाइयो, यदि हम दूसरो पर क्रोध करते हैं, तो अपना ही नुकसान करते हैं। दूसरे का अपमान करने पर, दूसरो को ठगने पर और दूसरे से ईर्ष्या करने पर हम अपना ही नुकसान करते हैं। इसका कारण यह है कि जब हम जैसा भाव करते हैं, तभी हमारे उसी जाति के तीव्र कर्मों का बन्ध हो जाता है जो आगे असख्य वर्षों तक हमे दुःख देगा। परन्तु हम अज्ञान से ऐसे ग्रसित हो रहे है कि हमे अपने नुकसान का कुछ भी भान नही है। केवल दूसरे को नुकसान पहुचाने का प्रयत्न करते रहते है। पर दूसरे का नुकसान तो उसके कर्मोदय पर अवलम्बित है। यदि उसका पुण्योदय है तो हम हजार प्रयत्न भी करें, तब भी उसे कुछ नुकसान नही पहुचा पावेंगे। किन्तु जितने वार हमने दूसरे का बुरा करने का विचार किया, उतने वार अपने को ही भयानक दु ख देने वाले दुर्मोच कर्मों का बन्ध अवश्य ही कर लिया। प्राय लोग इस मारवाडी कहावत का अनुकरण करते हैं—'पगा वलती नही दीखे, डू गर वलती दीखे', जबकि होना यह चाहिए कि अपने पैरो को वचा करके रखो। जहा आग पडी हो, वहा पैर मत रखो। पर अज्ञानी वने सभी जीव दूसरो की बुराई की सोचते हुए अपना ही बुरा कर रहे है।

घाती कर्म आच्छादित हो रहे है। इसीलिए वे गुण प्रकाश मे नही आ रहे है। वे गुण आत्मा से गये नही है, आत्मा मे ही विद्यमान है। परन्तु जीव के एक-एक प्रदेश के ऊपर अनन्तानन्त कर्म परमाणु आच्छादित हो रहे हैं, इसलिए वे गुण ढके हुए है।

इसी बात को एकीभाव स्तोत्रकार कहते हैं—

आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्दहेतुः।
कर्म क्षोणी पटलपिहितो योऽनवाप्य परेषाम्॥

इसके भाषाकार कहते हैं—

कर्मपटल-भूमांहि दबी आतम-निधि भारी।
देखत अति सुख होय,विमुख जन नाहि उधारी॥

इसलिए हमे उस कर्मरूप परदे को—ढक्कन को हटाने की आवश्यकता है। परन्तु मैं आप लोगो से पूछू कि इस कर्म-पटल को उघाडेगा कौन? क्या उसे पडौसी, मित्र, सगे-सम्बन्धी या सन्त-महात्मा, या भगवान उघाडेगा? नही, भगवान भी नही उघाडेगा। इस ढक्कन को—कर्मों के इस आवरण को उघाडने का कार्य तो हमे ही स्वय करना होगा। हा, भगवान ने हमारे ऊपर महती कृपा करके यह बता दिया कि हे भव्य पुरुषो, घबडाओ नही। तुम लोग भी मेरे ही समान अनन्त गुणो के भण्डार हो। वस, भेद केवल इतना-सा ही है कि मेरे गुण तो प्रकट हो गये हैं, मैंने उनके ऊपर का ढक्कन हटा दिया है और तुम लोगो के ऊपर अभी वह कर्मों का ढक्कन पडा हुआ है। अत तुम लोग भी पुरुषार्थ करो और कर्म पटल को दूर हटा दो। उसके दूर होते ही तुम भी मेरे समान वन जाओगे। फिर तुममे और मुझमे किसी भी प्रकार का अन्तर नही रहेगा। भाइयो, ऐसा निश्चय कर लो कि हमारी और सिद्ध भगवन्तो की जाति एक ही है और हम उन्ही की जोड मे वैठने वाले है—सिद्ध ही है।

अनन्त परिभ्रमण

परन्तु हम अनन्त-अनन्त काल से अपना ही नुकसान करते आ रहे है। आज तक हमने अपनी आत्मा के लाभ का कोई भी कार्य नही किया है।

घाती कर्म आच्छादित हो रहे है। इसीलिए वे गुण प्रकाश मे नही आ रहे है। वे गुण आत्मा से गये नही है, आत्मा मे ही विद्यमान है। परन्तु जीव के एक-एक प्रदेश के ऊपर अनन्तानन्त कर्म परमाणु आच्छादित हो रहे है, इसलिए वे गुण ढके हुए है।

इसी बात को एकीभाव स्तोत्रकार कहते है—

आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्दहेतुः।
कर्म क्षोणी पटलपिहितो योऽनवाप्य परेषाम्॥

इसके भाषाकार कहते हैं—

कर्मपटल-भूमांहि दबी आतम-निधि भारी।
देखत अति सुख होय,विमुख जन नाहि उघारी॥

इसलिए हमे उस कर्मरूप परदे को—ढक्कन को हटाने की आवश्यकता है। परन्तु मैं आप लोगो से पूछू कि इस कर्म-पटल को उघाडेगा कौन? क्या उसे पडौसी, मित्र, सगे-सम्बन्धी या सन्त-महात्मा, या भगवान उघाडेगा? नही, भगवान भी नही उघाडेगा। इस ढक्कन को—कर्मों के इस आवरण को उघाडने का कार्य तो हमे ही स्वयं करना होगा। हा, भगवान ने हमारे ऊपर महती कृपा करके यह बता दिया कि हे भव्य पुरुषो, घबडाओ नही। तुम लोग भी मेरे ही समान अनन्त गुणो के भण्डार हो। बस, भेद केवल इतना-सा ही है कि मेरे गुण तो प्रकट हो गये है, मैंने उनके ऊपर का ढक्कन हटा दिया है और तुम लोगो के ऊपर अभी वह कर्मों का ढक्कन पडा हुआ है। अत. तुम लोग भी पुरुषार्थ करो और कर्म पटल को दूर हटा दो। उसके दूर होते ही तुम भी मेरे समान वन जाओगे। फिर तुममे और मुझमे किसी भी प्रकार का अन्तर नही रहेगा। भाइयो, ऐसा निश्चय कर लो कि हमारी और सिद्ध भगवन्तो की जाति एक ही है और हम उन्ही की जोड मे वैठने वाले हैं—सिद्ध ही है।

अनन्त परिभ्रमण

परन्तु हम अनन्त-अनन्त काल से अपना ही नुकसान करते आ रहे है। आज तक हमने अपनी आत्मा के लाभ का कोई भी कार्य नही किया है।

यहा पर कोई यह पूछे कि क्या हम पहिले साधु नही बने ? क्या श्रावक-धर्म नही पालन किया ? जिससे कि हमारा यह नुकसान होता चला आ रहा है ? परन्तु हे भोले भाई, ऐसी बात भी नही है। अरे, हमने अनन्त वार साधु वेष भी धारणा किया है और श्रावक व्रत भी अनन्त वार धारण किये हैं। हमने अनन्तवार इतने ओघे और पात्र भी ले लिये हैं कि उनका ढेर सहस्रो मेरु पर्वतो से भी अधिक बडा होगा। इसमे कोई भी अतिशयोक्ति जैसी बात नही है। परन्तु फिर भी हमारा कर्मों का यह ढक्कन नही उघडा है। और इसी कारण आज तक हमे आत्मस्वरूप की प्राप्ति नही हुई है। इसके विपरीत हमने तो अनन्तकाल से अनन्तानन्त कर्मों का बन्धन ही किया है और इसीलिए अनादिकाल से हम इधर-से उधर भटकते आ रहे हैं, चौरासीलाख योनियो के अनन्त चक्कर काट चुके हैं। इस जीव ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप पच परावर्तन अनन्तवार किये हैं। शास्त्र मे द्रव्यपुद्गल परिवर्तन का स्वरूप कहते हुए बतलाया है कि—

सव्वे वि पोग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण।
असइ अणतखुत्तो पुग्गलपरिवट्टससारे ॥

इस जीव ने अनन्तवार सभी पुद्गल परमाणुओ को क्रम-क्रम से ग्रहण करके भोग-भोग कर छोड दिया है और इस प्रकार पुद्गल परिवर्तन रूप ससार मे अनादिकाल से घूमता आ रहा है। क्षेत्र परिवर्तन का स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

सव्वम्हि लोयखेरो कमसो त णत्थि ज ण उप्पण्णं।
ओगाहणाए बहुसो परिभमिदो खेत्त ससारे ॥

—इस असख्यात प्रदेशी लोकरूप क्षेत्र मे ऐसा एक भी प्रदेश शेप नही है। जहाँ पर इस जीव ने अवगाहना के साथ उत्पन्न होकर सर्वत्र क्षेत्र रूप ससार मे बहुत वार परिभ्रमण नही किया हो ?

काल परिवर्तन का स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

उस्सपिणि-अवसप्पिणि समयावलियासु णिरवसेसासु।
जादो मुवो य बहुसो भमणेण दु काल ससारे ॥

काल ससार मे परिभ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सर्पिणी और अव-सर्पिणी के सभी समयावली मे अनेक बार जन्मा और मरा है।

भव परिवर्तन का स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

णिरयादि जहण्णादिसु जाव दु उवरिल्लया दु गेवज्जा।
मिच्छत्तससिदेण दु बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदा॥

इस जीव ने मिथ्यात्व के वश होकर नरकादि गतियो की जघन्य स्थिति से लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त और देवगति मे नवे ग्रैवेयक तक की सभी स्थितियो मे उत्पन्न होकर अनेक बार परिभ्रमण किया है।

भाव परिवर्तन का स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

सव्वा पयडिट्ठिदीओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि।
मिच्छत्त ससिदेण य भमिदा पुण भाव ससारे॥

इस जीव ने मिथ्यात्व के ससर्ग से कर्मों के सब प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध के स्थानो को प्राप्त कर भावरूप ससार मे अनन्तवार परिभ्रमण किया है।

भाइयो, इस प्रकार अनादि काल से सर्वत्र परिभ्रमण करने मे दोष किसका है ? इसमे दोप किसी और का नही है। सब दोष अपने ही राग-द्वेप से उपार्जित कर्मों का है। कहा है—

न दोषो दीयते आत्मानं न दोषो दीयते पर ।
न दोषो दीयते स्वामिन् कर्म दोषोहि दीयते ॥

इस ससार परिभ्रमण का दोप किसी दूसरे के ऊपर नही है, किन्तु यह सारा दोप हमारे कर्मों का ही है।

यहा पर कोई प्रश्न करे कि इसमे आत्मा का दोप क्यो नही ? इसका उत्तर यह है कि जैन मत मे तत्व का निर्णय दो दृष्टियो से होता है—एक निश्चयनय की दृष्टि से और दूसरे व्यवहारनय की दृष्टि से। हम व्यवहार नय की दृष्टि से अवश्य कहते है कि आत्मा कर्म-बन्ध करता है। किन्तु जब हम निश्चयनय की दृष्टि से देखते है, तब यही कहना पडेगा कि आत्मा कर्म-बन्ध नही करता है। यदि आत्मा को कर्म-बन्ध का कर्त्ता माना जाय,

काल ससार मे परिभ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सर्पिणी और अव-सर्पिणी के सभी समयावली मे अनेक बार जन्मा और मरा है ।

भव परिवर्तन का स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

णिरयादि जहण्णादिसु जाव दु उवरिल्लया दु गेवज्जा ।
मिच्छत्तससिदेण दु बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदा ॥

इस जीव ने मिथ्यात्व के वश होकर नरकादि गतियो की जघन्य स्थिति से लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त और देवगति मे नवे ग्रैवेयक तक की सभी स्थितियो मे उत्पन्न होकर अनेक बार परिभ्रमण किया है ।

भाव परिवर्तन का स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

सव्वा पयडिट्ठिदीओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि ।
मिच्छत्त ससिदेण य भमिदा पुण भाव ससारे ॥

इस जीव ने मिथ्यात्व के ससर्ग से कर्मों के सब प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध के स्थानो को प्राप्त कर भावरूप ससार मे अनन्तवार परिभ्रमण किया है ।

भाइयो, इस प्रकार अनादि काल से सर्वत्र परिभ्रमण करने मे दोष किसका है ? इसमे दोप किसी और का नही है । सब दोष अपने ही राग-द्वेष से उपार्जित कर्मों का है । कहा है—

न दोषो दीयते आत्मानं न दोषो दीयते पर ।
न दोषो दीयते स्वामिन् कर्म दोषोहि दीयते ॥

इस ससार परिभ्रमण का दोष किसी दूसरे के ऊपर नही है, किन्तु यह सारा दोप हमारे कर्मों का ही है ।

यहा पर कोई प्रश्न करे कि इसमे आत्मा का दोष क्यो नही ? इसका उत्तर यह है कि जैन मत मे तत्व का निर्णय दो दृष्टियो से होता है—एक निश्चयनय की दृष्टि से और दूसरे व्यवहारनय की दृष्टि से । हम व्यवहार नय की दृष्टि से अवश्य कहते है कि आत्मा कर्म-वन्ध करता है । किन्तु जब हम निश्चयनय की दृष्टि से देखते हैं, तव यही कहना पडेगा कि आत्मा कर्म-वन्ध नही करता है । यदि आत्मा को कर्म-वन्ध का कर्त्ता माना जाय,

तो सिद्ध भगवन्तो की आत्माओ को भी कर्म-बन्ध का कर्त्ता मानना पडेगा। परन्तु उनकी आत्माए कर्म-बन्ध करती नही है। इसलिए यही निष्कर्ष निकलता है कि निश्चयनय से आत्मा कर्म-बन्ध नही करती है। कर्मशास्त्र मे भी कहा है—

पुग्गल कम्मादीण कत्ता ववहारदो णिच्छयदो।
चेदण कम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाण ॥

अर्थात्—व्यवहारनय से आत्मा ज्ञानावरणादि पुद्‌गल कर्मों का कर्त्ता है। अशुद्ध निश्चयनय से राग-द्वेषादि चेतन-कर्मों का कर्त्ता है। किन्तु शुद्ध निश्चयनय से आत्मा अपने ज्ञान-दर्शनादि शुद्ध भावो का ही कर्त्ता है।

यहा पर फिर कोई पूछ सकता है कि जब आत्मा ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्त्ता नही है, तब फिर उनका बन्ध क्यो और कैसे होता है? इसका समाधान सिद्धान्त मे इस प्रकार किया गया है—

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि राग दोस जुदो।
त पविसदि कम्मरय णाणावरणादि भावेंहि ॥

राग-द्वेष से युक्त यह ससारी आत्मा जब शुभ या अशुभ भावो मे परिणत होता है, तब उसका निमित्त पाकर कर्म-रूपी रज ज्ञानावरणादिभाव से परिणत होकर आत्मा मे प्रवेश करती है।

सबसे बडा शत्रु—कर्म।

इससे यह सिद्ध होता है कि संसारी आत्मा सिद्धो के समान सर्वथा शुद्ध नही है। किन्तु अनादि काल से बधे हुए कर्मों के निमित्त से अशुद्ध रूप मे परिणत हो रहा है। जो पूर्व बद्ध कर्म हैं, उनके उदय से जीव मे राग-द्वेष पैदा होते हैं और राग-द्वेष के उत्पन्न होने से जीव के परिणाम शुभ या अशुभ रूप होते हैं। इन शुभाशुभ भावो के होने से यह जीव ससार मे सर्वत्र भरे हुए कर्म परमाणुओ को सर्व ओर से अपने आत्मा के भीतर खीच कर उन्हे ज्ञानावरणादि रूप से परिणत कर लेता है और वे इस आत्मा से सबद्ध हो जाते हैं। पुन जब प्रति समय बधने वाले कर्मों का उदय आता है, तब फिर यह राग-द्वेष रूप से परिणत होता है। इस प्रकार के चक्र

द्वारा यह ससारी जीव नित्य नये कर्मों को बाधता रहता है। सिद्धान्त मे भी यही कहा है—

कम्म वेदयमाणो जीवो भाव करेदि जारिसयं।
सो तेण हवदि कत्ता हवदि त्तिय सासणे पढिद ॥

उदय मे आये हुए कर्म का वेदन करता हुआ यह जीव जैसे भाव को करता है, उससे वह फिर उसी प्रकार के कर्मों का कर्ता होता है। यह जिन शासन मे कहा गया है।

नाम कर्म के अनेक भेद आगम मे बतलाये गये हैं। उनमे एक भेद शरीर नाम है। शरीर नामकर्म के उदय से जीव के औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तेजस और कार्मण, ये पाच शरीर प्राप्त होते हैं। इनमे से तीन शरीर तो प्राप्त होते और छूटते रहते है। परन्तु तैजस और कार्मण शरीर जीव के साथ अनादिकाल से बराबर चले आ रहे हैं। यद्यपि इन शरीरो की स्थिति मर्यादित है। किन्तु पूर्व स्थिति का क्षय होने के पूर्व ही नवीन शरीर स्थिति का बन्ध हो जाने से उसकी परम्परा अविच्छिन्न रूप से अनादिकाल से चली आ रही है, इसीलिए सिद्धान्त मे कहा गया है कि—**'सर्वस्य अनादि सम्बन्धे च'**। अर्थात् ये दोनो शरीर सभी ससारी जीवो के पाये जाते हैं और इनका सम्बन्ध अनादिकाल से लगातार चला आ रहा है। ये दोनो शरीर जब तक आत्मा के साथ सबद्ध है, तब तक आत्मा कर्मों से सयुक्त है। जब चौदहवें गुणस्थान के अन्तिम समय मे इन दोनो शरीरो का अभाव होता है, उसी समय शेष सर्व कर्मों का भी अभाव हो जाता है और आत्मा शुद्ध निरजन, निर्विकार बनकर सिद्ध पद को प्राप्त कर लेती है। चू कि तैजस और कार्मण शरीर आत्मा नही है, पुद्गल रूप हैं। इसीलिए उनका आत्मा से सम्बन्ध विच्छेद होता है। इसलिए शुद्ध निश्चय नय से जीव को अपने शुद्ध ज्ञान-दर्शनादि भावो का ही कर्ता कहा गया है। और व्यवहार नय से पौद्गलिक कर्मों का कर्ता कहा गया है। इसी नय की अपेक्षा यह कहा जाता है कि यदि ससार मे जीव का कोई कट्टर शत्रु है तो वह भाव कर्म ही है। ये राग-द्वेषादि रूप भाव कर्म ही हमे ससार मे परिभ्रमण

करा रहे हैं। इसलिए यदि किसी को दोष देना है तो अपने इन राग-द्वेषादि भाव कर्मों को ही देना चाहिए।

शक्ति को जगाओ!

अब यदि हमने इन भाव कर्मों को दोष भी दिया, तो इससे क्या हुआ? जैसे हमने अपने किसी शत्रु को सौ गालियाँ भी दे दी, तो भी उसका क्या बाल-बाका हुआ? कौन सी शत्रुता मिट गई? परन्तु जब तक हम शत्रु को जड-मूल से नष्ट नही कर देंगे तब तक हमे सुख और शान्ति नही प्राप्त हो सकती है। इसलिए हमे सबसे पहिले इन कर्म-शत्रुओ को समाप्त करने का दृढ़ सकल्प करना चाहिए। यदि आपने दृढ निश्चय कर लिया कि हमे अपने कर्म-शत्रुओ को समाप्त करना है और इनसे सदा के लिए सम्बन्ध-विच्छेद करना है तो इसके लिए तैयारी कीजिए। कर्मों को समाप्त करने के लिए सबसे बडी वीर्यात्मक शक्ति है, उसे कही दूसरे की अपेक्षा से नही लाना है। वह शक्ति आपके भीतर ही विद्यमान है। बस, थोडी सी करवट बदलने की आवश्यकता है, वह शक्ति आपके भीतर जागृत हो जायगी। उसके प्रकट होते ही कर्म शत्रु धराशायी हो जायेंगे। फिर उनका पलायन होते देर नही लगेगी। परन्तु भाई, केवल लम्बी-चौडी बातें बनाने से कार्य सिद्ध होने वाला नही है। केवल साधु बन जाने या श्रावक बन जाने से काम नही चलेगा। उसके लिए तो बडी भारी शक्ति लगानी होगी, आत्मा का पराक्रम फोडना होगा। जिन-जिन महापुरुषो ने उम शक्ति को जागृत किया, वे सब निर्लेप, निर्विकार, निरजन सिद्ध परमात्मा बन गये। जिस गौतम (इन्द्रभूति) याज्ञिक पडित की आत्मा पहिले डूबी हुई थी, उसने जब अपनी शक्ति को पहिचान लिया, तो अपने कर्म-शत्रुओ को पछाडने मे देर नही लगी। वह गौतम पडित चारों वेद और अठारहो पुराणो का ज्ञाता था और अपने पाच सौ शिष्यो की मडली का स्वामी था। वह अपने सामने दूसरे को तृणवत् समझता था, ऐसा उसे अपने ज्ञान का अभिमान था। वह अभिमान के मेरु पर चढ़ा हुआ था। वह मध्यम पावा में सोमिल ब्राह्मण के यहा यज्ञ कराने को आया हुआ था। भगवान् महावीर का समवसरण भी उमी पावा के

वाहिरी उद्यान मे लगा हुआ था। भगवान के दर्शनार्थ स्वर्ग से इन्द्रादिक देव-समूह अपने-अपने विमानो मे वैठकर आ रहे थे। भगवान की वन्दना करने के लिए नगर-निवासी लोग भी जा रहे थे। यह समाचार जब इन्द्रभूति गौतम को ज्ञात हुए, तब वह अभिमान मे आकर बोला—

> **ओ, कुण रे इन्द्रजालियो इम कहता आयो तुम तीर के**
> **महर करी घणी प्रभु थाप्यो हो तस खास वजीर के,**
> **वीर सुनो म्हांरी बीनती !**

भाइयो, उस गौतम पडित की आत्मा कुछ समय पहिले तक कैसी अहकारावृत थी कि वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आनन्दघन, सच्चिदानन्द, परम ब्रह्म, परमात्मा भगवान् महावीर के लिए कह रहा था कि महावीर क्या मुझ से वडा है ? क्या वह मुझसे अधिक ज्ञानी है। अरे, वह तो इन्द्रजालिया है। मैं अभी जाकर उस महीवार के सारे इन्द्रजाल को और उसके ढोग को विखेर देता हू। भाई, उस समय क्या कोई श्रावक यह अनुमान लगा सकता था कि जिसके मुख से ऐसे अपमान-जनक शब्द निकल रहे है, वह भी क्या कभी भ० महावीर के पास जाकर और सयमधारण कर उनके सघ का नायक वन सकेगा ? क्या किसी को ऐसा अनुमान भी था ? नही ! परन्तु हुआ क्या ? वह गौतम अपने पाच सौ शिष्यो के साथ पालकी मे वैठा हुआ—विरुदावलियो के गु जारव के साथ अभिमान से मरा जाता हुआ—कहता है कि मैं अभी जाकर उस महावीर के मान को मर्दन किये देता हू,उसके अहकार को चूर-चूर कर देता हूँ। परन्तु ज्यो ही वह समवसरण के समीप पहुचा और उसकी अलौकिक शोभा देखी तो आश्चर्य-चकित हो गया—दग रह गया और विचारने लगा—

> **किं रुद्र किं मुरारि किं रतिरमण इन्द्र वा देव राजा**

अरे, क्या यह ब्रह्मा है ? नही, यह ब्रह्मा नही है। यदि ब्रह्मा होता तो इसके साथ सावित्री होती ? यह विष्णु भी नही है, अन्यथा इसके साथ लक्ष्मी होती। यदि शकर होता, तो इसके साथ पार्वती होती। यह कामदेव भी नही है, अन्यथा इसके साथ रति होती। यदि यह इन्द्र होता, तो इसके साथ

इन्द्राणी होती। तो फिर यह कौन है ? जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कामदेव और इन्द्र को भी अपने रूपातिशय से मात दे रहा है ! भाइयो, इस प्रकार मन मे अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करता हुआ क्रमश पहिले, दूसरे और तीसरे कोट को पार करता और वहा की अद्भुत शोभा को देखकर विस्मित होता हुआ वह बीस हजार सोपान-पक्तिओ को पार कर भगवान् के सम्मुख पहुँचा। भगवान के मुखमण्डल से अपूर्व शान्ति का झरना झर रहा था, सर्व और परम शान्ति का वातावरण था। उसे देखकर भावुक दर्शक के मुख से सहसा निकल पडा कि—

तुम्हारी शान्तमुद्रा से अलौकिक शाति झरती है
सिह मृग गोद मे सोते, सदा जय हो, सदा जय हो।

वहा पर क्या ही शान्ति का साम्राज्य था कि परस्पर-जाति-विरोधी प्राणी अपने वैर-विरोध को भूलकर सगे बन्धु से गले मिल रहे है। वहा का यह अदृष्टपूर्व अश्रुत सम्मिलन देखकर सहसा गौतम के मुख से निकल पड़ा—

सारगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं,
मार्जारी हंसबाल प्रणयपरवशा केकिकान्ता भुजगीम्।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति,
श्रित्वा साम्यैकरूढ प्रशमितकलुष योगिन क्षीणमोहम्॥

अहो, यह हरिणी सिंह के बच्चे को अपना पुत्र समझ कर उसे स्पर्श कर रही है, यह गाय व्याघ्र के बालक को अपना बच्चा समझकर उसे चाट रही है, यह बिल्ली हस के बच्चे को स्नेह से खिला रही है और यह मयूरी सर्पिणी के साथ प्रेम से निर्भर होकर खेल रही है। यही नही, किन्तु अन्य भी जन्म-जात वैर वाले जीव निष्पाप, वीतराग और साम्यभाव को धारण करने वाले इस परम योगी श्रीवर्धमान भगवान् की शरण लेकर और मद-रहित होकर, अपना वैर-भाव भूल रहे हैं और परस्पर मे अति प्रेम से मिल रहे हैं।

भगवान के चारो ओर का ऐसा अद्भुत प्रशान्त दृश्य देखकर इन्द्रभूति गौतम सोचने लगे— ये वास्तव मे तीर्थंकर है, क्योकि मैंने जो तीर्थंकरो की

महिमा सुन रखी, वह यहा पर साक्षात् दिखाई दे रही है। मुझे जो अभी तक महावीर के विषय मे भ्रम था, वह आज मेरा दूर हो गया।

गौतम को उद्‌बोधन !

भगवान के सामने इस प्रकार विस्मयान्वित हर्ष के साथ जाते हुए गौतम के मन मे विचार उठा कि वेदो के तीन दकार-सम्बन्धी पुनरुक्ति दोष नही होना चाहिए। तभी भगवान ने उन्हे सम्बोधित किया—अहो इन्द्रभूति ! इसे सुनते ही गौतम के हृदय मे पुन अभिमान का सचार हुआ—अरे, मैं इतना विद्वान् हूँ, मुझे कौन नही जानता है ? सारी दुनिया मुझे पहिचानती है ! तभी भगवान ने कहा—अरे गौतम, तेरे मन मे तीन दकारो के पुनरुक्ति की शका है ? यह सुनते ही गौतम का गर्व खर्व हो गया। मन ही मन मे कहने लगे- ये तो सचमुच सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। अन्यथा मेरे मन की यह गूढ शका कैसे जान लेते। प्रकट मे बोला—हता भगवन् ! आपका कथन सत्य है। तब भगवान ने कहा—तेरी यह शका युक्ति-युक्त नही है। वे तीनो दकार सार्थक हैं। सुनो—प्रथम दकार का अर्थ दया है, दूसरे का दान और तीसरे का दमन अर्थ है। तीनो ही दकार भिन्न-भिन्न अर्थ के वाचक हैं, इसलिए उनके प्रयोग मे कोई पुनरुक्ति दोष नही है। भगवान के मुखारविन्द से यह सुनते ही गौतम के हृदय का सारा भ्रम दूर हो गया। सारी शंकाए निर्मूल हो गई। और मन मे विचारने लगा—तीर्थंकर मैं नही, किन्तु ये हैं। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी मैं नही, अपितु ये हैं। इन्होने मेरे हृदय को उद्वेलित करने वाली शका को अपने दिव्य ज्ञान से स्वय ही जानकर उनका समाधान कर दिया। ओह, ऐसे महापुरुष की मैंने कितनी भारी आशातना की ! मैं आज तक कितने भारी अन्धकार मे रहा ? और ऐसे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी को अल्पज्ञ और इन्द्रजालिया समझता रहा ! आज मेरा परम भाग्योदय हुआ है कि मेरे हृदय का सारा अज्ञानान्धकार दूर हो गया है। हे भगवन्, मेरा कैसे उद्धार होगा ? ये वचन सहसा उनके मुख से निकल पडे—

> **'इस आत्मा का अर्हन् ! कैसे उद्धार होगा ? ।टेर।**
> **स्वादिष्ट चीज भोगी वाजूं मैं जैन जोगी**
> **हा-हा गति क्या होगी कैसे उद्धार होगा ?**

क्रोधी अरु मैं कामी मानी हूँ चीज पामी
आ जन्म से है खामी कैसे उद्धार होगा ?

अरे, मैं तो वडा कामी, दभी, ढोगी और मायाचारी हू। मैंने अभिमान के वश होकर दुनिया से कहा—मैं सर्वज्ञ हू, सर्वदर्शी हू। मेरे से बडा ससार मे अन्य कोई व्यक्ति नही है। हा, मैंने बहुत भारी ढोंग किया और अपना अध पात किया।

भाइयो, अपनी भूल कब सामने आती है ? जव उसे ठोकर लगती है। जब तक मनुष्य को ठोकर नही लगती है, तब तक वह अपनी भूल को स्वीकार करने के लिए तैयार नही होता है, भले ही सारा ससार उसे कुछ भी कहता रहे।

भूल को पहचानो !

एक नगर की वात है। वहा पर दो भाई रहते थे। बडे भाई की शादी हो गई थी। छोटे के सगाई हो गई थी, पर विवाह नही हुआ था। बडे भाई से छोटा भाई बहुत छोटा था। उसकी मा वचपन मे ही मर गई थी, अतः उसकी भौजाई ने ही उसका लालन-पालन किया था। जब वह पढ़ लिखकर होशियार हो गया, तब दुकान पर बैठकर कारोवार सभालने लगा। एक दिन उसके शिर मे दर्द उठा और काम-काज मे चित्त न लगने से घर चला आया। भौजाई ने पूछा—लालजी, आज इतनी जल्दी कैसे आ गये ? उसने कहा—भाभी, सिर दुख रहा है। भाभी ने कहा—आओ, मैं सिर मे दवा मसल देती हू। वह भाभी की गोद मे सिर रखकर लेट गया। दवा मसलते-मसलते भाभी को मजाक सूझा—क्योकि होली के दिन थे। अत उसने दवा लगाते लगाते उसके सारे मुख पर काजल पोत दिया। इतने मे दुकान से वुलावा आ गया। वह हड-वड़ा कर उठा और कपडे पहिनकर दुकान को चल दिया। ज्यो ही वाजार मे पहुचा तो लोगो ने कहा—भाई सा०, आज यह काला मु ह कहा कराया है। लडका बोला—भाई माफ करो, मुझे मजाक पसन्द नही। यदि कोई करे तो मुझे सहन नही होता। तब किसी ने कहा—हम मजाक नही कर रहे हैं। किन्तु सत्य कह रहे हैं। इस पर वह झुझला

कर बोला—मेरा तो नही, पर तेरा मुह अवश्य काला है। इस पर वह वोला—मेरा नही, तेरा है। यह सुनते ही यह बिगड उठा और कहने लगा तेरा मुह काला और तेरे बाप दादा का मुह काला। इस प्रकार बोलता हुआ ज्यो ही आगे बढा कि फिर किसी दुकानदार ने टोक कर कहा—अजी भाई सा! आज काला मुह कहा कर आये हैं। सुनते ही वह फिर भडका और दूसरो को गाली देते हुए आगे बढा कि फिर वहाँ के लोगो ने वही बात दोहरायी। यह सभी कहने वालो को गालिया देता हुआ जा रहा था कि एक परिचित वृद्ध सज्जन ने पुकार कर इसे अपने पास बुलाया और प्रेम से अपने पास गद्‌दी पर बैठाया। और नौकर से दर्पण मगाकर इसे दिया। इसने ज्यो ही दर्पण मे अपना मुख देखा तो उसे सचमुच काला पाया। इसका सारा गुस्सा ठडा हो गया और सोचने लगा कि भाभी ने यह मजाक किया है और मैं वाजार मे सच्ची कहने वालो को भी गालिया देता आया हू, यह बहुत वुरा काम मैंने किया है। तभी सेठ ने नौकर से साबुन - पानी और तौलिया मगाया और इसे अपना मुख धोने के लिए कहा। वह मुह साफ करके इन सेठ जी का आभार मानता हुआ अपनी दुकान को चला और मार्ग मे पहिले जिन्हे गालिया दी थी, उनसे क्षमा-याचना करने लगा।

हा, तो जैसे उस लडके ने पश्चात्ताप किया और लोगो से क्षमा मागी। उसी प्रकार गौतम भी पश्चात्ताप करने लगे और भगवान से अपने अपराधो की क्षमा मागते हुए वोले—भगवन्, मेरी आत्मा का कल्याण कैसे होगा? तव भगवान ने कहा—'वुज्झ,वुज्झ' 'हे गौतम, तत्व समझो' और यदि आत्म-कल्याण करना है तो प्रतिवोध को प्राप्त करो। यह सुनते ही गौतम विशुद्ध हृदय से भगवान के श्री चरणो मे आकर नत-मस्तक हुए और कहने लगे—भगवन्, कृपा कर वताइये कि मेरा असली स्वरूप क्या है? उन्हे स्वय जीव के विपय मे शका थी और वेद के '**द्रष्टव्योऽरेऽयमात्मा**' इत्यादि वाक्य का अर्थ वे अभी तक नही समझ सके थे। तव भगवान् ने '**उप्पज्जेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा**' इस त्रिपदी का उपदेश दिया। अर्थात्—हे गौतम, यह उत्पन्न होने वाला, नाश होने वाला और अपने स्वरूप मे स्थित रहने वाला पदार्थ है

और इसी प्रकार ससार का प्रत्येक द्रव्य 'उत्पाद-व्ययध्रौव्यात्मक सत्' स्वरूप है। गौतम ने भगवद्-उपदिष्ट इस त्रिपदी को सुना और उसका अर्थ चिन्तवन करते—करते ही चौदह पूर्वों का ज्ञान उत्पन्न हो गया।

भाइयो, वताओ—क्या गौतम भगवान् के पास पट्टी-पेन्सिल को लेकर पढने को बैठे ? नही। अरे, जब आत्मा के ज्ञान का क्षयोपशम प्रकट होता है, तब वह तीन पदो से ही प्रकट हो जाता है। गौतम को भी तीन पदो से ही सारे द्वादशाङ्ग श्रुत का ज्ञान उत्पन्न हो गया। यद्यपि ज्ञान आत्मा मे ही था। उसे कही से लाना नही था। किन्तु निमित्त मिलने की देर थी। उसे भगवान का निमित्त मिला और वह प्रकट हो गया। इस प्रकार भगवान के शिष्य वनते ही—दीक्षा लेते ही पूर्ण मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के साथ तत्काल अवधिज्ञान भी प्रकट हो गया और तत्पश्चात् प्रवर्धमान विशुद्ध सयम-परिणामो के निमित्त से मन पर्यवज्ञान भी प्रकट हो गया। जो भगवान् के पास आने के पूर्व तक महाकृष्ण लोहे के समान मिथ्यादृष्टि मिथ्याज्ञानी और मिथ्या चारित्री थे, वे ही भगवान के पारस-पाषाण रूप चरण-कमल के सम्पर्क मात्र से महान् सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी और सम्यक् चारित्री बनकर काचन के समान चमकने लगे।

गौतम को दीक्षित हुआ देखकर उनके पाच सौ शिष्यो ने भी भगवान के पास भगवती जैनेश्वरी दीक्षा अगीकार कर ली और गौतम उनके गणधर वन गये। भाई, आत्मा का उत्थान करना अपने ही हाथ मे हैं। जब यह जीव अपने आत्म स्वरूप को पहिचान लेता है, तब उसका उत्थान होते देर नही लगती। देखो—गौतम क्या से क्या हो गये। जब मनुष्य आत्म-विमुख होकर कार्य करता है, तब वह पतन की ओर चला जाता है। जिसका आप हम सभी लोग अनुभव करते हैं। इस पतन को रोकने की आवश्यकता है। उसे रोके बिना कुछ होने वाला नही है। जब हम निज रूप मे आयेंगे और पर रूप को छोडेंगे, तभी हमको शाश्वत सुख प्राप्त हो सकेगा। अरे, पररूप तो वहुत देखे हैं। परन्तु निज रूप को नही देखा है और उसे देखे बिना आत्म-कल्याण नही हो सकता है। अध्यात्म कवि प० दौलतरामजी कहते हैं—

हम तो कबहुँ न निज-गुण भाये।
तन निज मान, जान तन-दुख सुख, मे बिलखे हरखाये ।।हम० १।
तनको मरन भरन लखि, तन को धरन मान हम जाये।
या भ्रम-भंवर परे भव-जल चिर, चहुगति बिपत लहाये ।।हम० २।
दरश बोध व्रत सुधा न चाख्यौ, विविध विषय विष खाये।
सुगुरु दयालु सीख दई पुनि पुनि, सुनि-सुनि उर नहि लाये ।।हम० ३।
बहिरातमता तजी न अन्तर, दृष्टि न ह्वै निज ध्याये।
धाम काम धन रामा की नित, आश हुताश जलाये ।।हम० ४।
अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी, सब सुखमय मुनि गाये।
'दौल' चिदानन्द स्वगुन मगन जे, ते जिय सुखिया धाये ।।हम० ५।

भाइयो, हमने कभी भी अपने गुणो की भावना नही की। आज तक शरीर को अपना मानकर उसके दुख मे दुखी और सुख मे सुखी होते रहे। हमने शरीर के मरण को अपना मरण माना, और शरीर के जन्म को अपना जन्म जाना। इस भ्रम बुद्धिरूपी भवर मे पडकर हम चिरकाल से इस चतुर्गति रूप ससार मे दु.ख उठाते घूम रहे हैं। हमने अपना दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप अमृतमय आत्मस्वरूप कभी नही चखा और नाना प्रकार के विषय रूप विषयो को ही खाया है। सुगुरु ने दयालु बन करके बार-बार हमे उत्तम शिक्षा दी और हम उसे सुन-सुन करके भी अपने हृदय मे नही लाये। हमने आज तक बहिरात्मता मिथ्यात्वीपना नही छोडा और अन्तर दृष्टि बनकर कभी अपने को नही ध्याया। हम निरन्तर धन-धाम, रामा-कामादि की आश रूप हुताशन (अग्नि) मे ही जलते रहे। अरे, मुनिजनो ने अपने आत्मा का स्वरूप अचल, अनुपम सुखमय शुद्ध चिद्रूप बताया है। जो अपने इस चिदानन्दरूप स्वगुणो मे मग्न हुए तो शाश्वत सुखी बन गये।

शरीर से आत्मा भिन्न है

बन्धुओ, यह पुद्गल शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है, जिस दिन यह भेद-विज्ञान समझ मे आ जायगा, उसी दिन हमारा निज रूप सामने आ जायगा। हमारा निज रूप न काला है, न गोरा है। उसमे किसी भी

कार या वर्ण (रूप) नही है। न उसमे सुगन्ध है और न कोई दुर्गन्ध है। उसमे न मिष्ट रस है और न कटुक रस है। वह न कठोर है और न कोमल है। वह रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से रहित अरूपी है। ये जो हम रूपादिक देखते हैं, वे सब शरीर रूप पुद्‌गल के धर्म हैं। हमारे आत्मा का कोई छोटा या बडा आकार भी नही है। वह अमूर्त है। वह तो इस सारे शरीर मे इस प्रकार समाया हुआ है, जैसे फूल के सर्वाङ्ग मे सुगन्ध और तिल के सर्वाङ्ग मे तेल व्याप्त रहता है। जैसे दूध के सर्वांग मे घी समाया रहता है। उस आत्मा का स्वरूप क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, राग, द्वेष रूप भी नही है। ये तो कर्म-जनित विकारी भाव हैं। आत्मा का स्वभाव तो ज्ञान-दर्शन स्वरूप है। आत्मा का स्वभाव तो क्षमाशील है, मार्दव-आर्जव, सत्य, शौचरूप है। आत्मा तो कर्म-मल से अलिप्त है। जैसे कमल कीचड मे उत्पन्न होकर और जल मे रहकर भी उससे अलिप्त रहता है। इसी प्रकार आत्मा भी शरीर मे रहते हुए भी उससे भिन्न ही रहती है और उसके रुचक प्रदेश सदैव निर्मल रहते हैं। उनके ऊपर कर्म-मल नही लगा है। जब तक किला राजा के पास हैं, तब तक राज्य नही जा सकता है। इसी प्रकार आत्मा के शरीर-मध्यवर्ती जो रुचक प्रदेश हैं—वह निज का किला है। वह सदा हमारे पास है। हा, जैसे कोई शत्रु आकर किले को चारो ओर से घेर लेवे—वैसे ही कर्मों ने चारो ओर से उन रुचक प्रदेशो का घेर रखा है। हमे इस कर्म घेरे को हटाने की आवश्यकता है।

आत्म-सिंह को जगाओ!

एक बार एक शेर पहाडी की तराई मे हरी घास पर खुराटे की नीद मे सो रहा था। शिकारी उसकी तलाश मे घूम रहे थे। नगर-निवासी उस आदम-खोर शेर से परेशान थे। शिकारियो को पता चला कि शेर अमुक स्थान पर गहरी नीद मे पडा हुआ सो रहा है। यह अच्छा मौका जानकर उन लोगो ने चारो ओर से उसको मारने के लिए घेरा लगा दिया। सब लोग अपने-अपने हथियार हाथ मे लेकर के उसे मारने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। इतने मे ही ऊची पहाडी पर खडी हुई उसकी शेरन

ने देखा कि मेरे शेर को मारने के लिए चारो ओर लोग हथियार ले-लेकर खडे है और मेरा शेर गहरी नीद मे सो रहा है। अब तो यह असमय मे ही मारा जायगा। यह सोचकर शेर को जगाने के लिए उसने जोर से दहाड मारी। मानो उसने अपनी आावज मे कहा—ऐ वनराज, शत्रु तेरे पर चढ कर आ गये हैं, उन्होने तुझे चारो ओर से घेर लिया है। अब तेरी जान खतरे मे है। शेरनी की आवाज सुनकर भी आँखे बन्द किये ही वह अपनी धीमी आवाज मे गुर्राता हुआ कहता है—अरी, मेरी नीद क्यो खराब करती है। मुझे शान्ति से सोने दे। शेरनी ने देखा कि शेर आखें बन्द किये पडा हुआ है, तव उसने जोर से दूसरी दहाड लगाई और कहा—अरे मूर्ख, तेरे मारने की पूरी मोर्चाबन्दी हो चुकी है। अब तो बन्दूको के घोडे दबने की ही देरी है। यदि सभलना हो तो, अब भी सभल जा।

इस दूसरी आवाज के आते ही शेर होश मे आ गया। उसे आख खोल-कर जो देखा सो ज्ञात हुआ कि मोर्चा तो सचमुच मे लग गया है। अब तो केवल घोडे दवने की ही देर है। वह उठा और चारो ओर अपनी नजर दौडाई। सव स्थिति देखकर मन मे सोचने लगा कि अरे, इन्होने मुझे नीद मे वेहोश देखकर धोखे से मारने को तैयारी की है। बस, फिर क्या था—उसने जोर से एक दहाड लगाई, जिसे सुनते ही शिकारियों के हाथ से बन्दूकें छूटकर नीचे गिर पडी और वह छलाग मारता और चार-छह का सफाया करता हुआ अपनी शेरनी के पास चला गया। उसने शेरनी के पास पहुचकर कहा—देखी मेरी करामात ! उन लोगो का मोर्चा क्या काम आया ? देख, मैं उन मोर्चों को चीरकर तेरे पास आ गया हूं। तव शेरनी वोली—क्यो अभिमान की डीग मार रहे हो ? यदि मैं न जगाती, तो क्या तुम मेरे पास आ सकते थे। शेर ने स्वीकार किया कि तेरे जगाने से ही मैं सभल सका और जीवित वचकर तेरे पास आ सका हू।

भाइयो, जैसे उस शेरनी ने शेर को जगाया, तो वह सावधान हो गया। यदि शेरनी न जगाती, तव तो वह मौत के मुख मे जाने ही वाला था। इसी प्रकार हमारा यह आत्मा रूपी शेर वेहोश सो रहा है। इसके भी चारो

और कर्मों का मोर्चा लग गया है। परन्तु भगवान की वाणी रूपी शेरनी बार-बार जोर की आवाज देकर कह रही है—'बुज्झ-बुज्झ'। हे आत्माराम, अब तो मोह की नीद को छोडकर जागो—अब भी जागो। फिर कोई तेरा सामना करने वाला नही है। जैसे शेरनी की आवाज सुनकर शेर जाग गया, तो शिकारियो को मारता हुआ अपनी शेरनी के पास जा पहुचा। इसी प्रकार तुम भी जागो और आत्म स्वरूपोपलब्धि रूप सिद्धि के पास पहुचो।

प० दौलतराम जी ससारी जीवो को सम्बोधित करते हुए इस जिन वाणी के अभ्यास की प्रेरणा करते हैं—

> जिन वाणी जान सुजान रे, जिनवाणी जान सुजान रे।
> लाग रही चिरतें विभावता, ताको कर अवसान रे ॥जिन०१॥
> द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव की, कथनी को पहिचान रे।
> जाहि पिछाने स्व-पर भेद सब, जानें परत निदान रे ॥जिन०२॥
> पूरव जिन जानी तिन ही ने, भानी संसृति वान रे।
> अब जानें, अरु जानेंगे जे, ते पावे सिवथान रे।॥जिन०३॥
> कह तुस मास मुनि शिवभूती, पायो केवल ज्ञान रे।
> यो लखि दौलत सतत करो भवि, चिद्वचनामृत पान रे ॥जिन०४॥

भाइयो, सन्तपुरुष पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि जिनवाणी का अभ्यास करो। इसके अभ्यास से ही तुम्हें विभाव-भावो का ज्ञान होगा और तभी तुम उनका अन्त कर सकोगे। इन्हे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से जिन्होंने पहिले जाना, उन्होने ससार का विनाश कर मोक्ष पाया है, आज पा रहे हैं और आगे पायेंगे। 'मातुषु मा रुष' का उच्चारण करने वाला शिवभूति मुनि केवलज्ञानी बन सिद्ध हो गया। ऐसा समझकर हे भव्य जीवो, तुम नित्य जिन वचनामृत का पान कर चिदानन्द अमृत का पान करो।

यहा कोई पूछे कि कर्म तो आठ हैं और आत्मा अकेला है। वह उनको

कैसे जीत सकता है ? इसका उत्तर यह है ? कि कर्मों की शक्ति असख्यात है, जबकि आत्मा की शक्ति अनन्त है। फिर ये आठ ही क्या आठ सौ और असख्याते भी आ जावे तो भी यह अनन्त शक्ति का धारक आत्मा उन सब कर्मों का चकचूर करके आत्म स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। जब तक आत्मा सोती है, तब तक ही कर्म लुटेरो का साम्राज्य है। आत्मा के जगते ही ये चारो ओर भागने लग जायेंगे। देखो—गौतम की आत्मा जगी तो भगवान के पट्टधर गणधर बनते देर नही लगी। यदि आप लोग भी जागेंगे तो आपको भी भगवान जैसा बनने मे विलम्ब नही होगा। सज्जनो, अपनी आत्मा को जगाओ और शक्ति को पहिचानो।

वि० स० २०२७ भाद्रपदशुक्ला १०
जोधपुर

●●

१७ | विलासिता को त्यागो !

सज्जनो, ससार के समस्त प्राणियो मे मानव-जीवन एक दिव्य जीवन है। परन्तु उसे भी कभी-कभी अपने स्थान से गिरने का अवसर आता है। यह अवसर कब आता है? जबकि यह मानव विलासिता मे परिणत हो जाता है। तब उसका यह दिव्य जीवन नारकीय जीवन बन जाता है और मानव जीवन की सारी गरिमा एव महिमा नष्ट प्राय हो जाती है।

आसक्ति के दो प्रकार

अब देखना यह है कि विलासिता किसको कहते हैं? इन्द्रियों के विषय-भोगो की तीव्र अभिलाषा को विलासिता कहते हैं। यह विलासिता या भोगो की तीव्र अभिलाषा भी दो प्रकार की होती है—एक तो उस भ्रमर जैसी—जो कि फूल पर आकर मडराया, गुनगुनाया और सुगन्ध लेकर रवाना हो गया। वह सुगन्ध मे आसक्त होकर वही नही बैठा रहता है। किन्तु सुगन्ध लेकर तत्क्षण उड जाता है। दूसरी भोगाभिलाषा उस भ्रमर जैसी—जो फूल की सुगन्ध मे मस्त होकर वही रह जाता है—उसे लेने मे इतना आसक्त हो जाता है कि फिर उस फूल को छोडना ही नही चाहता है। साधारण पुष्पो पर यदि भौंरा अधिक समय तक बैठकर उसका रस-पान करे, त ो

कलिया बिखर जाती है । इसलिए वह पकज पुष्प कमल पर उसकी सुगन्ध से आकृष्ट होकर बैठता है और लम्बे समय तक रस-पान करता हुआ उसकी सुगन्ध मे आसक्त बना रहता है ।

कमल दो प्रकार के होते हैं--सूर्य-विकासी और चन्द्र-विकासी। चन्द्र-विकासी कमल रात्रि मे ही खिलते हैं और उन्हे कुमुद कहते हैं। सूर्य-विकासी कमल दिन मे सूर्य के उदय होने के साथ विकसित होते हैं और सूर्यास्त के साथ सकुचित हो जाते है । भौंरे सूर्य के प्रकाश मे ही उडते है अत कोई भौरा किसी कमल की सुगन्ध से आकृष्ट होकर उस गन्ध और रस के पान मे इतना मस्त होगया कि उसे सूर्य के डूबने का भी भान नही रहा और सूर्यास्त के साथ ही कमल सकुचित हो गया और वह भौरा उसी मे बन्द हो गया । अब वह तडफडाता है कि किसी प्रकार मैं इससे बाहिर निकल जाऊ । जब किसी भी प्रकार से बाहिर नही निकल पाता है, तब वह पश्चात्ताप करता है कि मैंने बडी भूल की—जो सूर्यास्त के पूर्व ही उडकर नही भाग गया । यदि मैं इसकी सुगन्ध मे इतना आसक्त न होता तो इस प्रकार कैद खाने मे न पडता । अब वह मन मारकर बैठा बैठा सोचता है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभात
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकज श्री ।
इत्थ विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त ! हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार ॥

दस-बारह घटे के बाद रात्रि चली जायगी, फिर सुनहरा सुप्रभात काल होगा । तत्पश्चात् भास्कर सूर्य का उदय होगा और उसके उदय होते ही यह कमल—लक्ष्मी विकसित होगी तब यह कमल भी खिल पडेगा और मैं तुरन्त उड जाऊ गा और अपने भाई— बन्धुओ से जा मिलू गा । तब मैं इस कैदखाने की परवशता का दु ख उनके सामने रखू गा और उनसे कहूगा—कि भाइयो तुम लोग मेरे जैसे कभी धोखे मे मत पड जाना। अन्यथा तुम्हे भी सारी रात कैदखाने मे मेरे समान कैदी बनकर उस दम—घोटू वातावरण का—काल कोठरी का असह्य दु ख भोगना पडेगा । इस प्रकार विचार करता हुआ वह

आखें बन्द किये उस कमल कोश मे बैठे परवशता का अनुभव कर रहा था। परन्तु भाई, यह ससारी प्राणी विचार तो कुछ और करता है और होता कुछ और ही है। भविष्य के गर्भ मे क्या है, क्या होने वाला है, इसका किसी को कुछ भी पता नही है। इतने मे ही एक मदोन्मत्त गजराज पानी पीने के लिए उस सरोवर पर आया। भीतर घुसकर खूब पानी पिया और अपनी सूड हिलाते हुए कमलिनी को उखाड कर अपने मुख मे रखकर उसे चबाता हुआ इधर चला, और उधर उस भौंरे की सब आशाएं भी उसी के साथ समाप्त हो गई। वह हाथी उसके लिए काल बनकर आया और उसकी समस्त आशाओ के साथ उसे भी समाप्त कर गया। भाइयो, यह सब भ्रमर की विलासिता के कारण हुआ। यदि वह सूर्यास्त होने के पूर्व ही अपने अन्य साथियो के साथ कमल से उड जाता, तो इस प्रकार से असमय मे उसका अन्त न होता।

जो भौरा पुष्पो की सुगन्ध मे आसक्त नही होकर और ऊपर-ऊपर से ही उसका सौरभ लेकर उड जाता है, उसकी ऐसी कुमौत नही होती। किन्तु जो भौंरा विलासी बनकर उसमे मस्त हो जाता है, उसे ही कभी बिना मौत के मरना पडता है। वह भौंरा कमल के इस सौरभ का लोलुपी या विलासी बना, इसीलिए उसे असमय मे कुमौत से मरना पडा।

अरे, वह भौंरा तो एक चतुरिन्द्रिय प्राणी है। परन्तु मनुष्य तो सज्ञी पचेन्द्रिय जीव है और ससार के सब प्राणियो मे सबसे अधिक बुद्धिमान् है, अपने भले-बुरे का विवेक रखने वाला कहा जाता है, वह भी आज दिन-रात विलासिता के ही साधन जुटा रहा है और उत्तरोत्तर उसी मे निमग्न होता जा रहा है। वह यही चाहता है कि मेरे शरीर को हर प्रकार से आराम मिले। मुझे किसी भी प्रकार का दुख न उठाना पडे। वह खाने—पीने मे निमग्न है और भोग भोगने मे आसक्त हो रहा है। आरम्भ—परिग्रह के कामो मे मस्त बना फिरता है। उसे रात—दिन भोग—विलास के
दूसरी बात का ध्यान ही नही है। इस प्रकार विलासिता मे डूबा
उत्तरोत्तर अपना सत्यानाश करता जा रहा है। उसे इनसे मुक्त हो

इच्छा ही नही होती है। हम जितने भी नाना प्रकार के दु खो से पीडित होते हुए देख रहे हैं, वह सब विलासिता का ही कुफल है।

भोजन की आसक्ति

आज हम देखते हैं कि मानव का स्तर कितना नीचे गिरता जा रहा है। एक भोजन को ही ले लीजिए—जो भोजन के विलासी बने हुए हैं, खाने के लोलुपी बन उसी मे आसक्त हो रहे हैं, उन्हे इस बात का कोई विचार नही है कि यह पदार्थ भक्ष्य है, या अभक्ष्य है ? खाद्य है, या अखाद्य है ? इसका कोई विचार न करके वे अखाद्य और अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण कर रहे हैं। जो मास—भक्षी हैं वे नाना प्रकार के जानवरो को मारते हुए—उनके टुकडे-टुकडे करते हुए, छेदन-भेदन करते हुए और जलाते—पकाते हुए क्या उनका एक रोम भी पीड़ित होता है ? नही होता है ? अरे, उनके हृदय मे दया और करुणा का अश भी दिखाई नही देता। वे तो यही चाहते हैं कि जिस किसी भी प्रकार से हमारे शरीर की पुष्टि हो। हमे तो बलवान् बनना है। उनके सामने मारे जाने वाले जीव कितने ही छट-पटावें, बिल-विलाप और करुण आक्रन्दन करे, परन्तु मास-भक्षियो के मन मे यत्किंचित भी दया आने का नाम नही। यदि कोई व्यक्ति उनकी नृशसता और क्रूरता को देख कर—उनके राक्षसी कार्यों से पीडित एव द्रवित हृदय होकर कहे कि यह आप क्या कर रहे है, यह जघन्य एव घृणित क्रूर कार्य करना आपके लिए योग्य नही है। तब वे कहते हैं कि तुमको क्या पता है ? ये तो हमारे खाने के लिए ही भगवान ने बनाये हैं, फिर हम उनका क्यो न आनन्द लेवें ? मास भक्षियों का हृदय पाषाण से भी अधिक कठोर हो जाता है, फिर उसमे धर्म-बुद्धि या दयालुता उत्पन्न होना असभव है। ऐसे अशुचिभक्षी लोगो के लिए न तो रात का विचार है और न प्रभात—सायकाल का। न उन्हे पर्व-त्योहार आदि का विचार रहता है। उल्टे त्योहार के दिन तो शिकार खेलने जावेंगे और मास पकाकर खावेंगे। वे खाते तो कम है। किन्तु प्राणी-विघात बहुत अधिक करते हैं। जैसे—भैसा या सुअर किसी खेत मे घुस जाता है तो वह खाता कम है किन्तु धान का नुकसान अधिक कर डालता है। ये मास—

लोलुपी शिकारी चार—छह आदमी जगल मे जाते हैं और छोटे-मोटे अनेक जानवरो का शिकार करके मोटरो की मोटरें भर लाते हैं। आप बताइये—क्या इतने जानवरो का मास खा जाते हैं ? नहीं। परन्तु भाई, उन्हे शिकार खेलने मे मजा आता है और समझते हैं कि हमने बडी बहादुरी का काम किया है। हम बहुत अच्छे निशाने बाज हैं। अब उनसे पूछो कि थोड़े समय के लिए तो तुम्हारा मनोरजन हो गया और दीन—प्राणियो को मारकर अपने को बहादुर समझ लिया। परन्तु यह तो सोचो कि कितने निर्बल, असहाय, मूक पशु-पक्षियो का तुमने सहार कर डाला ? असमय मे ही तुमने उनके प्राण लूट लिये। उनकी आत्माए क्या तुम्हें आशीर्वाद देंगी ? कभी नही। वे तो यही कहते अपने प्राण छोडती हैं कि हमे मारने वालो का भव-भव मे सत्यानाश हो। और सचमुच ही ऐसे हत्यारो को अनेक भवो तक कुयोनियो मे जन्म लेकर असख्य असह्य दुख भोगने पडते हैं। शिकार खेलने वालो को तथा पशु-पक्षियो को मार-मार कर खाने वालो को याद रखना चाहिए कि आज जिनको तुम मार कर खा रहे हो—अगले भवो मे वे ही जीव तुम्हें भी मार-मारकर खावेंगे और अपने आज के वैर का बदला लेकर रहेंगे। नरको मे असख्यकाल तक नारकीय जीव तुम्हारे ही शरीर का मांस काट-काटकर तुम्हें जबरन खिलावेंगे। उस समय तुम रोते और विलाप करते हुए पछताओगे। परन्तु जो विलासितामय जीवन बिताने वाले हैं,उन्हें भविष्य के दुष्परिणाम की चिन्ता नही, किन्तु वर्तमान मे उपलब्ध भोगो के भोगने की ही चिन्ता है। उनकी तो एक मात्र अभिलाषा ऐयाशी और विलासी जीवन बिताने की रहती है। फिर भले ही भविष्य मे कुछ हो।

अब पीने के पदार्थों के ऊपर भी कुछ विचार कर लें। पेयद्रव्यो के लिए भी आज का मानव इतना अधिक आसक्त और विलासी बन गया है कि वह उनमे पेय और अपेय का भी ध्यान नही रखता है। वह पानी पीले, दूध पीले, दही, मठ्ठा पीले और गन्ने आदि के रस पीले। यहा तक तो उसका पीना उचित कहा जा सकता है। किन्तु वह तो इन सब से भी बहुत आगे बढकर दारू और भग पीने के लिए भी तैयार हो गया [illegible] इनके पी[illegible]

ही अपने जीवन का आनन्द मानने लगा है। अभी तक तो नीची जाति वाले लोग ही पीते थे। परन्तु जो अपने को उच्च जाति और वंश का मानते हैं, वे भी आज शराब पीने मे नीची जाति-वालो से भी बहुत आगे बढ गये हैं और आगे बढ रहे है। यह कितने दुःख और आश्चर्य की बात है।

आज प्रजातंत्र का युग है। वोटो पर ही शासन अवलंबित है। प्रति पाच वर्ष के पश्चात् विधान सभा तथा लोकसभा का चुनाव होता है। अब विधायक लोग अपने वोटो के लिए लोगो को भर पेट दारू पिलाकर हजारो बोतलें खाली कर देते हैं और उनसे वोटो की याचना करते हैं। आज इन उम्मीदवारो का जीवन स्तर कितना नीचे गिर गया है।

महात्मा गाधी ने तो अग्रेजी शासन-काल मे शराब की दुकानो पर जाकर पिकेटिंग किया--धरना दिया --और सत्याग्रह करके हजारो भारतीयो को इस नारकीय जीवन से बचाया। परन्तु आज उन्ही के अनुयायियो ने जब देश की बागडोर सभाली और मत्री बने तो अपने पूज्य बापू के सिद्धान्त को ताक पर रखकर सब प्रान्तो मे शराब को बढावा दिया। पहिले जितनी शराब की बिक्री होती थी, उससे कई गुनी अधिक बिक्री आज शराब की हो रही है। नाटक-सिनेमा, होटल, नाचघर आदि सभी मनोरजन के स्थानो मे शराब का दौर-दौरा है और निरन्तर प्रोत्साहन दिया जा रहा है। आज जो लोग शराब-प्रचार के विरुद्ध आन्दोलन करते हैं, उन्हे जेलो मे डाला जाता है। यह सब स्वार्थ-साधन के लिए किया जा रहा है। भले ही जनता का जीवन दुःख दायी बन जाय और हजारो परिवार बर्बाद हो जाये, परन्तु इसकी उन्हे कोई परवाह नही है। बस, सरकार की आवक बढ़ना चाहिए। यदि ये सभी प्रान्तो के मत्रि-मण्डल अपने विलासी जीवन के ऊपर होने वाले अनाप-शनाप खर्चों को कम कर देवे तो लाखो करोडो रुपयो की बचत सहज मे ही हो सकती है। परन्तु अनैतिक मदो मे व्यय अधिक करके—अपने राजसी वैभव का व्यय भार बढा करके– उस घाटे की पूर्ति के लिए शराब प्रचार जैसे अनैतिक उपायो से आय बढाने का तर्क देते हैं।

यही हाल आज हमारी पोशाक का है। इन वस्त्रो से भी हमारी

विलासिता बढती जा रही है । हमे खादी के या मोटे वस्त्र अब पसन्द नही पडते हैं । अब तो हमको सुन्दर चटकीले-भडकीले नाइलोन, टेरालीन आदि नये नये फैशनेबुल और बारीक वस्त्र चाहिए । परन्तु आप को ज्ञात होना चाहिए कि जितने भी बारीक और चमकदार वस्त्र हैं, उनके बनाने के लिए मील-कारखानो मे जानवरो की चर्बी लगाई जाती है । उन्हे पहिन करके आप लोग हिंसा के भागीदार बनते हैं। और, आप लोगो को तो रेशमी वस्त्र बहुत पसन्द हैं । परन्तु ये रेशमी वस्त्र बनते कैसे हैं क्या यह भी आप को ज्ञात है ? कहते है कि एक तोला रेशम प्राप्त करने के लिए ढाई लाख कीडे खत्म होते हैं । उन रेशम के कीडो को उबलते-खौलते पानी मे डाला जाता हैं—जिस की तीव्र दाह से बचने के लिए वे उपने पेट मे भरे हुए रेशम को अपने शरीर—के ऊपर लपेटते हुए मरण को प्राप्त होते हैं । जब वे सब मर जाते हैं, तब उनके शरीर पर लिपटा हुआ रेशम निकाल लिया जाता है । परन्तु रेशमी वस्त्रो के शौकीनो को उन जीवो की दया का ध्यान ही नहीं है ।

भाइयो, ये प्रचुर हिंसा के साधनभूत महान् आरम्भ और परिग्रह उनके ही होते हैं जो कि महा विलासी हैं । इसी प्रकार जीवित जानवरो की जीते जी उतारी गई खाल के बने बढ़िया सूट केस, घड़ियों और पैंटों के पट्टे, मनी बेग-पर्स आदि भी इन शौकीन लोगों को चाहिए । आज यदि एक-एक घर के भीतर छान-बीन की जाय तो कितने ही जानवरों की खालो से बनी ये चीजें हर घर मे पाई जावेंगी ।

सज्जनो, इन खान-पान और ओढ़ने—पहिनने के व्यवहार को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि लोग एकदम नास्तिक बनते जा रहे हैं जिन्हे कि लोक-परलोक और पाप-नरक आदि का कुछ भी विचार नही रहा है और जिन्होने अपना यह ध्येय ही बना लिया है कि—

खाना-पीना मौज उडाना, रहना बे परवाह ।
दुखी जगत को देख-देखकर, कभी न भरना आह ॥
चलो अब मौज उड़ावें ।

विषयासक्ति

अब विषय-भोग का विचार करें तो आज का मानव इतना कामान्ध हो गया है कि वह एकदम विवेक-शून्य और पागल बनता जा रहा है। उसे अपने हिताहित का, यश-अपयश का, जाति-कुल और खानदान का, तथा धर्म-अधर्म का कुछ भी भान नही रहा है। जब वह भोग के लिए उद्यत होता है, तब फिर वह यह नही देखता है कि यह किस जाति की स्त्री है? वह मास-भक्षिणी और मद्य-पायिनी वेश्याओ के यहा जाकर अपना धर्म और गौरव का सत्यानाश करता है। और इतना अधम बन जाता है कि वह फिर अपनी बहिन और बेटी तक का भी ख्याल नही रखता है और उनके साथ बलात्कार करके अपनी निकृष्ट विषय-वासना की पूर्त्ति करता है और अपनी हविश को पूरी करते हुए भी लज्जित नही होता है। इस विषय-भोग मे अन्धा बनकर मानव अपने धर्म का बुद्धि और बल का नाश कर देता है, अनेक असाध्य रोगो से ग्रसित होकर सड़ता है और फिर ससार की दृष्टि मे अपयश का भागी बनकर मरण को प्राप्त होता है।

भाइयो, इतिहास साक्षी दे रहा है कि जिन बडे-बडे प्रतापशाली राजा-महाराजाओं के सामने हजारों योद्धा भी कामयाब नही हो सकते थे, युद्ध मे जिनके साथ मुकाबिला नही कर पाते थे, वे भी जब इस स्त्री की विलासिता के दलदल मे फसे और भोगों की कीचड़ मे डूबे - तो ऐसे डूबे कि फिर उनका उद्धार नही हो सका। लाखों-करोड़ो की अपनी सम्पत्ति समाप्त कर बैठे, भीतर से खोखला हो गये और इस सुरा-सुन्दरी के वशीभूत होकर अपना राज्य तक गवा बैठे।

पृथ्वीराज चौहान-जिस की राजधानी अजमेर थी - वह इतना पराक्रमी था कि उसके द्वारा युद्ध स्थल मे छोडा गया बाण हाथी के कुम्भस्थल को चीरता हुआ शत्रु का वक्ष स्थल—भेदन करता था। ऐसा महान् शक्तिशाली था। और इसीलिए उसके इस नगर का नाम 'अजय मेरु' पडा। अर्थात् उसके गढ को—उसके नगर को जीतना सुमेरु पर्वत के समान अजेय है—भी जीता नही जा सकता है। परन्तु जब वही पृथ्वीराज सयोगिता के

चक्कर मे फसा-उसके साथ भोगविलास मे निमग्न हुआ कि उसने युद्ध मे अपने एक सौ शूरमाओ और सोलह सौ सामन्तो को भी मरवा दिया, फिर भी गढ़ से नीचे उतरने का नाम नही लिया। जव सातवी बार मोहम्मद गौरी का आक्रमण हुआ और वह उससे लड़ने के लिए निकला तो उसका साथी एक भी शूरमा और सामन्त शेप नही बचा था। तव वह अकेला ही युद्ध क्षेत्र मे पहुचा और शत्रु पर वाण छोडने लगा। परन्तु अव वे वाण हाथी-घोडो से टकराकर नीचे गिरने लगे। तव चन्द कवि ने दुख की मास भरते हुए कहा—

दिन पलटा, पलटी धरा, पलटा तीर कमान।
चंद कहे पृथ्वीराज ने, दिन पलट्यो चौहान ॥

अरे, दिन क्या पलटे ? उसने तो अपने हाथ से ही पलटा लिये। वह मयोगिता के साथ भोग-विलास मे लिप्त हो गया और शरीर की मारी शक्ति समाप्त करते हुए भी सोचता रहा कि मेरी सानी का दूमरा कोई न हुआ, न है और न होगा। इसी अभिमान मे उमने अपना मर्वस्व नप्ट कर दिया।

भाइयो, जो भोग-विलामी होते हैं, उनमे त्याग, वैराग्य, आदि गुण कहा रह मकते हैं। हमारे महर्पियों ने कहा है कि—

विषयासक्तचित्तानां गुण को वा न नश्यति।
न वैदुष्य न मानुष्य, नाभिजात्यं न सत्यवाक् ॥

अर्थात् विपयों मे—स्त्री के भोगों में आमक्त चित्तवाले मनुष्यों के कौन मे गुण नष्ट नही हो जाते हैं ? मभी गुण नष्ट हो जाते हैं। फिर न उसमें पांडित्य रहता है, न मनुष्यता रहती है, न कुलीनता रहती है और न मत्यवादिता ही रहती है। और भी कहा है—

पावक त्याग विवेक च वैभव मानितामपि।
कामार्त्ता खलु मुञ्चन्ति किमन्यै स्व च जीवितम् ॥

अर्थात्- काम से पीडित मनुष्य अपनी पवित्रता, त्याग, विवेक, वैभव, मान और सम्मान को भी छोड बैठते हैं—उनके ये सब गुण नष्ट हो जाते हैं। और तो क्या, वे अपने जीवन को भी छोड बैठते हैं और मरण को प्राप्त होते हैं।

आचार्यों के ये वाक्य पृथ्वीराज-चौहान पर पूर्ण रूप से सत्य सिद्ध हुए और वे अपने सब राजपाट से हाथ धोकर प्राणो को भी गवा बैठे और अपनी जीवन-भर उपार्जन की हुई कीर्त्ति को स्वय ही समाप्त कर गये।

विषयी मर्यादाहीन

भाइयो, जो विलासी हो जाता है उसमे विचार करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। वह तो अनाचारी पशुओ के समान बन जाता है। अरे, पशुओ मे तो फिर भी मर्यादा है। वे मर्यादा मे ही नियत ऋतु व समय पर भोग करते है और मर्यादा से खाते पीते है। परन्तु आज का मानव तो पशुओ से भी गया बीता हो गया। उसके भीतर जरा भी मानवता नही रही। वह अपना पतन अपने हाथो से कर लेता है। मानव जब विलासी बन जाता है, तब उसका मन उसके काबू मे नही रहता और बुद्धि भी कुठित हो जाती है। यदि उससे ही हित की बात कही जाय, तो वह भी अहितकर समझता है और हितकारी व्यक्ति को अपने मार्ग मे बाधक समझकर उसका भी अन्त करने के लिए उद्यत हो जाता है। आज ऐसी अनेक घटनाए सुनने मे आती हैं कि व्यभिचारी पुरुष या स्त्री ने अपने मार्ग मे बाधक समझकर अपने ही पति और पुत्र तक को विष देकर या अन्य अवैध मार्ग से मरवा दिया। इससे और अधिक कामान्ध पुरुष या स्त्री का क्या पतन हो सकता है ?

इन्द्रियों की अधीनता

बन्धुओ, देखो—विलासिता का मूल स्रोत ये हमारी आंख, नाक, कान, जीभ और शरीर रूप पांच इन्द्रियां हैं। जो इन इन्द्रियों का गुलाम बन जाता है, वह इन्द्रियो की प्रेरणा के अनुसार ही प्रवृत्ति करने लगता है। ऐसा विषय-लम्पट पुरुष फिर इन्द्रियो का स्वामी न रहकर और दास बन कर उनके वशीभूत हो नाना प्रकार के अन्याय, अत्याचार और अनाचार कर डालता है। यह बात विचारणीय है कि एक-एक इन्द्रिय के वशीभूत हुआ प्राणी जब अपने प्राण गवा देते हैं, तो जो पाचो इन्द्रियो के वशीभूत होगा, वह कैसे नही अपार दुखो को पावेगा ? और कैसे नही अपने प्राणो को

गवायेगा ? वह कैसे बचा हुआ रह सकता है ? देखो—कर्णेन्द्रिय के वशीभूत हुआ हिरण अपने प्राणों को खो देता है। उसके लिए कहा गया है कि—

आग घटुके पवन भखे, तुरिया आगे जाय।
पूछो राजा भोज से, हिरण किसो घो खाय ॥

जो हिरण बडे तेज दौडने वाले घोडों से भी आगे चौकडी भर कर भागता है और क्षण भर मे देखते-देखते बडे-बडे जगलो को पार कर लेता है, ऐसा चचल, तेज चाल का वह चतुर है। परन्तु उसी के सामने जब शिकारी मल्हार राग गाता है और सुरीली तान छोडता है, तब वह बेभान होकर रुक जाता है और उसे सुनने मे आंख बन्दकर ऐसा तन्मय हो जाता है कि उसे अपने मारने वाला नही दिखाई देता। और उसी की गोली का शिकार हो जाता है। देखो—वह केवल एक कर्णेन्द्रिय के वशीभूत होकर अपनी जान गवा देता है।

चक्षुरिन्द्रिय के वशीभूत होकर पतगा दीपक की लौ पर पडकर उसमे जलकर भस्म हो जाता है। पतगा रूप का इतना अधिक लोलुपी है कि आपने देखा होगा कि रात मे वर्षा काल के समय बिजली के खम्बो पर लगे हुए बल्वो पर ये असख्य पतगे रात भर मडराते रहते हैं, और कुछ तो प्रकाश की गर्मी से और कुछ छिपकली आदि से मारे जाते हैं।

रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर मछली आदि पानी मे रहने वाले जलचर प्राणी अपने प्राण गवा बैठते हैं। मछली मार तालाब या नदी के किनारे जाता है। वह वंसी के काटे मे आटे की गोली लगा देता है और उसे पानी मे छोड देता है। मछली उस आटे की गोली को खाने के लिए अपना मुख मारती है और वसी का काटा उसके तालु मे फँस जाता है। झटका लगते ही मछली मार उसे बाहिर खीच लेता है और मछली तड़फ-तडफ कर मर जाती है। यदि वह रसनेन्द्रिय के वशीभूत नही होती तो क्यो प्राण गवाती ?

घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत होकर कस्तूरिया मृग—जिसकी नाभि मे क...
रहती है—वह सुगन्ध के पीछे इधर-उधर दौड़ते हुए अपने प्राण गवा देता
यद्यपि कस्तूरी उसकी नाभि मे है और उसकी जोरदार सुगन्ध उसे

है। परन्तु उसे यह पता नही है कि यह सुगन्ध मेरी नाभि मे से ही आ रही तो वह खुशबू के लिए जगल मे दौड़ता—फिरता हुआ जब थक कर चूर-चूर हो जाता है, तब शिकारी उसका शिकार करके कस्तूरी की नाभि निकाल लेते हैं। और भौंरा भी इसी सुगन्ध के वश होकर कमल मे मुद्रित हो मारा जाता है।

स्पर्शनेन्द्रिय (उपस्थेन्द्रिय) के वशीभूत होकर बडे बडे मदोन्मत्त हाथी हथिनी के लिए कामान्ध बनकर अपने प्राण गवा बैठते हैं। शिकारी लोग हाथी दात के लिए जगलो मे जाते हैं—जहा पर कि हाथी विचरते रहते हैं। वे लोग जगल मे एक बडा भारी गहरा गड्ढा खोदते हैं। उस पर ताने-बाने के रूप मे कुछ बास डालकर ऊपर से पत्ते बिछा देते हैं। फिर उसके ऊपर कागज की एक सुन्दर आकार की हथिनी बनाकर खडी कर देते हैं। जब वह हाथी उस नकली हथिनी को दूर से देखता है, तो असली हथिनी समझ कर काम से अन्धा बनकर उस पर आता है। उसके आते ही बास टूट पडते हैं और वह गड्ढे मे पड जाता है। पीछे शिकारी उसे भूखा मारकर कुछ दिनो के बाद उसके दात और हड्डिया निकाल लेते हैं। यदि वह हाथी स्पर्श नेन्द्रिय के वशीभूत नही हुआ होता तो उसकी इस प्रकार दर्दनाक मौत नही हुई होती। इस स्पर्शनेन्द्रिय के वश मे एक बार आया हाथी तो सदा के लिए अपने जीवन से हाथ धो बैठता है, तो जो रात-दिन स्त्री—सेवन मे फंस रहे हैं, उनका क्या हाल होगा ? तुलसीदास जी आश्चर्य के साथ कहते हैं—

कातिक मासे कूकरो, तजे अन्न अरु प्यास।
तुलसी उनकी कौन गति, जो सेवै बारह मास॥

अरे, कुत्तो के लिए एक कार्त्तिक मास विषय भोग का होता है। उस समय वे खाना—पीना तक भूल जाते हैं और कुत्ती के पीछे पडे रहते हैं और आपस मे कट—मर के मर जाते हैं। परन्तु जो बारहो ही मास भोग—विलास मे पडे रहते हैं, तो उनकी दुर्गति होने मे तो शका करने की गु जायश ही नही है। परन्तु भाई, उनका क्या दोष है ? यदि हम अमुक व्यक्ति को दोष दें कि उन्होने उसका काम बिगाड दिया, तो यह ठीक नही है। वे तो विलास से बिगडे हैं ? यदि ये राजा—महाराजा और जागीरदार विलासी

नही होते तो फिर उनका मुकाबिला करने वाला कौन था । जब ये लोग भोग के कीडे बन गये, दारू पीकर मारुडा गवाने लगे और भोग के चगुल मे फस-कर निरपराध जानवरो को मारने लगे, तब आज उन्हे ये मुसीबत के दिन देखने पड रहे हैं । कहा भी है कि —

> एक सुरा सुन्दरि द्वय,तीजी करत शिकार ।
> इन तीनो के मायने, राम तगी पर वार ।।

सुरा—सुन्दरी—शिकार

जब ये राजा लोग एक तो सुरा (दारु) मे मस्त तो गये । घर में द्रव्य रहा नही तो कर्ज लेकर भी मारूजी दारू पीते हैं और मारुडा गवाते हैं । राजाओ के राज्य गये तेईस वर्ष हो गये । परन्तु इनको पता नहीं कि हमारा घर कहा है ? जमीन कहा और गहना कहा है ? हमारा कितना खर्च है और आमदनी कितनी है ? वे तो यही सोचते है कि हम तो अब भी वैसे के वैसे ही है । इन लोगो के पतन के तीन प्रधान कारण हैं— सुरा, सुन्दरी और शिकार । इन तीनो में मस्त होकर अपना अपना सत्या-नाश इन लोगो ने अपने ही हाथो मे कर लिया । विलासी बन जाने से इनकी शारीरिक, मानसिक शक्तिया नष्ट हो गईं और कान्ति, तेज, सम्पत्ति आदि सब समाप्त हो गये । शास्त्रकार कहते हैं—

> पुण्य क्षीण जब होत है, उदय होत है पाप ।
> दाझे वन की लकड़ी, प्रजले आपों आप ।।

मनुष्य के जब पाप का उदय आता है और पुण्य क्षीण हो जाता है तब वह आपस में ही लड़-झगड़ कर के समाप्त हो जाता है । जैसे वन में बांस की लकड़ियां आपस में ही रगड़ खाकर प्रज्वलित हो जाती हैं और उनमें जल कर स्वयं ही राख हो जाती हैं । इसलिए, भगवान् [illegible] उद्बोधन करते कहते हैं कि हे भव्यात्माओ, तुम लोग इन इन्द्रियों के विषयों से बचो, इनमें मस्त न बनो [illegible]

[illegible]

विषयो की ओर दौडनेवाले मन को लक्ष्य करके कहते हैं—

रे मन, तेरी को कुटेव यह, करण-विषय मे धावै है ।। रे मन०।।
इन ही के वश तू अनादि से, निज स्वरूप न लखावै है ।
पराधीन क्षण-क्षीण सुमाकुल, दुर्गति विपति चखावै है ।।रे मन०१।।
फरस विषय के कारण वारण गर्त परत दुख पावै है ।
रसना इन्द्रिय-वश झष जल मे, कंटक कंठ छिदावै है ।। रे मन०२।।
गन्ध-लोल पंकज मुद्रित में अलि निज प्राण गमावै है ।
नयन-विषय-वश दीप शिखा में, अंग पतंग जरावै है ।। रे मन०३।।
करण-विषय-वश हिरण अरणि मे, खल-करि प्राण लुनावै है।
दौलत तज इनको,जिनको भज, यह गुरु सीख सुनावै है ।।रे मन०४।।

अरे मन, तेरी यह क्या बुरी टेक है कि तू बार-बार इन्द्रियो के विषयो की ओर ही दौडता है । इनके वश मे पडकर तू अनादिकाल से आज तक अपने स्वरूप को नही देख सका । ये इन्द्रियो के विषय प्रथम तो पराधीन है—कर्मोदय के अधीन है । यदि पुण्योदय होगा, तो मिलेंगे । अन्यथा नही । यदि कदाचित् पुण्योदय से मिल भी गये तो ये स्थायी नही है, क्षण-भगुर हैं । फिर ये आकुलता-व्याकुलता से व्याप्त हैं और अन्त मे दुर्गति मे ले जाकर दु ख और विपत्ति को चखाने वाले है । देखो—स्पर्शनेन्द्रिय के वश होकर हाथी गड्ढे मे पडकर दुःख पाता है । मछली रसना इन्द्रिय के वश से जल मे काटे से कठ मे छेदी जाती है । गन्ध का लोलुपी भौरा कमल के मुद्रित होने पर उसी मे अपने प्राण गवाता है । नेत्र-इन्द्रिय के वश मे होकर पतंगा दीपक-शिखा मे अपने अग को भस्म करता है और कर्णेन्द्रिय के वश होकर हिरण जगल मे दुष्ट बहेलियो के द्वारा मारा जाता है । इसलिए हे चंचल मन वाले दौलतराम, तू इन इन्द्रियो के विषयो को छोडकर श्री जिन भगवान का भजन कर । इस प्रकार गुरु महाराज तुझको शिक्षा की बात सुना रहे हैं ।

भाइयो, यह मानव अपने विलास और सुखद जीवन-निर्वाह के लिए जो जो कर्म करता है, उसका फल बतलाते हुए भगवान ने कहा है—

विभूसावत्तिय भिक्खू कम्म बधई चिक्कण।
ससारसायरे घोरे जेणं पडई दुरुत्तरे ॥

हे मन, तू विभूषा से—साज-श्रृ गार से दूर रह। हे श्रमणो और श्रावको, तुम इस विभूषा से दूर रहो। क्योकि जो साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका विलासिता के इच्छुक हैं, उनके चिकने कर्मों का बन्ध होता है। उसके फल से उन्हे दुस्तर इस घोर ससार-सागर मे पडना पडेगा। यदि एक बार भी चूक गये, तो फिर वहा से निकलना कठिन हो जायगा। इस अपार ससार-सागर को तिरकर निकलना आसान नही है। क्योकि प्रथम तो यह दु ख रूपी अगाध जल से भरा हुआ है। दूसरे यह बिना किनारे का है। अत डूबने के बाद उससे उद्धार कैसे सभव है ? भोग का फल ससार-पतन ही है। भोगी को ससार-सागर मे गोता खाने ही पडेंगे। किन्तु जो भोग और विलासिता का त्याग कर सादगीमय सीधा-साधा जीवन बिताते हैं, उनके लिए तैरकर पार होना सरल रहता है। अरे भाई, जिनका भोजन पान, पहिनावा-ओढ़ावा और भोगादिक शुद्ध, सयमित और नियन्त्रित हैं, उन्हे यह सब उपाधि छोडते क्या देर लगती है। वे तो जरा-सा भी निमित्त पाने पर तुरन्त त्याग कर देते हैं। परन्तु जो भोगी बना हुआ है, त्याग जिसके समीप ही नही है, उसे चाहे सारे शास्त्र प्रेरणा देवें, चाहे समस्त वेद, पुराण, आगम, निगम और गुरु ग्र थ सुनाये जावें, वे सब बेकार हैं। उसका कोई भी सुधार नही कर सकता है।

रोग-बुढापा-मृत्यु !

भाइयो, एक स्थान पर एक पहुंचे हुए महात्मा विराजमान थे और अपने ज्ञान-ध्यान मे मग्न थे। उनके समीप से एक राजा घोडे पर चढा हुआ जा रहा था। उसकी मस्तानी और अभिमान भरी चाल-ढाल को देखकर महात्मा ने कहा— राजन् ! जरा इधर आओ ! महात्मा जी की आवाज सुनकर पहिले तो राजा ने सोचा—इससे मुझे क्या लेना-देना है, आगे चलता जाऊ। परन्तु कुछ विचार कर वह पीछे मुडा और सोचा कि जब यह बुलाता है,

तब इसके पास जाना चाहिए। परन्तु मैं वहा बैठूगा किस पर ? क्योकि वहा पर तो मेरे बैठने के योग्य गादी-कुर्सी आदि कुछ भी नही है। यह सोचते हुए घोडे से उतर कर महात्मा जी के पास पहुचा और पूछा—महात्मा जी, क्या बात है ? महात्मा ने कहा—अरे राजन्, यही तो मैं पूछता हू कि क्या है ? राजा दुविधा मे पडा—अरे, यही तो मैं इससे पूछता हू और यही बात यह मुझसे पूछता है ?

राजा ने महात्मा जी से पुन पूछा—क्या है ? महात्मा ने कहा—मैं भी तो यही पूछ रहा हू। अन्त मे महात्मा ने कहा—अरे, तूने अभी तक क्या का अर्थ ही नही समझा है ? राजन्, मुझे तुझ पर दया आती है। अरे, तू आखो से अन्धा, कानो से बहरा और जिह्वा से गूगा है। महात्मा के ये वचन सुनते ही राजा क्रोध से अन्धा हो गया और हाथ मे हटर लेकर बोला—अरे, तू मुझे अधा, बहरा और गूगा बनाता है ? ले—मैं तुझे इसका मजा चखाता हू। ऐसा कहकर महात्माजी पर चार-छह हन्टर फटकार दिये। हन्टर पडते ही महात्मा खिल-खिलाकर हस पडा। यह देख राजा बोला—क्या तुझे और चाहिए ? उत्तर मे महात्मा ने कहा क्या तुझे और चाहिए ? यह सुनकर राजा सोचने लगा—क्या यह पागल है ? आज तो मुझे अच्छे मूर्ख से पाला पड गया। अब तो उत्तेजित होकर राजा ने और भी जोर से चार-छह हन्टर महात्मा जी को जमा दिये। महात्मा फिर भी ठहाका मार कर जोर से हसने लगा। राजा विचार मे पड गया—अरे, यह भी अजब आदमी है—जो मार पडने पर रोने के बजाय हसता है ? क्यो यह बिलकुल ही विक्षिप्त या निरा मूर्ख पशु है ? राजा ने मारने के लिए पुन हाथ ऊचा उठाया। तब महात्मा बोला—हे भिखारी, क्या सोचता है ? और आने दे ? यह सुनते ही राजा ने फिर चार-छह हटर फटकार दिये। फिर भी वह तो हसता ही रहा। इस प्रकार मार पर मार पडने से महात्मा का सारा शरीर लोहू-लुहान हो गया, परन्तु मुख पर वही आभा बनी रही और वह बराबर हसता रहा। अब तो राजा एकदम विचार-सागर मे गोते लगाने लगा कि यह हसता क्यो है ? और रोता क्यो नही ? अवश्य ही इसमे कोई न कोई

रहस्य छिपा हुआ होना चाहिए। तब शात भाव से पूछा—महात्मन्, हसते क्यो हो? महात्मा ने कहा—तेरी मूर्खता पर मुझे हसी आ रही है। तू आखो से अन्धा, कानो से बहरा और जिह्वा से गूगा है। तेरे भीतर इतना अहकार भरा हुआ है कि तू मेरे सामने आकर 'क्या है, क्या है' कहता है। तब राजा ने विनय से अवनत होकर पूछा—भगवन, क्या है? महात्मा ने कहा—है, और यहा है। राजा ने पूछा—यहा क्या है? महात्मा ने कहा—अरे, फिर वही बात? देख, जो कुछ है—वह यहा है। यहा ही स्वर्ग है और यहा ही नरक है। यही योग है और यही भोग है। यही पर योगी के लिए स्वर्ग है और भोगी के लिए नरक है।

महात्मा ने कहा—राजन्! अभिमान के घोडे से उतरकर यहा बैठ। राजा बोला—मैं कहा बैठू? महात्मा ने कहा—जो यह सबसे कोमल वसुन्धरा का आसन है, उस पर बैठ। राजा बोला—भगवन मेरी पोशाक मैली हो जायगी। महात्मा ने कहा—अरे, बाजार मे क्या और नही मिलेगी? राजा ने कहा—हा मिलेगी। फिर क्या डर है? अरे, यह पोशाक मैली तो और मिल जायगी। परन्तु मैं पूछता हू कि जो तू मैला हो रहा है, खराब हो रहा है, वह भी मिलेगा क्या? राजा ने पूछा—मैं कैसे खराब हो रहा हू? महात्मा ने उत्तर दिया—बस, यही तो अन्धापन है। अरे, जो मैं दिखा रहा हू, वह तो तुझे दिखाता ही नही है। और जो मैं कह रहा हू, वह तू सुनता ही नही है। इसीलिए तो तू बहरा है। तू भगवान का भजन नही करता, इसलिए तू गूगा है। इतना ही नही, तू लगडा भी है, क्योकि धर्म के मार्ग पर चलने मे असमर्थ है और तू नकटा भी है, क्योकि तुझे अपने खानदान की कुछ भी लाज नही है।

राजा ने जब महात्मा जी के ऐसे मार्मिक और आध्यात्मिक वचन सुने, तब वह कुछ देर तक तो स्तम्भित सा रह गया। पुनः महात्मा जी के पास आकर भूमि पर बैठ गया और बोला—महात्मा जी, आपके वचन बड़े ··· पूर्ण हैं। मेरी समझ मे तो कुछ भी नहीं आ रहा है?

महात्मा ने कहा—राजन्, इन बातों को समझने का प्रयत्न क

अवश्य ही तुम्हारी समझ मे आ जायेगी। देख, तू मानता है, कि आख, कान आदि सब मेरे हैं। परन्तु मैं तो कहता हू कि ये सब तेरे नही है। राजा ने पूछा—भगवन्, मेरे कैसे नही है ? तब महात्मा ने कहा—देख, उधर देख ! महात्मा जी के कथनानुसार राजा ने उस ओर मुख फेर कर देखा कि एक गादी पर लकवे से पीडित एक आदमी पडा है। न वह बोलता है, न चलता है और न कुछ काम ही कर सकता है। वह तो अचेत सा पडा हुआ है और पडा-पडा ही कुहराम मचा रहा है। महात्मा ने कहा—देख, इसे भली भाँति से देख। इसके आँख, नाक, कान, जीभ और शरीर सब कुछ है। परन्तु क्या यह इनका उपयोग कर सकता है ? राजा बोला—यह तो कुछ भी नही कर सकता है। राजा विचारने लगा—अरे, अभी कुछ देर पहिले यहाँ पर कुछ भी नही था ? फिर यह गादी और बीमार मनुष्य कहाँ से आ गया ? यह तो महात्मा कोई चमत्कारी सिद्ध पुरुष ज्ञात होते है।

राजा बोला—महात्मा जी, इसके सभी इन्द्रिया होते हुए भी यह लकवा से पीडित है, इसके शरीर का रक्त सूख गया है, इसलिए ये बोल-चाल नही पाता है। महात्मा ने कहा—देख राजन्, इसीलिए मैं कह रहा हू कि आखो के होते हुए भी यह अन्धा है, कानो के होते हुए भी यह बहरा है, जीभ के होते हुए भी नही बोल सकने से यह गू गा है। इसकी कोई भी इन्द्रिय काम नही कर रही है। परन्तु तू तो इससे बढकर है। राजा ने पूछा—भगवन्, मैं इससे बढकर कैसे हू ? मेरी तो सारी इन्द्रियाँ काम कर रही है। महात्मा बोले—देख, इसकी इन्द्रिया भले ही काम नही कर रही हो, परन्तु इसका मन तो साक्षी दे रहा कि मैंने पहिले बुरे कार्य किये हैं, इसलिए मैं इन महादु खो को भोग रहा हू। यदि मुझे इस दु ख से छुटकारा मिल जाय,तो आगे फिर मैं ऐसा पाप नही करू गा। परन्तु राजन् ! तू पाप पर पाप करता ही जा रहा है और फिर भी पश्चात्ताप का नाम भी नही है ? तेरा मन अब भी पापो के करने से विरक्त नही हो रहा है, अत इससे भी गया बीता है।

राजन्, तू आज घोडे पर बैठा अकड कर चलता है परन्तु यदि तेरे शरीर

मे भी बीमारी हो जाय, तो फिर क्या तेरा कोई साथी रहेगा ? राजा बोला—महाराज, मेरे तो डाक्टर, वैद्य, हकीम आदि बहुत हैं। वे इलाज करके मुझे अच्छा कर देंगे। महात्मा जी ने कहा—अरे राजन्, तू नादानो जैसी बातें कर रहा है। देख, जब रोग आकर घर कर लेता है, तब किसी डाक्टर, वैद्य या हकीम की शक्ति नही है कि वह उस रोग को मिटा दें।

महात्मा ने फिर कहा—राजन्, इधर देख। ज्यो ही राजा ने उस ओर मुख किया तो देखता है कि मुझसे भी बढकर एक राजा शस्त्रो से सज्जित हुआ घोडे पर सवार है। उसके दोनो पैर साप ने जकड रखे हैं, सिर पर गिद्ध बैठा है और छाती पर शेर का पजा पडा हुआ है और रक्त बह रहा है और उसकी आखो से आंसू झर रहे हैं।

यह दृश्य दिखाकर महात्मा ने कहा - बोल राजन्, यह कौन है ? राजा बोला—यह भी एक राजा है। महात्मा ने पूछा—क्या कोई इसे मरने से बचा सकता है ? राजा ने कहा—नही भगवन्, इसे कोई नही बचा सकता है। तब महात्मा ने कहा—देख, वह तो रोग मे आक्रान्त था और यह मृत्यु से आक्रान्त है। न तो उसे कोई रोग से छुडाने मे समर्थ है और न इसे कोई मौत से ही छुडा सकता है।

तीसरी बार महात्मा ने कहा—राजन्, अब इस ओर देख। राजा ने उसी ओर मुख कर लिया। उधर वह क्या देखता है कि एक वृद्ध पुरुष है, जिसके हाथ थर्र-थर्र कप रहे हैं, पैर लडखडा रहे हैं, आख, नाक और मुख से पानी झर रहा है, शरीर जर्जरित हो रहा हैं और मक्खिया मुख पर भिन-भिना रही हैं। फिर भी वह लुढ़कता—पडता जा रहा है। यह दृश्य देखते ही राजा ने पूछा – महात्मन्, यह दृश्य किसका है ? महात्मा ने उत्तर दिया—यह बुढापा है। इससे भी मनुष्य को कोई नही छुडा सकता है।

ये सब दृश्य दिखाने के पश्चात् महात्मा ने निष्कर्ष –रूप मे कहा—राजन्, तूने देख लिया बुढापे का, रोग और मत्यु का हाल ? राजा बोला—हा भगवन्, अच्छी तरह देख लिया। महात्मा ने कहा—ये तीनो बातें प्रत्येक मनुष्य के पीछे लगी हुई हैं। इनसे कोई भी बचने वाला नही है राजन्,

बता, क्या तूने ये बातें अपने जीवन मे कभी नही देखी हैं ? राजा बोला—भगवन्, देखी तो हैं ! तब महात्मा ने कहा—फिर तेरी आखें क्यो बन्द हैं ? और तूने सुना भी है कि मेरे दादा पड दादा, माता-पिता, और सरदार—दीवान, सब मरे हैं ? बोल क्या तूने नही सुना है ? राजा ने कहा—सुना भी है और आखो से देखा भी है। तब महात्मा ने कहा—अरे राजन्, फिर तू किस बात पर अभिमान कर रहा है !

देख राजन्, मैं एक निर्जन वन मे रहने वाला साधु हूँ। मैं वहा पर शान्त भावो से एकान्त मे अपनी साधना कर रहा हूँ। बोल ! मैंने तेरा क्या बिगाडा है, जो तूने अभिमान से पागल बनकर मुझे मारा और सारे शरीर को लोहू-लुहान कर दिया। परन्तु मुझे तेरी इस निर्दयता पर भी दया आगई और मैं मार खाते हुए भी हसता ही रहा। अरे, मैंने तुझे केवल सावचेत करने के लिए ही अपने पास बुलाया था। फिर भी तूने कहा कि यहा क्या है ? तो देख—यहा बुढापा है, रोग है और मौत है। इनके सिवाय और कुछ नही है। जब तू इन दुखो से ग्रसित हो जायगा - इनके जाल मे फस जायगा, तब तू क्या करेगा ? आज तो तू मुझे हटर लगाता है, क्योकि, तुझे यह अभिमान है कि मैं राजा हूँ ! शक्ति शाली हू !! मेरा कौन मुकाबिला कर सकता है ! ! परन्तु याद रख, ये तीनो ही शिकारी दौडते हुए तेरा पीछा कर रहे हैं। जब तू इनके चक्कर मे पड जायगा तब क्या तू मुझे हटर लगा सकेगा ? राजा दीनतापूर्वक नत-मस्तक होकर बोला—नही स्वामिन्, नही लगा सकूंगा। महात्मा ने फिर कहा—देख, तू तो राजा है। तेरे राज्य है, तो मेरे पास महाराज्य है। तूने तो यह समझ कर मुझे मारा कि साधु बेचारा मेरा क्या कर सकता है ? इसके पास क्या शक्ति है ? किन्तु मैं तुझे वह शक्ति भी दिखा देना चाहता हू। देख, शान्त भाव से स्थिर होकर इधर देख ! उसी समय साधु ने एक पुतला बनाया और उसे पाये पर घिसा तो उसमे से आग की लपटे निकलने लगी और वह जलने लगा।

राजा उस पुतले को जलता हुआ देखकर बडा भय-भीत हुआ और सोचने लगा कि कही इसकी ज्वालाए आकर मुझे भी भस्म न कर देवें। वह थर-थर कापने लगा। तब महात्मा ने कहा—राजन्, घबड़ा मत। मैं

तुझे मारने वाला नही हू । अरे, तूने सोचा था कि इस वेचारे के पास क्या है ? तेरे पास तो राज्य-सत्ता है, हाथ मे हटर हैं । परन्तु मेरी इस शक्ति के सामने तेरी वह तुच्छ शक्ति क्या काम दे सकती है ? यह देख राजा बोला—भगवन्, मैं बडा भारी अपराधी हूँ । मैंने बहुत बुरा काम किया है । अव पाप से कैसे छुटकारा पा सकता हूँ । मैंने अज्ञान, मोह और मद के वशीभूत होकर आपको हटर मारे । प्रभो, मुझे क्षमा कीजिए । आपके भीतर तो वह शक्ति है कि आप मुझे क्षणभर मे भस्म कर सकते हैं । परन्तु आपके हृदय मे करुणा की पुण्य धारा वह रही है, जब कि मेरे भीतर राक्षसी क्रूरता भरी हुई है ।

तब महात्मा ने कहा—राजन्, अब तो तेरी आखें खुल गई । राजा बोला— हा स्वामिन्, खुल गई । महात्मा ने पूछा—ऐसी वात कभी सुनी ? राजा ने कहा—नही महाराज, मैंने कभी नही सुनी । फिर पूछा—क्या तूने कभी जवान से कभी कहा कि मैंने भूल की है, अपराध किया है ? राजा ने उत्तर दिया नही भगवन्, मैंने कभी नही कहा । तव महात्मा जी बोले —हे राजन्, इसीलिए तू गू गा है, बहरा है और अन्धा है । राजा ने स्वीकार करते हुए कहा—हा भगवन् ! आपका कहना बिलकुल सत्य है । मैं परमार्थ की वात देखने के लिए आज तक अन्धा ही रहा, आत्म-कल्याण की बात सुनने के लिए बहरा ही रहा और अपने अपराध को स्वीकार करने के लिए अभी तक गू गा ही रहा । आज आपने मेरा अन्धापन दूर कर दिया, बहिरापन मिटा दिया और गू गेपन को गायब कर दिया । भगवन्, आपने जो मेरे ऊपर यह अकारण कृपा की, उसके लिए मैं जन्म-जन्मान्तर तक आपका कृतज्ञ और आभारी रहूगा । आपने मेरा जीवन सफल कर दिया, आज मेरा परम सौभाग्य है ।

भाइयो, कहने का तात्पर्य यह है कि विलासिता के नशे मे अन्धे होकर मानव अपनी मानवता को खो बैठते हैं । इसलिए विलासी जीवन को त्यागकर सादगीमय सरल जीवन को अपनाओ । मानव होकर मानव की अ
प्राणिमात्र की सेवा करो, स्वय ऊचा उठो और नीचे गिरेहुओ को ऊ
उठाओ । ऐसा करने से तुम भी ऊचे उठ जाओगे । अ ो

रखो और सबके कल्याण की भावना करो। इससे तुम्हारा सर्वत्र समादर होगा और यश भी प्राप्त होगा। यदि सुदृढ शरीर पाकर भी किसी की सेवा न कर सके, तो तुम्हारा यह शरीर पाना बेकार है। याद रखो, रोग, बुढापा और मौत ये तीनो तुम्हारे अन्दर भी आने वाले है। जैसे पहाडी नदी के पूर को आते और जाते देर नही लगती वैसे ही इस जवानी को जाते भी देर नही है। कहा भी है—

जब जवानी का चढ़ता पूर, निरखे तू दर्पण मे नूर।
पर आखिर वह विरलाइ है, तुझे समझ नहीं आई है।

इस जवानी का नशा भी कैसा अजीब है। जवानी के मद से उन्मत्त हुआ व्यक्ति अपने हाथ मे काच लेता है और मुख देखता है। कभी भौह चढाता है, कभी मुख मटकाता है और ओंठो को चबाता है। अरे, तू क्या काना है, या अधा है, या चेचक के दाग है ? जो तू इतने गौर से अपने मुख को देखता है। अरे, वह जैसा है, वैसा ही है। अब क्या मटक कर देखने से तेरी यह शक्ल बदल जायगी। अरे, बन्दर के समान क्यो उछल-कूद कर रहा है। पर यह सब कुछ बनावट-सजावट हो रही है तो एकमात्र विलासिता को पोषण देने के लिए है। भाई, यह विलासिता तो मानव जीवन का सत्यानाश करने वाली है। यदि मानव अपना कल्याण करना चाहता है तो इस भोग-विलासमय जीवन से किनारा कर ले और शम, दम, सम-मय जीवन बना ले। जैसे राजा ने महात्मा को हटर मारे, परन्तु उन्होने क्षमा धारण की। उन्होने सोचा इस जड़ हटर की मार मे मेरे चेतन आत्मा का क्या विगडने वाला है, तो तुम लोग भी इसी प्रकार क्षमा धारण करो। कोई कुछ भी कहे, परन्तु वापिस उत्तर देने की इच्छा मत करो। इन पाचो इन्द्रियो को अपने कावू मे रखो। शत्रु-मित्र, महल-मसान, इष्ट-अनिष्ट और काच-कचन मे समभाव रखो। मान-अपमान और खड्ग-प्रहार-पुष्प-वर्षण मे समभाव धारण करो। देखो उस राजा ने महात्मा के कहने से उक्त तीन गुणो को धारण कर लिए। उसके हृदय मे उसी समय वैराग्य भाव जगा। अपने सब

वस्त्रभूषण फेंक कर और साधु बाना धारण कर अवधूत महात्मा बन गया और खम, दम, सम को धारण का आत्म कल्याण के मार्ग मे लग गया वह विलासिता से हटकर निज-भाव मे रमण करने लगा।

भाइयो, आप लोगो को भी विलासी जीवन को छोडकर स्वात्म-वासी और निज गुण-राची जीवन अगीकार करना चाहिए, जिससे कि निजानन्द-रस के भोक्ता परम सुखी बन सको।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला ११
जोधपुर

●●

रखो और सबके कल्याण की भावना करो। इससे तुम्हारा सर्वत्र समादर होगा और यश भी प्राप्त होगा। यदि सुदृढ शरीर पाकर भी किसी की सेवा न कर सके, तो तुम्हारा यह शरीर पाना बेकार है। याद रखो, रोग, बुढापा और मौत ये तीनो तुम्हारे अन्दर भी आने वाले है। जैसे पहाडी नदी के पूर को आते और जाते देर नही लगती वैसे ही इस जवानी को जाते भी देर नही है। कहा भी है—

जब जवानी का चढता पूर, निरखे तू दर्पण मे नूर।
पर आखिर वह विरलाइ है, तुझे समझ नहीं आई है।

इस जवानी का नशा भी कैसा अजीव है। जवानी के मद से उन्मत्त हुआ व्यक्ति अपने हाथ मे काच लेता है और मुख देखता है। कभी भौंह चढाता है, कभी मुख मटकाता है और ओंठो को चवाता है। अरे, तू क्या काना है, या अधा है, या चेचक के दाग है ? जो तू इतने गौर से अपने मुख को देखता है। अरे, वह जैसा है, वैसा ही है। अब क्या मटक कर देखने से तेरी यह शक्ल बदल जायगी। अरे, बन्दर के समान क्यो उछल-कूद कर रहा है। पर यह सब कुछ बनावट-सजावट हो रही है तो एकमात्र विलासिता को पोषण देने के लिए है। भाई, यह विलासिता तो मानव जीवन का सत्यानाश करने वाली है। यदि मानव अपना कल्याण करना चाहता है तो इस भोग-विलासमय जीवन से किनारा कर ले और शम, दम, सम-मय जीवन बना ले। जैसे राजा ने महात्मा को हटर मारे, परन्तु उन्होने क्षमा धारण की। उन्होने सोचा इस जड़ हटर की मार मे मेरे चेतन आत्मा का क्या बिगडने वाला है, तो तुम लोग भी इसी प्रकार क्षमा धारण करो। कोई कुछ भी कहे, परन्तु वापिस उत्तर देने की इच्छा मत करो। इन पाचो इन्द्रियो को अपने काबू मे रखो। शत्रु-मित्र, महल-मसान, इष्ट-अनिष्ट और काच-कचन मे समभाव रखो। मान-अपमान और खड्ग-प्रहार-पुष्प-वर्षण मे समभाव धारण करो। देखो उस राजा ने महात्मा के कहने से उक्त तीन गुणो को धारण कर लिए। उसके हृदय मे उसी समय वैराग्य भाव जगा। अपने सब

वस्त्रभूषण फेंक कर और साधु वाना धारण कर अवधूत महात्मा बन गया और खम, दम, सम को धारण कर आत्म कल्याण के मार्ग में लग गया वह विनाशिता से हटकर निज-भाव मे रमण करने लगा।

भाइयो, आप लोगों को भी विलासी जीवन को छोड़कर स्वात्म-वासी और निज गुण-राची जीवन अंगीकार करना चाहिए, जिससे कि निजानन्द-रस के भोक्ता परम सुखी बन सको।

वि० स० २०२७ भाद्रपद शुक्ला ११
जोधपुर

●●

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति

(प्रवचन प्रकाशन विभाग)

सदस्यों की शुभ नामावली

प्रथम श्रेणी

१ मैं० बी. सी ओसवाल, जवाहर रोड रत्नागिरी (सिरीयारी)

२ शा० इन्दरसिंह जी मुनोत, जालोरी गेट, जोधपुर

३ शा० लादूराम जी छाजेड, ब्यावर, (राजस्थान)

४ शा० चम्पालाल जी डुगरवाल, नगरथपेठ बेंगलोर सिटी (करमावास)

५ शा० कामदार प्रेमराज जी जुमा, मस्जिद रोड, बेंगलोर सिटी (चावडिया)

६ शा० चादमल जी मानमल जी पोकरना, पेरम्बूर मद्रास ११ (चावडिया)

७ जे. बस्तीमल जी जैन, जैनगर बेंगलोर ११ (पुजलू)

८ शा० पुखराज जी सीसोदीया, ब्यावर

९ शा० बालचद जी रूपचन्द जी बाफना,
११८/१२० जवेरीबाजार बम्बई--२ (सादडी)

१० शा० बालावगस जी चम्पालाल जी बोहरा, राणीवाल

११ शा० केवलचन्द जी सोहनराज बोहरा, राणीवाल

१२ शा० अमोलकचन्दजी धर्मीचन्दजी आछा, बडी कानचीपुर, मद्रास (सोजतरोड)

१३ शा० भुरमल जी मीठालाल जी बाफना, तिरकोयलूर, मद्रास (आगेवा)

१४ शा० पारसमल जी कावेडिया, आरकाट, मद्रास (सादडी)

१५ शा० पुखराज जी अनराज जी कटारिया, आरकोनम् मद्रास (नेवाज)

१६ शा० सिमरतमल जी मखलेचा, मद्रास (बीजाजी का गुडा)

१७ शा० प्रेमसुख जी मोतीलाल जी नाहर, मद्रास (कालू)

१८ शा० गुदडमल जी शातिलाल जी तालेरा, एनावरम, मद्रास

१९ शा० चम्पालाल जी नेमीचन्द जी, जबलपुर (जैतारण)

२० शा० रतनलाल जी पारसमल जी चतर ब्यावर

२१ शा० सम्पतराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, कूपल (मारवाड-मादलिया)

२२ शा० हीराचन्द जी लालचन्द जी धोका, नयाबाजार, मद्रास

२३ शा० नेमीचन्द जी धर्मीचन्द जी आच्छा, चगलपेट, मद्रास

२४ शा० एच० घीसुलाल जी पोकरना एन्ड सन्स आरकाट—N A D T. (बगडी नगर)

२५ शा० गीसुलाल जी पारसमल जी सिंघवी, चागलपेट मद्रास

२६ शा० अमोलकचन्द जी भवरलाल जी विनायकिया, नयाबाजार, मद्रास

२७ शा० पी० बीजराज नेमीचन्द धारीवाल, तीरुवेलूर

२८ शा० रूपचन्द जी माणकचन्द जी बोरा, बुशी

२९ शा० जेठमल जी रायमल जी सर्राफ, बुशी

३० शा० पारसमल जी सोहनलाल जी सुराणा कुंभकोनम, मद्रास

३१ शा० हस्तीमल जी मुणोत, सिकन्दराबाद (आन्ध्र)

३२ शा० देवराज जी मोहनलाल जी चोधरी तीरुकोईलूर मद्रास

३३ शा० बच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, नोंजन सिटी

३४ शा० खेमचन्द जी जसराज जी गोलेछा, बैंगलोर सिटी

३५ शा० टी० छगनलाल जी नोरतमल जी बब, बैंगलोर सिटी

३६ शा० एम० मगलचन्द जी कटारीया, मद्रास

३७ शा० मगलचद जी दग्गा c/o मदन लाल जी मोतीलाल जी, सिवराम पैठ, मैसूर

३८ पी० नेमीचन्द जी धारीवाल, N [illegible]

३९ शा० चम्पालाल जी प्रकाशचद जी छलाणी न० ५७ नगरथ पेठ, बैंगलूर-२

४० शा० आर. विजयराज जागडा, न० १ क्रासरोड, राबर्टसन पेठ, K G F.

४१ शा० गजराज जी छोगमल जी, रविवार पैठ ११५३, पूना

द्वितीय श्रेणी

१ श्री लालचद जी श्रीश्रीमाल, ब्यावर

२ श्री सूरजमल जी इन्दरचद जी सकलेचा, जोधपुर

३ श्री मुन्नालाल जी प्रकाशचद जी नम्बरिया चौधरी चौक, कटक

४ श्री घेवरचद जी रातडिया, रावर्टसनपैठ

५ श्री बगतावरमल जी अचलचंद जी खीवसरा ताम्बरम, मद्रास

६ श्री छोतमल जी सायबचद जी खीवसरा, बौपारी

७ श्री गणेशमल जी मदनलाल जी भडारी, नीमली

८ श्री माणकचद जी गुलेछा, ब्यावर

९ श्री पुखराज जी बोहरा, राणीवाल वाला हालमुकाम पीपलिया कलाँ

१० श्री धर्मीचद जी बोहरा जुठावाला, हाल मुकाम पीपलिया कलॉ

११ श्री नथमल जी मोहनलाल जी लूणिया, चन्डावल

१२ श्री पारसमल जी शान्तीलाल जी ललवाणी, बिलाडा

१३ श्री जुगराज जी मुणोत, मारवाड़ जक्शन

१४ श्री रतनचन्द जी शान्तीलाल जी मेहता—सादडी (मारवाड)

१५ श्री मोहनलाल जी पारसमल जी भडारी, बिलाडा

१६ श्री चम्पालाल जी नेमीचन्द जी कटारिया, बिलाडा

१७ श्री गुलाबचन्द जी गभीरमल जी मेहता—गोलवड
[तालुका डेणु—जि० थाणा (महाराष्ट्र)]

१८ श्री भवरलाल जी गौतमचन्द जी पगारिया, कुशालपुरा

१९ श्री चनणमल जी भीकमचन्द जी राका, कुशालपुरा

२० श्री मोहनलाल जी भवरलाल जी बोहरा, कुशालपुरा

२१ श्री सतोकचन्द जी जवरीलाल जी जामड़
 १४६ बाजार रोड, सदरानगतम
२२ श्री कन्हैयालाल जी गादिया, आरकोनम्
२३ श्री धरमीचन्द जी ज्ञानचन्द जी मूथा, वगटीनगर
२४ श्री मिश्रीमल जी नगराज जी गोठी—बिलाड़ा
२५ श्री दुलराज जी इन्दरचन्द जी कोठारी
 ११४, तैयप्पा मुदलीस्ट्रीट, मद्रास-१
२६ श्री गुमानमल जी मागीलाल जी चोरड़िया चिन्ताधरी पेठ – मद्रास-१
२७ श्री मायरचन्द जी चोरड़िया, ६० एलीफेन्ट गेट मद्रास-१
२८ श्री जीवराज जी जवरचन्द जी चोरड़िया—मेड़ता सिटी
२९ श्री हजारीमल जी निहालचन्द जी गादिया १६२ कोयमतूर—१
३० श्री केसरीमल जी झूमरलाल जी तालेसरा—पाली
३१ श्री धनराज जी हस्तीमल जी मचेती—कावेरीचाक
३२ श्री सोहनराज जी शान्तिप्रकाश जी मचेती—जोधपुर
३३ श्री भवरलाल जी चम्पालाल जी सुराना—कानावना
३४ श्री मागीलालजी शकरलालजी भँसाली
 २७ लक्ष्मी अमन कोयल स्ट्रीट, पेरम्बूर मद्रास-११
३५ श्री हेमराज जी शान्तीलाल जी सिंघी,
 ११ बाजाररोड रायपेठ मद्रास-१४
३६ शा० अम्बूलाल जी प्रेमराज जी जैन, गुडियातम
३७ शा० रामसिंह जी चोधरी, ब्यावर
३८ शा० प्रतापमल जी मगराज जी मलकर—देसरीसिंह जी का गुड़ा
३९ शा० सपतराज जी चोरडीया, मद्रास
४० शा० पारसमल जी कोठारी, मद्रास
४१ शा० भीकमचन्द जी चोरडीया, मद्रास
४२ शा० शान्तिलाल जी कोठारी, उत्तमेरे
४३ शा० जव्वरचन्द जी गोकलचन्द जी कोठारी, ब्यावर

४४ शा० जवरीलाल जी धरमीचन्द जी गादीया, लाबिया
४५ श्री सेसमल जी धारीवाल, बगडीनगर (राज०)
४६ जे० नौरतनमल जी बोहरा १०१८ के० टी० स्ट्रीट, मैसूर-१
४७ उदयचन्द जी नौरतमल जी मुथा
c/o हजारीमल जी वीरधीचन्द जी मुथा मेवाडी बाजार, ब्यावर
४८ हस्तीमल जी तपस्वीचन्द जी नाहर पो० कौसाना (जोधपुर)

तृतीय श्रेणी

१ श्री नेमीचन्द जी कर्णावट, जोधपुर
२ श्री गजराज जी भडारी, जोधपुर
३ श्री मोतीलाल जी सोहनलाल जी बोहरा, ब्यावर
४ श्री लालचन्द जी मोहनलाल जी कोठारी, गोठन
५ श्री सुमेरमल जी गाधी, सिरीयारी
६ श्री जबरचन्द जी बम्ब, सिन्धनूर
७ श्री मोहनलाल जी चतर, ब्यावर
८ श्री जुगराज जी भवरलाल जी राका, ब्यावर
९ श्री पारसमल जी जवरीलाल जी धोका, सोजत
१० श्री छगनमल जी बस्तीमल जी बोहरा, ब्यावर
११ श्री चनणमल जी थानचद जी खीवसरा सिरियारी
१२ श्री पन्नालाल जी भवरलाल जी ललवाणी, बिलाडा
१३ श्री अनराज जी लिखमीचन्द जी ललवाणी, आगेवा
१४ श्री अनराज जी पुखराज जी गादिया, आगेवा
१५ श्री पारसमल जी धरमीचन्द जी जागड, बिलाडा
१६ श्री चम्पालाल जी धरमीचन्द जी खारीवाल, कुशालपुरा
१७ श्री जबरचन्द जी शान्तीलाल जी बोहरा, कुशालपुरा
१८ श्री चम्पालाल जी हीराचन्द जी गुन्देचा, सोजतरोड

१९ श्री हिम्मतलाल जी प्रेमचन्द जी माकरिया, साडेराव
२० श्री पुखराज जी रिखबाजी माकरिया, साडेराव
२१ श्री बाबूलाल जी दलीचन्द जी बरलोटा,-फालना स्टेशन
२२ श्री मागीलाल जी मोहनराज जी राठोड, मौजतरोड
२३ श्री मोहनलाल जी गाधी, केसरसिंह जी का गुडा
२४ श्री पन्नालाल जी नथमल जी भमाली, जाजणवास
२५ श्री शिवराज जी लालचन्द जी बोकडिया, पाली
२६ श्री चान्दमल जी हीरालाल जी बोहरा—ब्यावर
२७ श्री जसराज जी मुन्नीलाल जी मूथा, पाली
२८ श्री नेमीचन्द जी भवरलाल जी डक, मारण
२९ श्री ओटरमल जी दीपा जी, साडेराव
३० श्री निहालचन्द जी कपूरचन्द जी, साडेराव
३१ श्री नेमीचन्दजी शान्तीलाल जी सीसोदिया, इन्द्रावड
३२ श्री विजयराज जी आणदमल जी सीसोदिया, इन्द्रावड
३३ श्री लूणकरण जी पुखराज जी लूकड बिग-बाजार, कोयमतूर
३४ श्री किस्तूरचन्द जी सुराणा, कालेजरोड कटक (उडीसा)
३५ श्री मूलचन्द जी बुधमल जी कोठारी, बाजार स्ट्रीट, मन्डिया
३६ श्री चम्पालाल जी गौतमचन्द जी कोठारी, गोठन स्टेशन
३७ श्री कन्हैयालाल जी गौतमचन्द जी काकरिया, मद्रास (मेडतासिटी)
३८ श्री मिश्रीमल जी साहिबचन्द जी गाधी, केसरसिंह जी का गुडा
३९ श्री अनराजजी बादलचन्दजी कोठारी, खवासपुरा
४० श्री चम्पालालजी अमरचन्दजी कोठारी, खवासपुरा
४१ श्री पुखराजजी दीपचन्दजी कोठारी, खवासपुरा
४२ श्री सालमसींग जी टावरिया, गुलाबपुरा
४३ श्री मिट्ठालाल जी कातरेला, बगडीनगर
४४ श्री पारसमल जी लक्ष्मीचन्द जी काठेड, ब्यावर

४५ शा. धनराज जी महावीरचन्द जी खीवसरा बैंगलूर

४६ शा धनराज जी महावीरचन्द जी खीबसरा, बैंगलोर ३०

४७ शा. पी० एम० चौरडिया, मद्रास

४८ शा. अमरचन्द जी नेमीचन्द जी पारसमल जी नागौरी, मद्रास

४९ शा. बनेचन्द जी हीराचन्द जी जैन, सोजतरोड, (पाली)

५० शा. झूमरमल जी मागी लाल जी गूदेचा, सोजतरोड (पाली)

●●